भारतीय अर्थव्यवस्था का विकास

कक्षा 11 के लिए पाठ्यपुस्तक

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्
NATIONAL COUNCIL OF EDUCATIONAL RESEARCH AND TRAINING

प्रथम संस्करण

अप्रैल 2006 वैशाख 1928

PD 24T MB

रु 50.00

एन.सी.ई.आर.टी. वाटरमार्क 70 जी.एस.एम. पेपर पर मुद्रित।

प्रकाशन विभाग में सचिव, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, श्री अरविंद मार्ग, नई दिल्ली 110 016 द्वारा प्रकाशित तथा टेन प्रिंट्स (इ.) प्रा. लि., 44 कि.मी. माइल स्टोन, एन.एच. रोहतक रोड, ग्राम-रोहड़, जिला - झज्जर (हरियाणा) द्वारा मुद्रित।

एन.सी.ई.आर.टी. के प्रकाशन विभाग के कार्यालय

एन.सी.ई.आर.टी. कैंपस
श्री अरविंद मार्ग
नयी दिल्ली 110 016

108, 100 फीट रोड
हेली एक्सटेंशन, होस्डेकेरे
बनाशंकरी III इस्टेज
बेंगलूर 560 085

नवजीवन ट्रस्ट भवन
डाकघर नवजीवन
अहमदाबाद 380 014

सी.डब्ल्यू.सी. कैंपस
निकट: धनकल बस स्टॉप
पनिहटी
कोलकाता 700 114

सी.डब्ल्यू.सी. कॉम्प्लैक्स
मालीगांव
गुवाहाटी 781021

प्रकाशन सहयोग

अध्यक्ष, प्रकाशन विभाग	:	*पी.राजाकुमार*
मुख्य उत्पादन अधिकारी	:	*शिव कुमार*
मुख्य संपादक	:	*श्वेता उप्पल*
मुख्य व्यापार प्रबंधक	:	*गौतम गांगुली*
संपादक	:	मरियम बारा
उत्पादन सहायक	:	मुकेश गौड़

आवरण एवं चित्रांकन

सरिता वर्मा माथुर

आमुख

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा (2005) सुझाती है कि बच्चों के स्कूली जीवन को बाहर के जीवन से जोड़ा जाना चाहिए। यह सिद्धांत किताबी ज्ञान की उस विरासत के विपरीत है, जिसके प्रभाववश हमारी व्यवस्था आज तक स्कूल और घर के बीच अंतराल बनाये हुए है। नयी राष्ट्रीय पाठ्यचर्या पर आधारित पाठ्यक्रम और पाठ्यपुस्तकें इस बुनियादी विचार पर अमल करने का प्रयास है। इस प्रयास में हर विषय को एक मज़बूत दीवार से घेर देने और जानकारी को रटा देने की प्रवृत्ति का विरोध शामिल है। आशा है कि ये कदम हमें राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) में वर्णित बाल-केंद्रित व्यवस्था की दिशा में काफी दूर तक ले जाएँगे।

इस प्रयत्न की सफलता अब इस बात पर निर्भर है कि स्कूलों के प्राचार्य और अध्यापक बच्चों को कल्पनाशील गतिविधियों और सवालों की मदद से सीखने और सीखने के दौरान अपने अनुभवों पर विचार करने का कितना अवसर देते हैं। हमें यह मानना होगा कि यदि जगह, समय और आज़ादी दी जाए तो बच्चे बड़ों द्वारा सौंपी गई सूचना-सामग्री से जुड़कर और जूझकर नये ज्ञान का सृजन करते हैं। शिक्षा के विविध साधनों एवं स्रोतों की अनदेखी किए जाने का प्रमुख कारण पाठ्यपुस्तक को परीक्षा का एकमात्र आधार बनाने की प्रवृत्ति है। सर्जना और पहल को विकसित करने के लिये ज़रूरी है कि हम बच्चों को सीखने की प्रक्रिया में पूरा भागीदार मानें और बनाएँ, उन्हें ज्ञान की निर्धारित खुराक का ग्राहक मानना छोड़ दें।

ये उद्देश्य स्कूल की दैनिक ज़िंदगी और कार्यशैली में काफ़ी फेरबदल की माँग करते हैं। दैनिक समय-सारणी में लचीलापन उतना ही ज़रूरी है जितना वार्षिक कैलेंडर के अमल में चुस्ती, जिससे शिक्षण के लिये नियत दिनों की संख्या हकीकत बन सके। शिक्षण और मूल्यांकन की विधियाँ भी इस बात को तय करेंगी कि यह पाठ्यपुस्तक स्कूल में बच्चों के जीवन को मानसिक दबाव तथा बोरियत की जगह खुशी का अनुभव उत्पन्न करने में कितनी प्रभावी सिद्ध होती है। बोझ की समस्या से निपटने के लिये पाठ्यक्रम निर्माताओं ने विभिन्न चरणों में ज्ञान का पुनर्निधारण करते समय बच्चों के मनोविज्ञान एवं अध्यापन के लिये उपलब्ध समय का ध्यान रखने की पहले से अधिक सचेत कोशिश की है। इस कोशिश को और सार्थक बनाने के यत्न में यह पाठ्यपुस्तक सोच-विचार और विस्मय, छोटे समूहों में बातचीत एवं बहस और हाथ से की जाने वाली गतिविधियों को प्राथमिकता देती है।

एन.सी.ई.आर.टी. इस पुस्तक की रचना के लिये बनाई गई पाठ्यपुस्तक निर्माण समिति के परिश्रम के लिए कृतज्ञता व्यक्त करती है। परिषद् सामाजिक विज्ञान पाठ्यपुस्तक सलाहकार समूह के अध्यक्ष प्रोफ़ेसर हरि वासुदेवन और अर्थशास्त्र पाठ्यपुस्तक समिति के मुख्य सलाहकार प्रोफ़ेसर तापस मजूमदार का विशेष आभारी है। इस पाठ्यपुस्तक के विकास में कई शिक्षकों ने योगदान दिया; इस योगदान को संभव बनाने के लिये हम उनके प्राचार्यों के आभारी हैं। हम उन सभी संस्थाओं और संगठनों के प्रति कृतज्ञ हैं जिन्होंने अपने संसाधनों, सामग्री तथा सहयोगियों की मदद लेने में हमें उदारतापूर्वक सहयोग दिया। हम माध्यमिक एवं उच्च शिक्षा विभाग, मानव संसाधन विकास मंत्रालय द्वारा प्रोफ़ेसर मृणाल मीरी एवं प्रोफ़ेसर जी. पी. देशपांडे की अध्यक्षता में गठित निगरानी समिति (मॉनीटरिंग कमेटी) के सदस्यों को अपना मूल्यवान समय और सहयोग देने के लिए धन्यवाद देते हैं। व्यवस्थागत सुधारों और अपने प्रकाशनों में निरंतर निखार लाने के प्रति समर्पित एन.सी.ई.आर.टी. टिप्पणियों व सुझावों का स्वागत करेगी, जिनसे भावी संशोधनों में मदद ली जा सके।

निदेशक
राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान
और प्रशिक्षण परिषद

नयी दिल्ली।
20 दिसंबर 2005

पाठ्यपुस्तक निर्माण समिति

अध्यक्ष, सामाजिक विज्ञान पाठ्यपुस्तक सलाहकार समिति

हरि वासुदेवन, प्रोफ़ेसर, इतिहास विभाग, कलकत्ता विश्वविद्यालय, कोलकाता।

मुख्य सलाहकार

तापस मजूमदार, एमेरिटस प्रोफ़ेसर, अर्थशास्त्र, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नयी दिल्ली।

समिति

आर. श्रीनिवासन, *प्रवक्ता*, अर्थशास्त्र विभाग, अरिंगनर अन्ना राजकीय कला महाविद्यालय, विल्लुपुरम तमिलनाडु।

गोपीनाथ पेरूमुला, *प्रवक्ता*, टाटा सामाजिक विज्ञान संस्थान, मुंबई।

जया सिंह, *प्रवक्ता*, डी.ई.एस.एस.एच, एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली।

निशित रंजन, *पी.जी.टी. (अर्थशास्त्र)*, न्यू अलीपुर बहुद्देशीय विद्यालय, बेहला, कोलकाता।

नीरजा रश्मि, *प्रवाचक*, डी.ई.एस.एस.एच, एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली।

नौजाद अली आजाद, *प्रोफ़ेसर*, अर्थशास्त्र विभाग, जामिया मिलिया इस्लामिया, नयी दिल्ली।

प्रतिभा कुमारी, *प्रवक्ता*, डी.ई.एस.एस.एच, एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली।

पूनम बक्सी, *प्रोफ़ेसर*, अर्थशास्त्र विभाग, पंजाब विश्वविद्यालय चंडीगढ़।

बी.सी.ठाकुर, *पी.जी.टी. (अर्थशास्त्र)*, राजकीय प्रतिभा विकास विद्यालय, दिल्ली।

राम गोपाल, *प्रवाचक*, अर्थशास्त्र विभाग, अन्नामलाई विश्वविद्यालय, अन्नामलाई नगर, तमिलनाडु।

सविता पटनायक, *पी.जी.टी. (अर्थशास्त्र)*, डेमोस्ट्रेशन स्कूल, रीजनल इंस्टीच्यूट ऑफ एजुकेशन, सचिवालय मार्ग, भुवनेश्वर।

शर्मिष्ठा बनर्जी, *प्रधानाध्यापिका*, विद्या भारती बालिका उच्च विद्यालय, कोलकाता।

हिंदी अनुवाद

अनुवादक मंडल

एच. के गुप्ता, दिल्ली।

ओ. पी. अग्रवाल, नयी दिल्ली।

कांता जोशी, *पी.जी.टी. (अर्थशास्त्र)*, राजकीय कन्या उच्च माध्यमिक विद्यालय, नयी दिल्ली

बी. सी. ठाकुर, *पी.जी.टी. (अर्थशास्त्र)*, राजकीय प्रतिभा विकास विद्यालय, दिल्ली।

भवानी शंकर बागला, *प्रवाचक*, अर्थशास्त्र विभाग, पी.जी.डी.ए.वी, नयी दिल्ली।

रश्मि शर्मा, *पी.जी.टी. (अर्थशास्त्र)*, केंद्रीय विद्यालय, जे.एन.यू. कैंपस, नयी दिल्ली।

लीना सिंह, *पी.जी.टी. (अर्थशास्त्र)*, केंद्रीय विद्यालय, ए.जी.सी.आर., दिल्ली।

श्री प्रेम दास, नयी दिल्ली।

राजेन्द्र प्रसाद तिवारी, नयी दिल्ली।

रमेश चन्द्र, नयी दिल्ली।

सदस्य समन्वयक

एम.वी. श्रीनिवासन, *प्रवक्ता*, डी.ई.एस.एस.एच, एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली।

आभार

इस पाठ्यपुस्तक के निर्माण में कई मित्रों तथा सहकर्मियों का सहयोग प्राप्त हुआ है। राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् एम. करपगम, *प्रवक्ता,* अर्थशास्त्र विभाग, मीनाक्षी कॉलेज, चेन्नई; जे. जॉन, *निदेशक*, सेंटर फॉर एजुकेशन एंड कम्युनिकेशन, नयी दिल्ली; प्रत्यूष के. मंडल, *प्रवाचक*, डी.ई.एस.एस.एच., एन.सी.ई.आर.टी.; नंदन रेड्डी, *निदेशक* (विकास), कंसर्न फॉर वर्किंग चिल्र्डन, बैंगलोर; एम. सेलवम, राष्ट्रीय शैक्षिक योजना तथा प्रशासन संस्थान, नयी दिल्ली; प्रोफ़ेसर, सतीश जैन, सेंटर फॉर इकनॉमिक स्टडीज एंड प्लानिंग, जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय, नयी दिल्ली; पूजा कपूर, मॉडर्न स्कूल, बाराखंबा रोड, नयी दिल्ली; प्रिया वैद्य, सरदार पटेल विद्यालय, लोधी एस्टेट, नयी दिल्ली; तथा नलिनी पद्मनाभन, डी.टी.ई.ए., सीनियर सेकंड्री स्कूल, जनकपुरी, नयी दिल्ली को इस पुस्तक के निर्माण के लिए सहयोग और सामग्री प्रदान करने हेतु आभार प्रकट करती है।

परिषद् जॉन ब्रेमैन तथा पार्थिव शाह का, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी, नयी दिल्ली द्वारा प्रकाशित उनकी पुस्तक 'वर्किंग इन दा मिल नो मोर' से फोटोग्राफ का उपयोग करने हेतु आभार व्यक्त करती हैं। कुछ कहानियाँ पी. साईनाथ द्वारा लिखित एवम् पेंग्यूइन बुक्स, नयी दिल्ली द्वारा प्रकाशित पुस्तक 'एवरीबॉडी लव्स ए गॉड ड्राउट' से ली गई है। किसानों के द्वारा की जा रही आत्महत्या से संबंधित एक चित्र 'द हिंदू' से लिया गया है। पर्यावरण मुद्दों से जुड़े कुछ चित्र तथा पाठ्य-सामग्री 'स्टेट ऑफ इंडियन इनवायरमेंट-1, 2' से लिये गये हैं, जो सेंटर फॉर साइंस एंड डेवलपमेंट, नयी दिल्ली से प्रकाशित है। परिषद उन लेखकों, कॉपी राइट धारकों तथा प्रकाशकों को उनके द्वारा प्रदत्त संदर्भ सामग्रियों के लिए आभार व्यक्त करती है। परिषद् प्रेस सूचना ब्यूरो, सूचना तथा प्रसारण मंत्रालय, नयी दिल्ली; नेशनल रेल म्यूजियम, नयी दिल्ली को भी उनके फोटो पुस्तकालय में उपलब्ध चित्रों के उपयोग की अनुमति देने के लिए धन्यवाद देती है। कुछ चित्र जॉन सुरेश कुमार, सायनोडिकल बोर्ड ऑफ सोशल सर्विस; सिंधु मेनन, लेवर फाइल, नयी दिल्ली; एस. थिरूमाल मुरूगन, आचार्य, अधियमान मैट्रिकुलेशन स्कूल, ऊत्तंगराई; आर. सी. दास, सेंट्रल इंस्टीच्यूट ऑफ एजुकेशनल टेक्नोलॉजी; रेणुका, नेशनल इंस्टीच्यूट ऑफ हेल्थ एंड फेमली वेलफेयर, नयी दिल्ली को उनके योगदान के लिए कृतज्ञता व्यक्त करती है।

सविता सिन्हा, अध्यक्ष, सामाजिक विज्ञान एवम् मानविकी शिक्षा विभाग, एन.सी.ई.आर.टी. को भी उनके सहयोग के लिए आभार! पांडुलिपि को जाँचने-परखने तथा उनमें वांछित परिवर्तनों के लिए सुझाव देने हेतु राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद् की सलाहकार संपादक वंदना सिंह को विशेष रूप से धन्यवाद।

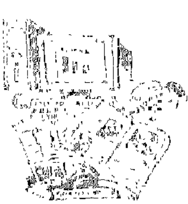
इस पुस्तक के विकास में सहयोग के लिए परिषद् दिपेन्द्र कुमार, विजय कुमार, *डी.टी.पी. ऑपरेटर;* विभोर सिंह, *प्रूफ रीडर;* विनय शंकर पाण्डेय, *कॉपी एडिटर;* दिनेश कुमार, *इंचार्ज कंप्यूटर* कक्ष के प्रति भी आभार व्यक्त करती है।

इस पुस्तक के प्रयोग पर

'भारतीय आर्थिक विकास' पर इस पुस्तक की रचना का मुख्य ध्येय पाठक को भारतीय अर्थव्यवस्था के समक्ष मुख्य समस्याओं और मुद्दों से परिचित कराना है। इसी प्रक्रिया में नव युवाओं को इन विषयों के प्रति संवेदनशील बनाने के साथ-साथ उन्हें विभिन्न आर्थिक क्रियाओं में सरकार की भूमिका की समालोचना कर पाने में सक्षम बनाना भी है। यह पुस्तक देश के आर्थिक संसाधनों और विभिन्न क्षेत्रकों में उनके प्रयोग के विषय में भी जानकारी प्रदान कर रही है। साथ ही भारतीय अर्थव्यवस्था के विभिन्न आयामों से जुड़े आँकड़ों द्वारा परिमाणात्मक जानकारी के साथ-साथ देश की आर्थिक नीतियों की भी एक झलक इसमें समाहित है। इन सबके आधार पर आशा की जा रही है कि पाठक अपनी विश्लेषण क्षमताओं को विकसित कर आर्थिक घटनाक्रम को समझने और भारत के आर्थिक भविष्य के विषय में अपना एक दृष्टिकोण विकसित कर पाने में सफल होंगे। फिर भी, हमारा प्रयास रहा है कि पाठक पर अवधारणाओं ओर आँकड़ों का अधिक बोझ न होने पाए।

जहाँ तक विभिन्न आर्थिक प्रश्नों और प्रवृत्तियों की बात है, पुस्तक में उनके विषय में वैकल्पिक मतों को स्पष्ट किया गया है, ताकि पाठक उन पर ज्ञान आधारित चर्चाओं में भागीदार बन सकें। भारतीय आर्थिक विकास पर इस पाठयक्रम को पूर्ण करने के पश्चात् हमें आशा है कि पाठक अपने इर्द-गिर्द चल रहे संबद्ध स्तरीय आर्थिक घटनाक्रम को समझ पाएँगे और संचार माध्यमों (मीडिया) द्वारा उपलब्ध कराई गई तत्संबधी सूचना को समझ कर उसका आलोचनात्मक मूल्यांकन कर पाएँगे।

इस पाठ्यक्रम के प्रत्येक अध्याय में कुछ क्रियात्मक गतिविधियाँ भी सुझाई गई हैं। यह कार्य छात्रों को शिक्षकों के मार्गदर्शन में करना है। वास्तव में, इस पाठ्यक्रम में भारतीय अर्थव्यवस्था के समझ पाने में शिक्षक की भूमिका को अधिक समृद्धिकारक और सार्थक बनाने का प्रयास किया गया है। इन क्रियात्मक गतिविधियों का कक्षा में परिचर्चा, आर्थिक सर्वेक्षण आदि सरकारी दस्तावेजों, अभिलेखों, समाचार-पत्रों, टेलीविजन व अन्य स्रोतों से जानकारी (आँकड़ें) एकत्र करना आदि सम्मिलित है। विभिन्न विषयों पर विद्वानों के लेख और पुस्तकें पढ़ने के लिए भी शिक्षार्थियों को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।

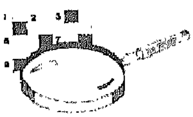


इन सभी उद्देश्यों की प्राप्ति को संभव बनाने के लिए शिक्षकों को विषय आरंभ करने से पूर्व ही कुछ कार्य प्रारंभ करने होंगे। शैक्षिक वर्ष के आरंभ में ही शिक्षार्थियों को

पंचवर्षीय योजनाओं, कृषि, उद्योग, सेवाओं तथा गरीबी निवारण, रोजगार सवर्धन, ग्रामीण विकास, पर्यावरण, आधारिक संरचना, स्वास्थ्य, शिक्षा, ऊर्जा एवं चीन व पाकिस्तान के आर्थिक घटनाक्रम आदि के विषय में समाचार-पत्रों, पत्रिकाओं आदि से उपयुक्त जानकारी एकत्र करने को कहा जाना चाहिए। जब शिक्षक कक्षा में कोई विषय पढ़ाना प्रारंभ करे, तो शिक्षार्थियों के पास उससे संबद्ध कतरने कक्षा में प्रदर्शित करने के लिए उपलब्ध होनी चाहिए। शिक्षार्थियों के लिए वर्ष के आरंभ में ही इन कतरनों के संग्रह करने में जुट जाना बहुत महत्वपूर्ण होगा। तभी वे उपयुक्त समय पर आवश्यक जानकारी प्रस्तुत कर पाएँगे। यह आदत भविष्य में उनकी शिक्षा के उत्तरोत्तर सोपानों में बहुत ही सहायक सिद्ध होगी।

सभी स्कूलों को प्रतिवर्ष आर्थिक सर्वेक्षण की प्रति खरीदनी होगी। यह भारतीय अर्थव्यवस्था की नवीनतम् जानकारी का बहुत उपयोगी स्रोत होता है। इसमें संकलित रिपोर्टों से छात्रों का परिचय आवश्यक है। विभिन्न क्रियात्मक गतिविधियों में उस जानकारी का उपयोग होगा। सर्वेक्षण के सांख्यिकीय परिशिष्टों के आँकड़े विभिन्न मुद्दों को भली-भाँति समझने में नितांत उपयोगी होंगे।

अर्थव्यवस्था के किसी भी मुद्दे पर चर्चा करते समय उससे जुड़े आँकड़ों की व्याख्या अपरिहार्य हो जाती है। यदि हम संवृद्धि दरों की बात करते हैं, तो कुल संवृद्धि और क्षेत्रकवार संवृद्धि की चर्चा ही पर्याप्त नहीं होगी। शिक्षार्थियों को संवृद्धि दरों की प्रवृत्तियों, उन दरों को उपलब्ध करने की प्रक्रियाओं तथा उन्हें संभव बनाने वाले कारकों के बारे में भी बताना अनिवार्य हो जाएगा। यह सब तो केवल संवृद्धि दरों को किसी तालिका में दर्ज करने से कहीं आगे तक जाने पर ही संभव होगा। सभी अध्यायों में कुछ क्रमांक अंकित बॉक्स भी हैं। इनमें मुख्य पाठ में की गई चर्चा से जुड़ी अतिरिक्त जानकारी रखी गई है। ये बॉक्स अध्ययन को वास्तविक जीवन के अधिक निकट लाने का प्रयास है।

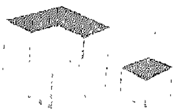


ये आँकड़ों के मानवीय पक्ष को उजागर करते हैं, किंतु ये बॉक्स और क्रियात्मक गतिविधियों, परीक्षा एवं मूल्यांकन के लिए प्रयोग नहीं किए जाएँगे।



अध्यायों के अंत में परंपरागत अभ्यास प्रश्नों के साथ-साथ कुछ अतिरिक्त क्रियात्मक कार्य भी सुझाए गए हैं। इनमें से पाठ के बीच में दी गई अतिरिक्त गतिविधियों में से अधिक विस्तृत गतिविधियाँ शिक्षार्थियों को अध्ययन-परियोजना के रूप में दी जा सकती है। इन परियोजनाओं की रचना में शिक्षार्थियों को पाठ्यपुस्तक की सामग्री से कहीं आगे तक जाने को प्रोत्साहित करना शिक्षकों का दायित्व होगा।

सभी स्कूलों में सूचना संबधी प्रौद्योगिकीय सुविधाएँ सुलभ होना तो आवश्यक नहीं है, फिर भी शिक्षार्थियों को यह जानना महत्वपूर्ण होगा कि अब भारतीय अर्थव्यस्था के विषय में सभी जानकारियाँ इंटरनेट पर उपलब्ध है। शिक्षार्थियों को इंटरनेट प्रयोग कर सरकारी विभागों की वेबसाइट से उपयुक्त जानकारी प्राप्त करने को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। हम जानते ही हैं कि गरीबी-विषयक सारी जानकारी योजना आयोग प्रकाशित करता है। छात्रों को यह बताया जाना चाहिए कि भारत सरकार के योजना आयोग की वेबसाइट पर भारतीय अर्थव्यवस्था के अनेक आयामों से जुड़ी जानकारियाँ विभिन्न रिपोर्टों के रूप में सुलभ है। इन रिपार्टों की मुद्रित प्रतियाँ प्राप्त होना सदैव संभव नहीं होगा। किंतु, नेट से इनको कंप्यूटर पर उतार कर इनका कक्षाओं में प्रयोग तो हो सकता है। अब तो पिछले वर्षों के आर्थिक सर्वेक्षण जैसे दस्तावेज www://budgetindia.nic.in नामक वेबसाइट पर उपलब्ध है।



प्रत्येक अध्याय के मुख्य बिंदुओं को सार संक्षेप के अंतर्गत दोहराने का कार्य भी किया गया है। मुख्य पाठ में प्रयुक्त तालिकाएँ अनेक शोध-पत्रों/रचनाओं से संकलित हुई है। उन रचनाओं को संदर्भ ग्रंथ की सूची में रखा गया है। किंतु प्रत्येक सारणी के नीचे संदर्भ स्रोत नहीं दिए हैं, क्योंकि ये विभिन्न शोध-सामग्रियों से लिए गए हैं जिनका उल्लेख 'संदर्भ' में किया गया है।

हम एक बार फिर यह बात दोहरा रहे हैं कि इस पुस्तक की रचना का ध्येय शिक्षार्थियों को भारतीय अर्थव्यवस्था की समष्टि स्तरीय समस्याओं से परिचित करा उन्हें उनके विषय में ज्ञान आधारित परिचर्चाओं में भागीदारी में समर्थ बनाना है। हमारा यह भी आग्रह है कि इस पाठ्यक्रम को सही अर्थों में समझने की सबसे अच्छी विधि परस्पर सहयोग ही होगी। अत: छात्रों और शिक्षकों को मिलजुल कर भारतीय अर्थव्यवस्था के विभिन्न पक्षों/आयामों से जुड़ी जानकारी का संकलन कर पठन-पाठन के लिए उनका सही प्रयोग करना चाहिए।

भारत का संविधान

उद्देशिका

हम, भारत के लोग, भारत को एक **संपूर्ण प्रभुत्व-संपन्न, समाजवादी, पंथ-निरपेक्ष, लोकतंत्रात्मक गणराज्य** बनाने के लिए तथा उसके समस्त नागरिकों को:

सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक **न्याय**,

विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म
और उपासना की **स्वतंत्रता**,

प्रतिष्ठा और अवसर की **समता**
प्राप्त कराने के लिए,

तथा उन **सब में** व्यक्ति की गरिमा और
राष्ट्र की एकता और अखंडता
सुनिश्चित करने वाली बंधुता बढ़ाने के लिए

दृढ़संकल्प होकर **अपनी इस संविधान सभा में** आज तारीख 26 नवंबर, 1949 ई. (मिति मार्गशीर्ष शुक्ला सप्तमी, संवत् दो हज़ार छह विक्रमी) को **एतद्द्वारा इस संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मार्पित करते हैं।**

विषय सूची

भारत का संविधान

भाग 4क

नागरिकों के मूल कर्तव्य

अनुच्छेद 51 क

मूल कर्तव्य - भारत के प्रत्येक नागरिक का यह कर्तव्य होगा कि वह -

(क) संविधान का पालन करे और उसके आदर्शों, संस्थाओं, राष्ट्रध्वज और राष्ट्रगान का आदर करे;

(ख) स्वतंत्रता के लिए हमारे राष्ट्रीय आंदोलन को प्रेरित करने वाले उच्च आदर्शों को हृदय में संजोए रखे और उनका पालन करे;

(ग) भारत की संप्रभुता, एकता और अखंडता की रक्षा करे और उसे अक्षुण्ण बनाए रखे;

(घ) देश की रक्षा करे और आह्वान किए जाने पर राष्ट्र की सेवा करे;

(ङ) भारत के सभी लोगों में समरसता और समान भ्रातृत्व की भावना का निर्माण करे जो धर्म, भाषा और प्रदेश या वर्ग पर आधारित सभी भेदभावों से परे हो, ऐसी प्रथाओं का त्याग करे जो महिलाओं के सम्मान के विरुद्ध हों;

(च) हमारी सामासिक संस्कृति की गौरवशाली परंपरा का महत्त्व समझे और उसका परिरक्षण करे;

(छ) प्राकृतिक पर्यावरण की, जिसके अंतर्गत वन, झील, नदी और वन्य जीव हैं, रक्षा करे और उसका संवर्धन करे तथा प्राणिमात्र के प्रति दयाभाव रखे;

(ज) वैज्ञानिक दृष्टिकोण, मानववाद और ज्ञानार्जन तथा सुधार की भावना का विकास करे;

(झ) सार्वजनिक संपत्ति को सुरक्षित रखे और हिंसा से दूर रहे;

(ञ) व्यक्तिगत और सामूहिक गतिविधियों के सभी क्षेत्रों में उत्कर्ष की ओर बढ़ने का सतत् प्रयास करे, जिससे राष्ट्र निरंतर बढ़ते हुए प्रयत्न और उपलब्धि की नई ऊँचाइयों को छू सके; और

(ट) यदि माता-पिता या संरक्षक है, छह वर्ष से चौदह वर्ष तक की आयु वाले अपने, यथास्थिति, बालक या प्रतिपाल्य को शिक्षा के अवसर प्रदान करे।

इकाई
एक

विकास नीतियाँ और अनुभव
(1947-90)

इस इकाई के दो अध्यायों के द्वारा हम स्वतंत्रता पूर्व से लेकर नियोजित विकास के चार दशकों तक के भारत द्वारा चुने गये पथ का समग्र रूप से अवलोकन करेंगे। तात्पर्य यह है कि भारत सरकार ने इसके लिए जो कठोर उपाय किये- जैसे-योजना आयोग का निर्माण तथा पंचवर्षीय योजनाओं की घोषणा आदि का अध्ययन। पंचवर्षीय योजनाओं के समग्र अवलोकन तथा नियोजित विकास की विशेषताओं तथा परिसीमाओं के मूल्यांकन का अध्ययन इस इकाई में किया गया है।

1

स्वतंत्रता की पूर्व संध्या पर भारतीय अर्थव्यवस्था

इस अध्याय को पढ़ने के बाद आप

- स्वतंत्रता प्राप्ति के समय वर्ष 1947 में भारत की अर्थव्यवस्था की दशा के बारे में जानेंगे;
- भारतीय अर्थव्यवस्था को अल्प विकास तथा गत्यावरोध की स्थिति में पहुँचा देने वाले कारकों से परिचित होंगे।

भारत हमारे साम्राज्य की धुरी है। यदि हमारे साम्राज्य का कोई राज्य अलग हो जाता है तो हम जीवित रह सकते हैं, यदि हम भारत को खो देते हैं तो हमारे साम्राज्य का सूर्य अस्त हो जायेगा।

-विक्टर एलेक्जेंडर ब्रूस, 1894 में ब्रिटिश इंडिया के वायसराय।

1.1 परिचय

'भारत का आर्थिक विकास' विषयक इस पुस्तक का मूल उद्देश्य आपको भारतीय अर्थव्यवस्था की मूलभूत विशेषताओं की जानकारी देना और स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद से हुए विकास से अवगत कराना है। यद्यपि, देश की वर्तमान अवस्था तथा भविष्य की संभावनाओं की चर्चा करते समय उसके आर्थिक अतीत पर ध्यान देना भी उतना ही महत्त्वपूर्ण होगा, इसलिए हम अपनी चर्चा का आरंभ स्वतंत्रता से पूर्व देश की अर्थव्यवस्था की स्थिति से कर रहे हैं। इसी क्रम में हम उन सब बातों की भी स्पष्ट पहचान करेंगे, जिन्होंने स्वतंत्र भारत के विकास की रणनीतियों का निर्धारण करने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है।

भारतीय अर्थव्यवस्था की वर्तमान संरचना कोई आज की नहीं है। इसके मूल सूत्र तो इतिहास में बहुत गहरे हैं, विशेष रूप से उस अवधि में जब भारत 15 अगस्त, 1947 को स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व दो सौ वर्षों तक ब्रिटिश शासन के अधीन था। भारत में ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन का मुख्य उद्देश्य इंग्लैंड में तेजी से विकसित हो रहे औद्योगिक आधार के लिए भारतीय अर्थव्यवस्था को केवल एक पोषक अर्थव्यवस्था तक ही सीमित रखना था। उस शासन की अधीनता के शोषक स्वरूप को समझे बिना स्वतंत्रता के बाद के पिछले छह दशकों में, भारत में हुए विकास का सही मूल्यांकन कर पाना संभव नहीं।

1.2 औपनिवेशिक शासन के अंतर्गत निम्न-स्तरीय आर्थिक विकास

अंग्रेज़ी शासन की स्थापना से पूर्व भारत की अपनी स्वतंत्र अर्थव्यवस्था थी। यद्यपि जनसामान्य की आजीविका और सरकार की आय का मुख्य स्रोत कृषि था, फिर भी देश की अर्थव्यवस्था में विभिन्न प्रकार की विनिर्माण गतिविधियाँ हो रही थीं। सूती व रेशमी वस्त्रों, धातु आधारित तथा बहुमूल्य मणि-रत्न आदि से जुड़ी शिल्पकलाओं के उत्कृष्ट केंद्र के रूप में भारत विश्व भर में सुविख्यात हो चुका था। भारत में बनी इन चीज़ों की विश्व के बाज़ारों में

बॉक्स 1.1 बंगाल का सूती उद्योग

मलमल एक विशेष प्रकार का सूती कपड़ा है। इसका मूल निर्माण क्षेत्र बंगाल, विशेषकर ढाका के आस-पास का क्षेत्र रहा है (यह नगर अब बांग्लादेश की राजधानी है)। ढाका के मलमल ने उत्कृष्ट कोटि के सूती वस्त्र के रूप में विश्व भर में बहुत ख्याति अर्जित की थी। यह बहुत ही महीन कपड़ा होता था। विदेशी यात्री इसे शाही मलमल या मलमल ख़ास भी कहते थे। इसका आशय यही था कि वे इस कपड़े को शाही परिवारों के उपयोग के योग्य मानते थे।

अच्छी सामग्री के प्रयोग तथा उच्च स्तर की कलात्मकता के आधार पर बड़ी प्रतिष्ठा थी।

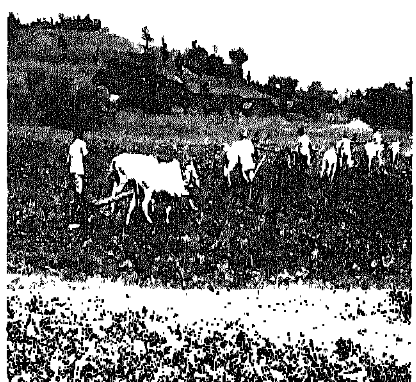
औपनिवेशिक शासकों द्वारा रची गई आर्थिक नीतियों का ध्येय भारत का आर्थिक विकास नहीं बल्कि अपने मूल देश के आर्थिक हितों का संरक्षण और संवर्धन ही था। इन नीतियों ने भारत की अर्थव्यवस्था के स्वरूप के मूल रूप को बदल डाला। भारत, इंग्लैंड को कच्चे माल की पूर्ति करने तथा वहाँ के बने तैयार माल का आयात करने वाला देश बन कर रह गया। स्वाभाविक ही था कि औपनिवेशिक शासकों ने कभी इस देश की **राष्ट्रीय तथा प्रतिव्यक्ति आय** का आकलन करने का भी ईमानदारी से कोई प्रयास नहीं किया। कुछ लोगों ने निजी स्तर पर आकलन किए, पर उनके अनुमानों में बहुत विसंगतियाँ और आपसी मतभेद भी रहे हैं। इन आकलनकर्त्ताओं में दादा भाई नौरोजी, विलियम डिग्बी, फिंडले शिराज, डॉ. वी.के.आर.वी.राव तथा आर.सी. देसाई प्रमुख रहे हैं। औपनिवेशिक काल के दौरान राष्ट्रीय आय और प्रतिव्यक्ति आय के डॉ. राव द्वारा लगाए गए अनुमान बहुत महत्त्वपूर्ण माने जाते हैं। फिर भी, सभी अध्ययनकर्त्ता एक बात पर सहमत रहे हैं कि 20वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में भारत की राष्ट्रीय आय की वार्षिक संवृद्धि दर 2 प्रतिशत से कम ही रही है तथा प्रतिव्यक्ति उत्पाद वृद्धि दर तो मात्र आधा प्रतिशत ही रह गई।

1.3 कृषि क्षेत्रक

ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन के अंतर्गत भारत मूलतः एक कृषि अर्थव्यवस्था ही बना रहा। देश की लगभग 85 प्रतिशत जनसंख्या, जो गाँवों में

बॉक्स 1.2 पूर्व ब्रिटिश काल में कृषि

सत्रहवीं शताब्दी में भारत आए फ्रांसीसी यात्री बर्नीयर ने तत्कालीन बंगाल का इस प्रकार वर्णन किया है– "अपने दो बार के भ्रमण के दौरान बंगाल के विषय में संगृहीत जानकारी के आधार पर मैं कह सकता हूँ कि यह क्षेत्र मिश्र देश से कहीं अधिक समृद्ध है। यहाँ से सूती-रेशमी वस्त्र, चावल, शक्कर और मक्खन का प्रचुर मात्राओं में निर्यात होता है। यहाँ अपने आंतरिक उपभोग के लिए भी गेहूँ, सब्जियाँ, अनाज, मुर्गे/मुर्गियाँ, बत्तख आदि का भरपूर उत्पादन होता है। यहाँ सूअरों के बड़े-बड़े झुंड तथा भेड़-बकरियों के विशाल झुंड भी विद्यमान हैं। इस क्षेत्र में हर प्रकार की मछलियाँ प्रचुरता में उपलब्ध हैं। राजमहल से लेकर समुद्र तक अतीत में परिवहन तथा सिंचाई के लिए गंगा नदी से (बहुत यत्न और श्रमपूर्वक) काट कर बनाई गई नहरों का जाल-सा बिछा हुआ है।"



चित्र 1.1: *ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन के अंतर्गत भारत में कृषि में गतिहीनता*

सत्रहवीं शताब्दी में अपने देश की कृषि समृद्धि के बारे में लिखिए। लगभग 200 वर्ष बाद जब ब्रिटिश भारत को छोड़कर गए, उस समय की कृषि की गतिहीनता के साथ इसकी तुलना कीजिए।

बसी थी, प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से कृषि के माध्यम से ही अपनी रोजी-रोटी कमा रही थी। एक बड़ी जनसंख्या का व्यवसाय होने के बाद भी कृषि क्षेत्रक में गतिहीन विकास की प्रक्रिया चलती ही रही- यही नहीं अनेक अवसरों पर उसमें अप्रत्याशित ह्रास या गिरावट भी अनुभव की गई। भले ही कृषि अधीन क्षेत्र के प्रसार के कारण कुल कृषि उत्पादन में वृद्धि हुई हो, किंतु **कृषि उत्पादकता** में निरंतर कमी ही आती रही। कृषि क्षेत्र की गतिहीनता का मुख्य कारण औपनिवेशिक शासन द्वारा लागू की गई **भू-व्यवस्था** प्रणालियों को ही माना जा सकता है। आज के समस्त पूर्वी भारत में, जो उस समय बंगाल प्रेसीडेन्सी कहा जाता था, लागू की गई जमींदारी व्यवस्था में तो कृषि कार्यों से होने वाले समस्त लाभ को जमींदार ही हड़प जाते थे, किसानों के पास कुछ नहीं बच पाता था। यही नहीं, अधिकांश जमींदारों तथा सभी औपनिवेशिक शासन ने कृषि क्षेत्रक की दशा को सुधारने के लिए कुछ नहीं किया। जमींदारों की रुचि तो किसानों की आर्थिक दुर्दशा की अनदेखी कर, उनसे अधिक से अधिक लगान संग्रह करने तक सीमित रहती थी। इसी कारण, कृषक वर्ग को नितांत दुर्दशा और सामाजिक तनावों को झेलने को बाध्य होना पड़ा। **राजस्व व्यवस्था** की शर्तों का भी जमींदारों के इस व्यवहार के विकास में बहुत योगदान रहा है। राजस्व की निश्चित राशि सरकार के कोष में जमा कराने की तिथियाँ पूर्व निर्धारित थीं- उनके अनुसार रकम जमा नहीं करा पाने वाले जमींदारों से उनके अधिकार छीन लिए जाते थे। साथ ही, प्रौद्योगिकी के निम्न स्तर, सिंचाई सुविधाओं के अभाव और

इन्हें कीजिए

- स्वतंत्र भारत के मानचित्र की, अंग्रेजी शासन के भारत के मानचित्र से तुलना कर पता लगाइए कि देश का कौन-सा क्षेत्र पाकिस्तान का हिस्सा बन गया? यह क्षेत्र आर्थिक दृष्टि से भारत के लिए क्यों महत्त्वपूर्ण था? (इस संदर्भ में डॉ. राजेंद्र प्रसाद की पुस्तक 'इंडिया डिवाइडेड' का अध्ययन उपयोगी होगा)।
- अंग्रेजों ने भारत में किस प्रकार की राजस्व व्यवस्था लागू की? देश के किस क्षेत्र में कौन-सी राजस्व व्यवस्थाएँ लागू की गई और वहाँ उसके क्या प्रभाव रहे? आपको उन राजस्व व्यवस्थाओं की आज के भारत में कृषि परिदृश्य पर क्या छाप दिखाई देती है? इन प्रश्नों के उत्तर खोजने के लिए आप रमेशचंद्र दत्त की दो खंडों में प्रकाशित पुस्तक 'इकनॉमिक हिस्ट्री ऑफ इंडिया' का सहारा ले सकते हैं। बी.एच. बेडेन पावेल की पुस्तक: 'द लैंड सिस्टम ऑफ ब्रिटिश इंडिया' भी उपयोगी रहेगी। इसके भी दो खंड हैं। इस विषय को अधिक अच्छी तरह से समझने के लिए आप ब्रिटिश भारत का एक कृषि-मानचित्र बनाने का प्रयास करें। अपने विद्यालय में लगे कंप्यूटर का भी आप इस कार्य में प्रयोग कर सकते हैं। स्मरण रखिए, किसी भी विषय को भली प्रकार समझने-समझाने में मानचित्र का अंकन बहुत ही उपयोगी सिद्ध होता है।

उर्वरकों का नगण्य प्रयोग भी कृषि उत्पादकता के स्तर को बहुत निम्न रखने के लिए उत्तरदायी था। किसानों की दुर्दशा को और बढ़ाने में इसका भी बड़ा योगदान रहा है। देश के कुछ क्षेत्रों में **कृषि के व्यावसायीकरण** के कारण नकदी-फसलों की उच्च उत्पादकता के प्रमाण भी मिलते हैं। किंतु, उस उच्च उत्पादकता के लाभ भारतीय किसानों को नहीं मिल पाते थे। क्योंकि, उन्हें तो खाद्यान्न की खेती के स्थान पर नकदी फसलों का उत्पादन करना पड़ता था, जिनका प्रयोग अंततः इंग्लैंड में लगे कारखानों में किया जाता था। स्वतंत्रता के समय देश के विभाजन से भारत की कृषि उत्पादन व्यवस्था को एक और बड़ा धक्का लगा। अविभाजित भारत की सिंचाई सुविधाओं वाली बहुत उपजाऊ भूमि का एक बहुत बड़ा भाग पकिस्तान में चला गया। उसका भारत के कृषि क्षेत्र में उत्पादन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा। इसका सबसे अधिक प्रभाव भारत के पटसन उद्योग पर पड़ा। पटसन की खेती वाला लगभग सारा ही क्षेत्र पूर्वी पाकिस्तान (अब बांग्लादेश) में चला गया। भारतीय पटसन उद्योग (जिसमें अब तक भारत का एकाधिकार था) को कच्चे माल की कमी के कारण भारी नुकसान हुआ।

1.4 औद्योगिक क्षेत्रक

कृषि की ही भाँति औपनिवेशिक व्यवस्था के अंतर्गत भारत एक सुदृढ़ औद्योगिक आधार का विकास भी नहीं कर पाया। देश की विश्व प्रसिद्ध शिल्पकलाओं का पतन हो रहा था, किंतु उस प्रतिष्ठित परंपरा का स्थान ले सकने वाले किसी आधुनिक औद्योगिक आधार की रचना नहीं होने दी गई। भारत के इस वि-औद्योगीकरण के पीछे विदेशी शासकों का दोहरा उद्देश्य था। एक तो वे भारत को इंग्लैंड में विकसित हो रहे आधुनिक उद्योगों के लिए कच्चे माल का निर्यातक बनाना चाहते थे। दूसरे, वे उन उद्योगों के उत्पादन के लिए भारत को ही एक विशाल बाज़ार भी बनाना चाहते थे। इस प्रकार, उन उद्योगों के प्रसार के सहारे वे अपने देश (ब्रिटेन) के लिए अधिकतम लाभ सुनिश्चित करना चाहते थे। ऐसे आर्थिक परिदृश्य में भारतीय शिल्पकलाओं के पतन से जहाँ एक ओर भारी स्तर पर बेरोजगारी फैल रही थी, वहीं स्थानीय उत्पाद से वंचित भारतीय बाज़ारों में माँग का भी प्रसार हो रहा था। इस माँग को इंग्लैंड से सस्ते निर्मित उत्पादों के लाभपूर्ण आयात द्वारा पूरा किया गया।

यद्यपि उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में भारत में कुछ आधुनिक उद्योगों की स्थापना होने लगी थी, किंतु उनकी उन्नति बहुत धीमी ही रही। प्रारंभ में तो यह विकास केवल सूती वस्त्र और पटसन उद्योगों को आरंभ करने तक ही सीमित था। सूती कपड़ा मिलें प्रायः भारतीय उद्यमियों द्वारा ही लगाई गई थीं और ये देश के पश्चिमी क्षेत्रों (आज के महाराष्ट्र और गुजरात) में ही अवस्थित थीं। पटसन उद्योग की स्थापना का श्रेय विदेशियों को दिया जा सकता है। यह उद्योग केवल बंगाल प्रांत तक ही सीमित रहा। बीसवीं शताब्दी के आरंभिक वर्षों में लोहा और इस्पात उद्योग का विकास प्रारंभ हुआ। टाटा आयरन स्टील कंपनी (TISCO) की स्थापना 1907 में हुई। दूसरे विश्व युद्ध के बाद चीनी,

इन्हें कीजिए

- एक तालिका बना कर दर्शाएँ कि भारत में अन्य आधुनिक उद्योग सबसे पहले कहाँ और कब स्थापित हुआ था। क्या आप यह जानते हैं कि किसी आधुनिक उद्योग की स्थापना के लिए आधारभूत आवश्यकताएँ क्या होती हैं? उदाहरण के लिए, टाटा आयरन एंड स्टील कंपनी की स्थापना जमशेदपुर में ही क्यों की गई? (यह अब झारखंड राज्य में है)।
- आज भारत में कितने लौह और इस्पात कारखाने हैं? क्या ये लौह और इस्पात कारखाने विश्व के श्रेष्ठ संयंत्रों में गिने जाते हैं? क्या इन कारखानों की पुनर्रचना और तकनीकी उन्नयन की आवश्यकता है? यदि हाँ, तो यह कार्य किस प्रकार हो सकेगा? आजकल यह तर्क दिया जा रहा है कि जो उद्योग अर्थव्यवस्था के लिए अति महत्त्वपूर्ण नहीं है, उन्हें सार्वजनिक क्षेत्र में रखने की कोई आवश्यकता नहीं है। इस विषय में आपके क्या विचार हैं?
- भारत के मानचित्र पर उन सूती कपड़ा और पटसन मिलों को अंकित करें, जो स्वतंत्रता प्राप्ति के समय विद्यमान थीं।

सीमेंट, कागज़ आदि के कुछ कारखाने भी स्थापित हुए।

किंतु, भारत में भावी औद्योगीकरण को प्रोत्साहित करने हेतु **पूँजीगत उद्योगों** का प्राय: अभाव ही बना रहा। पूँजीगत उद्योग वे उद्योग होते हैं जो तत्कालिक उपभोग में काम आने वाली वस्तुओं के उत्पादन के लिए मशीनों और कलपुर्जों का निर्माण करते हैं। यत्र-तत्र कुछ कारखानों की स्थापना से देश की पारंपरिक शिल्प कला आधारित निर्माणशालाओं के पतन की भरपाई नहीं हो पाई। यही नहीं, नव औद्यागिक क्षेत्र की संवृद्धि दर बहुत ही कम थी और **सकल घरेलू (देशीय) उत्पाद** में इसका योगदान भी बहुत कम रहा। इस नए उत्पादन क्षेत्र की एक अन्य महत्त्वपूर्ण कमी यह थी कि इसमें सार्वजनिक क्षेत्र का कार्यक्षेत्र भी बहुत कम रहा। वास्तव में, ये क्षेत्रक प्राय: रेलों, विद्युत उत्पादन, संचार, बंदरगाहों और कुछ विभागीय उपक्रमों तक ही सीमित थे।

1.5 विदेशी व्यापार

प्राचीन समय से ही भारत एक महत्त्वपूर्ण व्यापारिक देश रहा है, किंतु औपनिवेशिक सरकार द्वारा अपनाई गई वस्तु उत्पादन, व्यापार और सीमा शुल्क की प्रतिबंधकारी नीतियों का भारत के विदेशी व्यापार की संरचना, स्वरूप और आकार पर बहुत प्रतिकूल प्रभाव पड़ा। परिणामस्वरूप भारत कच्चे उत्पाद जैसे रेशम, कपास, ऊन, चीनी, नील और पटसन आदि का निर्यातक होकर रह गया। साथ ही यह सूती, रेशमी, ऊनी वस्त्रों जैसी अंतिम उपभोक्ता वस्तुओं और इंग्लैंड के कारखानों में बनी हल्की मशीनों आदि का आयातक भी हो गया। व्यावहारिक रूप से इंग्लैंड ने भारत के आयात-निर्यात व्यापार पर अपना एकाधिकार जमाए रखा। भारत का आधे से अधिक व्यापार तो केवल इंग्लैंड तक सीमित रहा। शेष कुछ व्यापार चीन, श्रीलंका और ईरान से भी होने दिया जाता था। स्वेज नहर का व्यापार

इन्हें कीजिए

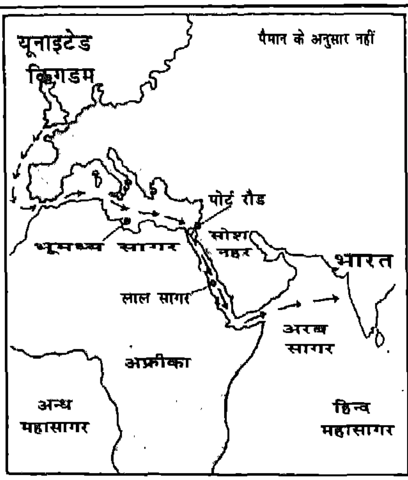
- ब्रिटिश काल की उन वस्तुओं की सूची तैयार करें, जिनका भारत से निर्यात और आयात होता था।
- भारत सरकार के वित्त मंत्रालय द्वारा प्रकाशित विभिन्न वर्षों के आर्थिक सर्वेक्षण से भारत के आयात और निर्यात से संबंधित विभिन्न वस्तुओं की सूचना एकत्रित करें। इन आयातों और निर्यातों की तुलना स्वतंत्रता-पूर्व अवधि से करें। उन सभी प्रमुख पत्तनों के नाम भी लिखें, जो अब भारत के अधिकांश विदेशी व्यापार को संभालते हैं।

मार्ग खुलने से तो भारत के व्यापार पर अंग्रेज़ी नियंत्रण और भी सख्त हो गया (देखें बॉक्स 1.3)।

विदेशी शासन के अंतर्गत भारतीय आयात-निर्यात की सबसे बड़ी विशेषता निर्यात अधिशेष का बड़ा आकार रहा। किंतु, इस अधिशेष की भारतीय अर्थव्यवस्था को बहुत भारी लागत चुकानी पड़ी। देश के आंतरिक बाज़ारों में अनाज, कपड़ा और मिट्टी तेल जैसी अनेक आवश्यक वस्तुओं का भारी अभाव हो गया। यही नहीं, इस निर्यात अधिशेष का देश में सोने और चाँदी के प्रवाह पर भी कोई प्रभाव नहीं पड़ा। वास्तव में, इसका प्रयोग तो अंग्रेजों की भारत पर शासन करने के लिए गढ़ी गई व्यवस्था का खर्च उठाने में ही हो जाता था। अंग्रेज़ी सरकार के युद्धों पर व्यय तथा अदृश्य मदों के आयात पर व्यय के द्वारा भारत की संपदा का दोहन हुआ।

1.6 जनांकिकीय परिस्थिति

ब्रिटिश भारत की जनसंख्या के विस्तृत ब्यौरे सबसे पहले 1881 की जनगणना के तहत



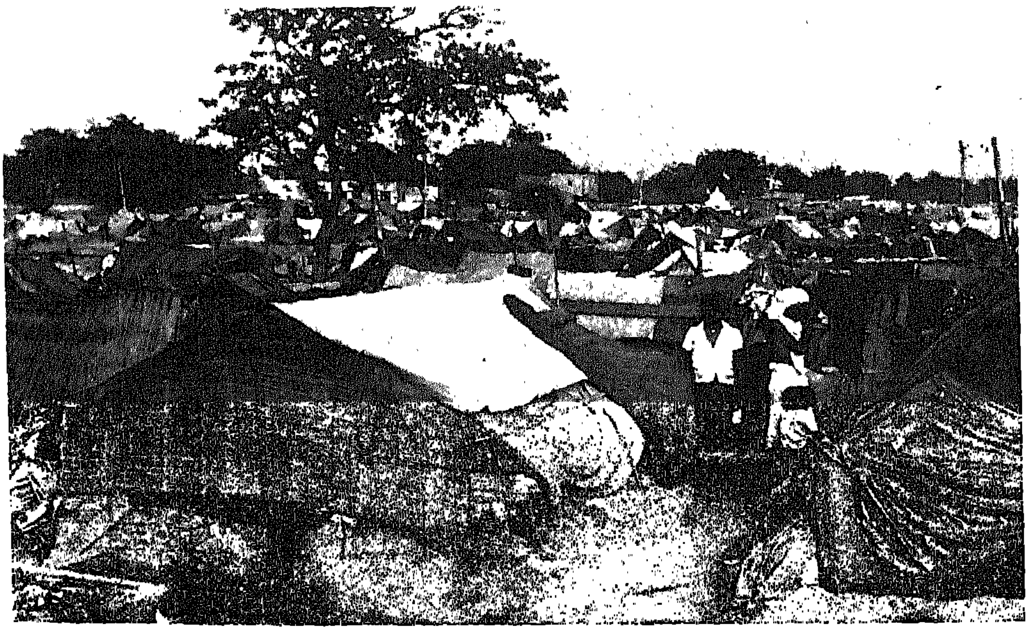
*चित्र 1.2 **स्वेज नहर:** भारत और इंग्लैंड के बीच राजमार्ग के रूप में प्रयुक्त स्वेज नहर*

बॉक्स 1.3 स्वेज नहर के माध्यम से व्यापार

स्वेज नहर उत्तर-पूर्वी मिस्र में स्वेज स्थल-संधि के आर-पार उत्तर से दक्षिण की ओर प्रवाहित होने वाला कृत्रिम जलमार्ग है। यह भूमध्य सागर की, मिस्र पत्तन पोर्ट सईद को लाल सागर की एक प्रशाखा स्वेज की खाड़ी से जोड़ता है। इस नहर से अमेरिका और यूरोप से आने वाले जलयानों को दक्षिण एशिया, पूर्वी अफ्रीका तथा प्रशांत महासागर तटवर्ती देशों के लिए एक छोटा और सीधा जलमार्ग सुलभ हो गया है। अब उन्हें अफ्रीका के दक्षिणी छोर की परिक्रमा नहीं करनी पड़ती। स्वेज नहर आज आर्थिक और सामरिक दृष्टि से विश्व का सबसे महत्त्वपूर्ण जलमार्ग है। वर्ष 1869 में इसके खुल जाने से परिवहन लागतें बहुत कम हो गई और भारतीय बाजार तक पहुँचना सुगम हो गया।

एकत्रित किए गए। यद्यपि इसकी कुछ सीमाएँ थीं, फिर भी इसमें भारत की जनसंख्या संवृद्धि की विषमता बहुत स्पष्ट थी। बाद में, प्रत्येक दस वर्ष बाद जनगणना होती रही। वर्ष 1921 के पूर्व का भारत जनांकिकीय संक्रमण के प्रथम सोपान में था। द्वितीय सोपान का आरंभ 1921 के बाद माना जाता है। किंतु, उस समय तक न तो भारत की जनसंख्या बहुत विशाल थी और न ही उसकी संवृद्धि दर बहुत अधिक थी।

सामाजिक विकास के विभिन्न सूचक भी बहुत उत्साहवर्धक नहीं थे। कुल मिलाकर साक्षरता दर तो 16 प्रतिशत से भी कम ही थी। इसमें महिला साक्षरता दर नगण्य, केवल 7 प्रतिशत आँकी गई थी। जन-स्वास्थ्य सेवाएँ तो अधिकांश को सुलभ ही नहीं थी। जहाँ ये सुविधाएँ उपलब्ध थीं भी, वहाँ नितांत ही अपर्याप्त थीं। परिणामस्वरूप, जल और वायु के सहारे फैलने वाले संक्रमण रोगों का प्रकोप था, उनसे व्यापक जन-हानि होना एक आम बात थी। कोई आश्चर्य नहीं कि उस समय **सकल मृत्यु दर** बहुत ऊँची थी। विशेष रूप से **शिशु मृत्यु दर** अधिक चौंकाने वाली थी। आज भले ही हमारे देश में शिशु मृत्यु दर 63 प्रति हजार हो गई है, पर उस समय तो ये दर 218 प्रति हजार थी। **जीवन प्रत्याशा** स्तर भी आज के 63 वर्ष की तुलना में केवल 32 वर्ष ही था। विश्वस्त आँकड़ों के अभाव में यह कह पाना कठिन है कि उस समय गरीबी का प्रसार कितना था। इसमें कोई संदेह नहीं है कि औपनिवेशिक शासन के दौरान भारत में अत्यधिक गरीबी व्याप्त थी, परिणामस्वरूप भारत की जनसंख्या की दशा और भी बदतर हो गई।



चित्र 1.3 *निर्धनता, कुपोषण और स्वास्थ्य सुविधाओं के अभाव में जनसंख्या की कम वृद्धि दर*

इन्हें कीजिए

- क्या आप स्वतंत्रता पूर्व भारत में बारंबार अकाल पड़ने का कारण बता सकते हैं? इस विषय में नोबेल पुरस्कार से सम्मानित अर्थशास्त्री अमर्त्य सेन की पुस्तक 'गरीबी और अकाल' बहुत उपयोगी होगी।
- स्वतंत्रता के समय भारत की जनसंख्या के व्यावसायिक विभाजन का पाई चार्ट बनाइए।

1.7 व्यावसायिक संरचना

औपनिवेशिक काल में विभिन्न औद्योगिक क्षेत्रकों में लगे कार्यशील श्रमिकों के आनुपातिक विभाजन में कोई परिवर्तन नहीं आया। कृषि सबसे बड़ा व्यवसाय था, जिसमें 70-75 प्रतिशत जनसंख्या लगी थी। विनिर्माण तथा सेवा क्षेत्रकों में क्रमश: 10 प्रतिशत तथा 15-20 प्रतिशत जन-समुदाय को रोजगार मिल पा रहा था। क्षेत्रीय विषमताओं में वृद्धि एक बड़ी विलक्षणता रही । उस समय की मद्रास प्रेसीडेंसी (आज के तमिलनाडु, आंध्र, कर्नाटक और केरल प्रांतों के क्षेत्रों) के कुछ क्षेत्रों में कार्यबल की कृषि क्षेत्रक पर निर्भरता में कमी आ रही थी, विनिर्माण तथा सेवा क्षेत्रकों का महत्त्व तदनुरूप बढ़ रहा था। किंतु उसी अवधि में पंजाब, राजस्थान और उड़ीसा के क्षेत्रों में कृषि में लगे श्रमिकों के अनुपात में वृद्धि आँकी गई।

1.8 आधारिक सरंचना

औपनिवेशिक शासन के अंतर्गत देश में रेलों, पत्तनों, जल परिवहन व डाक-तार आदि का विकास हुआ। इसका ध्येय जनसामान्य को अधिक सुविधाएँ प्रदान करना नहीं था। ये कार्य तो औपनिवेशिक हित साधन के ध्येय से किए गए थे। अंग्रेज़ी शासन से पहले बनी सड़कें आधुनिक यातायात साधनों के लिए उपयुक्त नहीं थी। औपनिवेशिक शासकों ने भी संसाधनों (धन) के अभाव के नाम पर उनके विकास के लिए कुछ अधिक प्रयास नहीं किए। जो सड़कें उन्होंने बनाई, उनका ध्येय भी देश के भीतर उनकी सेनाओं के आवागमन की सुविधा तथा देश के भीतरी भागों से कच्चे माल को निकटतम रेलवे स्टेशन या पत्तन तक पहुँचाने में सहायता करना मात्र था। इस प्रकार, माल को इंग्लैंड या अन्य लाभकारी बाज़ारों तक पहुँचाना आसान हो जाता था। ग्रामीण क्षेत्रों तक माल पहुँचाने में सक्षम सभी मौसम में उपयोग होने वाले सड़क मार्गों का अभाव निरंतर बना ही रहा। वर्षाकाल में तो यह अभाव और भी भीषण हो जाता था। स्वाभाविक ही था कि प्राकृतिक आपदाओं और अकाल आदि की स्थिति में ग्रामीण क्षेत्रों में बसे देशवासियों का जीवन कठिनाइयों के कारण दूभर हो जाता था।

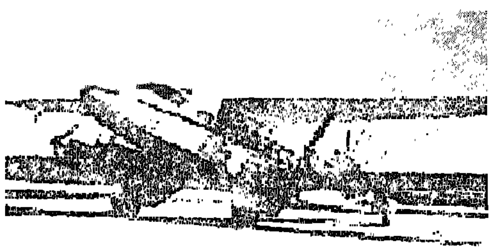
अंग्रेज़ों ने 1850 में भारत में रेलों का आरंभ किया। यही उनका सबसे महत्त्वपूर्ण योगदान माना जाता है। रेलों ने भारत की अर्थव्यवस्था की संरचना को दो महत्त्वपूर्ण प्रकार से प्रभावित किया। एक तो इससे लोगों को भूक्षेत्रीय एवं सांस्कृतिक व्यवधानों को कम कर आसानी से लंबी यात्राएँ करने के अवसर प्राप्त हुए, तो दूसरी ओर भारतीय कृषि के व्यावसायीकरण को बढ़ावा मिला। किंतु, इस



चित्र 1.4 *बंबई तथा थाणे को जोड़ने वाला पहला रेल पुल, 1854*

व्यावसायीकरण भारतीय ग्रामीण अर्थव्यवस्थाओं के आत्मनिर्भरता के स्वरूप पर विपरीत प्रभाव पड़ा। भारत के निर्यात व्यापार की माँग में नि:संदेह विस्तार हुआ, परंतु इसके लाभ भारतवासियों को मुश्किल से ही प्राप्त हुए। इस प्रकार जनसामान्य को मिले सांस्कृतिक लाभ, व्यापक होते हुए भी, देश की आर्थिक हानि की भरपाई नहीं कर पाए।

सड़कों तथा रेलों के विकास के साथ-साथ औपनिवेशिक व्यवस्था ने आंतरिक व्यापार तथा समुद्री जलमार्गों के विकास पर भी ध्यान दिया। किंतु ये उपाय बहुत संतोषजनक नहीं थे। उस समय के आंतरिक जल मार्ग अलाभकारी सिद्ध हुए। उड़ीसा की तटवर्ती नहर इसका विशेष उदाहरण है। यद्यपि इस नहर का निर्माण सरकारी कोष से किया गया था, तथापि यह रेलमार्ग से स्पर्धा नहीं कर पाई। नहर के समानांतर रेलमार्ग विकसित होने के बाद अंतत: उस जलमार्ग को छोड़ दिया गया। भारत में विकसित की गई महँगी तार व्यवस्था का मुख्य ध्येय तो कानून व्यवस्था को बनाए रखना ही था। दूसरी ओर डाक सेवाएँ अवश्य जनसामान्य को सुविधा प्रदान कर रही थीं, किंतु वे बहुत ही अपर्याप्त थीं। आधारिक सरंचनाओं की वर्तमान अवस्था के विषय में आपको अध्याय-8 में विस्तृत जानकारी दी जाएगी।



चित्र 1.5 टाटा एयरलाइंस: *टाटा संस के विभाग के रूप में इस कंपनी की स्थापना से 1932 में भारत में उड्डयन क्षेत्र की नींव रखी गई*

1.9 निष्कर्ष

स्वतंत्रता प्राप्ति तक, 200 वर्षों के विदेशी शासन का प्रभाव भारतीय अर्थव्यवस्था के प्रत्येक आयाम पर अपनी पैठ बना चुका था। कृषि क्षेत्रक पहले से ही अत्यधिक श्रम-अधिशेष के भार से लदा था। उसकी उत्पादकता का स्तर भी बहुत कम था। औद्योगिक क्षेत्रक भी

क्रियात्मक गतिविधियाँ

अभी भी कुछ क्षेत्रों में यह धारणा व्याप्त है कि ब्रिटिश शासन भारत के लिए लाभकारी ही था। इस धारणा के बारे में जानकारियों पर आधारित चर्चा की आवश्यकता है। आपका इस धारणा के प्रति क्या दृष्टिकोण होगा? अपनी कक्षा में इस विषय पर चर्चा आयोजित करें: क्या अंग्रेज़ी शासन भारत के लिए अच्छा था?

आधुनिकीकरण वैविध्य, क्षमता संवर्धन और सार्वजनिक निवेश में वृद्धि की माँग कर रहा था। विदेशी व्यापार तो केवल इंग्लैंड की औद्योगिक क्रांति को पोषित कर रहा था। प्रसिद्ध रेलवे नेटवर्क सहित सभी आधारिक सरंचनाओं में उन्नयन, प्रसार तथा जनोन्मुखी विकास की आवश्यकता थी। व्यापक गरीबी और बेरोजगारी भी सार्वजनिक आर्थिक नीतियों को जनकल्याणोन्मुखी बनाने का आग्रह कर रही थी। संक्षेप में, देश में सामाजिक और आर्थिक चुनौतियाँ बहुत अधिक थीं।

पुनरावर्तन

- स्वतंत्रता के बाद की आर्थिक विकास की उपलब्धियों को सही रूप में समझ पाने के लिए स्वतंत्रता पूर्व की अर्थव्यवस्था की सही जानकारी की आवश्यकता है।
- औपनिवेशिक शासकों की आर्थिक नीतियाँ शासित देश और वहाँ के लोगों के आर्थिक विकास से प्रेरित नहीं थीं, उनका ध्येय तो इंग्लैंड के आर्थिक हितों का संरक्षण और संवर्धन था।
- भले ही भारत की जनसंख्या का बहुत बड़ा भाग कृषि से ही अपनी आजीविका पाता था, किंतु कृषि क्षेत्रक गतिहीन ही रहा– इसमें निरंतर ह्रास के ही प्रमाण मिलते हैं।
- भारत की अंग्रेज़ी सरकार द्वारा अपनाई गई सुव्यवस्थित नीतियों के कारण भारत के विश्व प्रसिद्ध हस्तकला उद्योगों का पतन होता रहा और उनके स्थान पर किसी आधुनिक औद्योगिक आधार की रचना नहीं हो पाई।
- पर्याप्त सार्वजनिक स्वास्थ्य सेवाओं का अभाव, बार-बार प्राकृतिक आपदाओं और अकाल ने जनसामान्य को बहुत ही निर्धन बना डाला और इसके कारण उच्च मृत्युदर का सामना करना पड़ा।
- यद्यपि अपने औपनिवेशिक हितों से प्रेरित होकर विदेशी शासकों ने आधारिक सरंचना सुविधाओं को सुधारने के प्रयास किए थे, परंतु इन प्रयासों में उनका निहित स्वार्थ था। परंतु, दीर्घकालिक दृष्टि से हम कह सकते हैं कि उन सुविधाओं को आधार बनाकर स्वतंत्र भारत की सरकार देश की भावी आर्थिक-सामाजिक विकास योजनाओं की रचना कर पाने में सफल भी रही है।



अभ्यास

1. भारत में औपनिवेशिक शासन की आर्थिक नीतियों का केंद्र बिंदु क्या था? उन नीतियों के क्या प्रभाव हुए?
2. औपनिवेशिक काल में भारत की राष्ट्रीय आय का आकलन करने वाले प्रमुख अर्थशास्त्रियों के नाम बताइए।
3. औपनिवेशिक शासनकाल में कृषि की गतिहीनता के मुख्य कारण क्या थे?
4. स्वतंत्रता के समय देश में कार्य कर रहे कुछ आधुनिक उद्योगों के नाम बताइए।
5. स्वतंत्रता पूर्व अंग्रेज़ों द्वारा भारत के व्यवस्थित वि-औद्योगीकरण के दोहरे ध्येय क्या थे?
6. अंग्रेज़ी शासन के दौरान भारत के परंपरागत हस्तकला उद्योगों का विनाश हुआ। क्या आप इस विचार से सहमत हैं? अपने उत्तर के पक्ष में कारण बताइए।
7. भारत में आधारिक सरंचना विकास की नीतियों से अंग्रेज़ अपने क्या उद्देश्य पूरा करना चाहते थे?
8. ब्रिटिश औपनिवेशिक प्रशासन द्वारा अपनाई गई औद्योगिक नीतियों की कमियों की आलोचनात्मक विवेचना करें।
9. औपनिवेशिक काल में भारतीय संपत्ति के निष्कासन से आप क्या समझते हैं?
10. जनांकिकीय संक्रमण के प्रथम से द्वितीय सोपान की ओर संक्रमण का विभाजन वर्ष कौन-सा माना जाता है?
11. औपनिवेशिक काल में भारत की जनांकिकीय स्थिति का एक संख्यात्मक चित्रण प्रस्तुत करें।
12. स्वतंत्रता पूर्व भारत की जनसंख्या की व्यावसायिक सरंचना की प्रमुख विशेषताएँ समझाइए।
13. स्वतंत्रता के समय भारत के समक्ष उपस्थित प्रमुख आर्थिक चुनौतियों को रेखांकित करें।
14. भारत में प्रथम सरकारी जनगणना किस वर्ष में हुई थी?
15. स्वतंत्रता के समय भारत के विदेशी व्यापार के परिमाण और दिशा की जानकारी दें।
16. क्या अंग्रेज़ों ने भारत में कुछ सकारात्मक योगदान भी दिया था? विवेचना करें।

अतिरिक्त गतिविधियाँ

1. स्वतंत्रता के पूर्व भारत में ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्रों में लोगों को उपलब्ध वस्तुओं और सेवाओं की सूची बनाइए। उस सूची की आज के उपभोग स्वरूप से तुलना करें। इस प्रकार जन-सामान्य के जीवन स्तर में आए परिवर्तनों का आकलन करें।
2. अपने आस-पास के गाँवों ओर शहरों के स्वतंत्रता पूर्व के चित्र संग्रहित करें। उन्हें आज के परिदृश्यों से मिला कर देखें। आप उसमें क्या परिवर्तन देखते हैं? क्या इनमें आए परिवर्तन सुखद हैं या दुखद? चर्चा करें।
3. अपने शिक्षक के सहयोग से इस विषय पर परिचर्चा करें : क्या भारत में जमींदारी प्रथा का सचमुच उन्मूलन हो गया है? यदि आपका सामान्य मत नकारात्मक है, तो आपके विचार से इसे समाप्त करने के लिए क्या कदम उठाए जाने चाहिए और क्यों?
4. स्वतंत्रता के समय हमारे देश की जनता अपनी आजीविका के लिए क्या-क्या कार्य करती थी? आज जनता के मुख्य व्यवसाय क्या हैं? देश में चल रहे आर्थिक सुधारों को ध्यान में रखकर आज से पंद्रह वर्ष बाद वर्ष 2020 में आप किस प्रकार के व्यावसायिक परिदृश्य की कल्पना करेंगे?

संदर्भ

बेड़न-पॉवल बी.एच 1892. द *लेंड सिस्टम ऑफ ब्रिटिश इंडिया, खंड एक, दो और तीन* ऑक्सफोर्ड क्लेरेंडन प्रेस, ऑक्सफोर्ड।

बचन्न डेनियल एच *1966. डेवलपमेंट ऑफ कैपिटलिस्ट एंटरप्राइज इन इंडिया*, फैंक कास एंड कं, लंदन।

चंद्र बिपिन 1993. द *कालोनियल लीगेसी*, संकलित बिमल जालान (संपादक)। द इंडियन इकॉनोमी: *प्रॉबलम्स एंड प्रॉस्पेक्ट्स*, पेंग्विन बुक्स, नई दिल्ली।

दत्त रमेश चंद्र 1963. *इकनॉमिक हिस्ट्री ऑफ इंडिया, खंड 1,2* सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, नई दिल्ली।

कुमार धर्म एंड मेघनाद देसाई (संपादक) 1983. *कैंब्रिज इकनॉमिक हिस्ट्री ऑफ इंडिया,* कैंब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, कैंब्रिज।

मिल जेम्ज 1972. *हिस्ट्री ऑफ ब्रिटिश इंडिया*, ऐसोसिएटिड प्रेस, नई दिल्ली।

प्रसाद राजेंद्र 1946. *इंडिया डिवाइडेड*, हिंद किताब, मुंबई।

सेन अमर्त्य 1999. *पॉवर्टी एंड फैमीन्स*, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली।

2

भारतीय अर्थव्यवस्था 1950-1990

इस पाठ के अध्ययन के बाद आप

- भारत की पंचवर्षीय योजनाओं के लक्ष्यों को जानेंगे;
- वर्ष 1950 से 1990 तक विभिन्न क्षेत्रकों, जैसे कृषि और उद्योग में अपनाई गई विकास की नीतियों को समझेंगे;
- एक नियमित अर्थव्यवस्था के गुणों तथा सीमाओं की विवेचना कर सकेंगे।

> ***भारत में योजना का मुख्य उद्देश्य ..... विकास की एक ऐसी प्रक्रिया प्रारंभ करना है जो रहन-सहन के स्तर को ऊँचा उठाए तथा लोगों के लिए समृद्ध एवं वैविध्यपूर्ण जीवन के नये अवसर उपलब्ध करायेगी।***
>
> ***-प्रथम पचंवर्षीय योजना***

2.1 परिचय

15 अगस्त, 1947 के दिन भारत में स्वतंत्रता का एक नया प्रभात उदित हुआ। अंततः दो सौ वर्षों के ब्रिटिश शासन के बाद हम अपने भाग्य के विधाता बन गए। अब राष्ट्र के नव-निर्माण का कार्य हमारे अपने हाथों में था। स्वतंत्र भारत के नेताओं को अन्य बातों के साथ-साथ यह भी तय करना था कि हमारे देश में कौन-सी आर्थिक प्रणाली सबसे उपयुक्त रहेगी, जो केवल कुछ लोगों के लिए नहीं बल्कि सर्वजन कल्याण के लिए कार्य करेगी। विभिन्न प्रकार की आर्थिक प्रणालियाँ हो सकती हैं (देखें बॉक्स 2.1), पर जवाहरलाल नेहरू को समाजवाद का प्रतिमान सबसे अच्छा लगा। किंतु वे भी भूतपूर्व सोवियत संघ की उस नीति के पक्षधर नहीं थे, जिसमें उत्पादन के सभी साधन (खेत और कारखाने) सरकार के स्वामित्व के अंतर्गत थे। कोई निजी संपत्ति नहीं थी। लोकतंत्र के प्रति वचनबद्ध भारत जैसे देश में सरकार के लिए पूर्व सोवियत संघ की तरह, अपने नागरिकों के भू-स्वामित्व के प्रतिमानों तथा अन्य संपत्तियों को परिवर्तित कर पाना संभव नहीं था।

नेहरू तथा स्वंतत्र भारत के अनेक अन्य नेताओं और चिंतकों ने मिलकर नव-स्वतंत्र भारत के लिए पूँजीवाद तथा समाजवाद के अतिवादी व्याख्या के किसी विकल्प की खोज की। बुनियादी तौर पर यद्यपि उन्हें समाजवाद से सहानुभूति थी, फिर भी उन्होंने ऐसी आर्थिक प्रणाली अपनाई जो उनके विचार में समाजवाद की श्रेष्ठ विशेषताओं से युक्त, किंतु कमियों से मुक्त, थी। इसके अनुसार भारत एक ऐसा 'समाजवादी' समाज होगा, जिसमें सार्वजनिक क्षेत्रक एक सशक्त क्षेत्रक होगा, जिसके अंतर्गत निजी संपत्ति और लोकतंत्र का भी स्थान होगा।

इन्हें कीजिए

- विश्व में प्रचलित विभिन्न आर्थिक प्रणालियों का एक चार्ट बनाइए। पूँजीवादी, समाजवादी तथा मिश्रित अर्थव्यवस्था वाले देशों की सूची बनाइए।
- किसी कृषि फॉर्म पर अपनी कक्षा के साथ भ्रमण की योजना बनाइए। कक्षा के सात समूह बनायें और प्रत्येक समूह को एक विशेष विषय में जानकारी एकत्र करने का काम सौंप दें। उदाहरण के लिए, इस भ्रमण का उद्देश्य, इसमें खर्च होने वाली धन राशि, लगने वाला समय तथा संसाधन, साथ जाने वाले ऐसे व्यक्ति जिनसे संपर्क स्थापित करना है, भ्रमण के स्थानों के नाम, पूछे जाने वाले संभावित प्रश्न आदि। अपने शिक्षक की सहायता से इन विशिष्ट उद्देश्यों का संग्रह कीजिए तथा ऐसे कृषि फार्म के भ्रमण की सफलता के दीर्घकालिक उद्देश्यों से उनकी तुलना कीजिए।

बॉक्स 2.1 आर्थिक प्रणालियों के प्रकार

प्रत्येक समाज को तीन प्रश्नों के उत्तर देने होते हैं:

- देश में किन वस्तुओं और सेवाओं का उत्पादन किया जाए?
- वस्तुएँ और सेवाएँ किस प्रकार उत्पादित की जाएँ? उत्पादक इस कार्य में मानव श्रम का अधिक प्रयोग करे अथवा पूँजी (मशीनों) का?
- उत्पादित वस्तुओं और सेवाओं का विभिन्न व्यक्तियों के बीच किस प्रकार वितरण किया जाना चाहिए?

इन सभी प्रश्नों का एक उत्तर तो माँग और पूर्ति का **बाज़ार की शक्तियों** पर निर्भर करता है। बाज़ार अर्थव्यवस्था में , जिसे पूँजीवादी अर्थव्यवस्था भी कहते हैं, उन्हीं उपभोक्ता वस्तुओं का उत्पादन होता है जिनकी बाज़ार में माँग है। इसमें, वही वस्तुएँ उत्पादित की जाती हैं जिन्हें देश के घरेलू या विदेशी बाज़ारों में सलाभ बेचा जा सके। यदि कारों की माँग है तो कारों का उत्पादन होगा और साइकिलों की मांग है तो साइकिलों का उत्पादन होगा। यदि श्रम, पूँजी की अपेक्षा सस्ता है तो अधिक श्रम प्रधान विधियों का प्रयोग होगा और यदि श्रम की अपेक्षा पूँजी सस्ती है, तो उत्पादन की अधिक पूँजी प्रधान विधियों का प्रयोग होगा। पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में उत्पादित वस्तुओं का विभिन्न व्यक्तियों के बीच वितरण उनकी आवश्यकताओं के अनुसार नहीं होता। अधिकांश विभाजन इस आधार पर होता है कि व्यक्तियों की क्रय-क्षमता कितनी है और वे किन वस्तुओं को खरीदने को इच्छुक हैं। अभिप्राय यह है कि बीमार व्यक्ति अपेक्षित दवा का तभी प्रयोग कर पाएगा, जब उसके पास दवा खरीदने की क्षमता होगी। यदि क्रय क्षमता नहीं है तो चाहे कितनी भी आवश्यकता क्यों न हो, वह व्यक्ति उसका उपयोग नहीं कर पाएगा। हमारे प्रथम प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू को ऐसी व्यवस्था पसंद नहीं थी, क्योंकि ऐसी व्यवस्था को अपनाने से हमारे देश के अधिकांश लोगों को अपनी स्थिति सुधारने का अवसर ही नहीं मिल पाता।

समाजवादी समाज इन तीनों प्रश्नों के उत्तर पूर्णतया भिन्न तरीके से देता है। समाजवादी समाज में सरकार ही यह निर्णय लेती है कि समाज की आवश्यकताओं के अनुसार भिन्न वस्तुओं का उत्पादन किया जाए। यह माना जाता है कि सरकार यह जानती है कि देश के लोगों के हित में क्या है, इसीलिए लोगों की वैयक्तिक इच्छाओं को कोई महत्त्व नहीं दिया जाता। सरकार ही यह निर्णय करती है कि वस्तुओं का उत्पादन तथा वितरण किस प्रकार किया जाए। सिद्धांततः यह माना जाता है कि समाजवाद में वितरण लोगों की आवश्यकता के आधार पर होता है, उनकी क्रय क्षमता के आधार पर नहीं। इसके विपरीत एक समाजवादी राष्ट्र सभी जरूरतमंद नागरिकों को निःशुल्क स्वास्थ्य सेवाएँ सुलभ कराता है। समाजवादी व्यवस्था में निजी संपत्ति का कोई स्थान नहीं होता क्योंकि प्रत्येक वस्तु राज्य की होती है। बीसवीं शताब्दी के अंतिम दशकों में सोवियत संघ के विघटन के बाद सोवियत संघ तथा शेष पूर्वी यूरोपीय देशों से समाजवादी अर्थव्यवस्थाएँ भी समाप्त हो गई।

अधिकांश अर्थव्यवस्थाएँ मिश्रित अर्थव्यवस्थाएँ हैं, अर्थात् सरकार तथा बाज़ार एक साथ इन तीनों प्रश्नों के उत्तर देते हैं कि क्या उत्पादन किया जाए, किस प्रकार उत्पादन हो तथा किस प्रकार वितरण किया जाए। मिश्रित अर्थव्यवस्थाओं में बाज़ार उन्हीं वस्तुओं और सेवाओं को सुलभ कराता है, जिसका वह अच्छा उत्पादन कर सकता है तथा सरकार उन आवश्यक वस्तुओं और सेवाओं को सुलभ कराती है, जिन्हें बाज़ार सुलभ कराने में विफल रहता है।

बॉक्स 2.2 योजना क्या है?

योजना इसकी व्याख्या करती है कि किसी देश के संसाधनों का प्रयोग किस प्रकार किया जाना चाहिए। योजना के कुछ सामान्य तथा कुछ विशेष उद्देश्य होते हैं, जिनको एक निर्दिष्ट समयावधि में प्राप्त करना होता है। भारत में योजनाएँ पाँच वर्ष की अवधि की होती हैं और इसे पंचवर्षीय योजनाएँ कहा जाता है (यह शब्दावली राष्ट्रीय नियोजन में अग्रणी देश पूर्व सोवियत संघ से ही ली गई है)। हमारे योजना के प्रलेखों में केवल पाँच वर्ष की योजना अवधि में प्राप्त किये जाने वाले उद्देश्यों का ही उल्लेख नहीं किया गया, अपितु उनमें आगामी बीस वर्षों में प्राप्त किए जाने वाले उद्देश्यों का भी उल्लेख होता है। इस दीर्घकालिक योजना को परिप्रेक्ष्यात्मक योजना कहते हैं। पंचवर्षीय योजनाओं द्वारा परिप्रेक्ष्यात्मक योजनाओं के लिए आधार प्राप्त होने की अपेक्षा की जाती है।

यह तो संभव नहीं होगा कि सभी योजनाओं में उसके सभी लक्ष्यों को एक समान महत्त्व दिया जाए। वस्तुतः विभिन्न लक्ष्यों में कुछ अंतर्द्वंद्व भी हो सकता है। उदाहरण के लिए, यदि प्रौद्योगिकी श्रम की आवश्यकता को कम करती हैं तो आधुनिक प्रौद्योगिकी के शुरू करने के लक्ष्य तथा रोजगार बढ़ाने के लक्ष्य में विरोध हो सकता है। आयोजकों को इस प्रकार के विरोधों का संतुलन करना पड़ता है- यह कार्य इतना सहज नहीं है। भारत की विभिन्न योजनाओं में अलग-अलग लक्ष्यों पर बल दिया गया है।

हमारी पंचवर्षीय योजनाएँ यह नहीं बतातीं कि प्रत्येक वस्तु और सेवा का कितना उत्पादन किया जाएगा। यह न तो संभव है और न ही आवश्यक (पूर्व सोवियत संघ ने यह कार्य करने का प्रयास किया था और वह पूरी तरह विफल रहा)। अतः इतना ही पर्याप्त है कि योजनाएँ उन्हीं क्षेत्रकों के विषय में स्पष्ट लक्ष्य निर्धारित करें जिनमें उनकी महत्वपूर्ण भूमिका हो, जैसे विद्युत् उत्पादन और सिंचाई आदि। शेष को बाज़ार पर छोड़ दिया जाना ही अधिक श्रेयस्कर रहता है।

सरकार अर्थव्यवस्था के लिए योजना बनायेगी (देखें बॉक्स 2.2)। निजी क्षेत्रक को भी योजना प्रयास का एक अंग बनने के लिए प्रोत्साहित किया जायेगा।

औद्योगिक नीति प्रस्ताव, 1948 तथा भारतीय संविधान के नीति निदेशक सिद्धांतों का भी यही दृष्टिकोण है। वर्ष 1950 में प्रधानमंत्री की अध्यक्षता में **योजना आयोग** की स्थापना की गई। इस प्रकार पंचवर्षीय योजनाओं के युग का सूत्रपात हुआ।

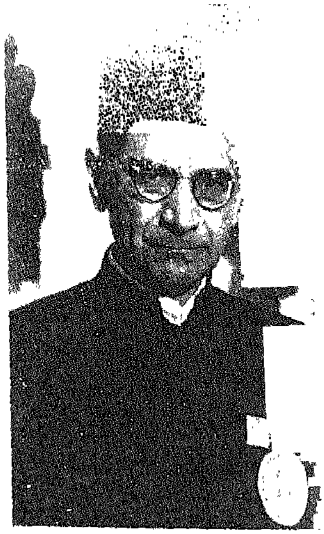
2.2 पंचवर्षीय योजनाओं के लक्ष्य

किसी योजना के स्पष्टतः निर्दिष्ट लक्ष्य होने चाहिए। पंचवर्षीय योजनाओं के लक्ष्य हैं: संवृद्धि, आधुनिकीकरण, आत्मनिर्भरता और समानता। इसका अर्थ यह नहीं है कि प्रत्येक योजना में इन लक्ष्यों को एक समान महत्त्व दिया गया है। सीमित संसाधनों के कारण प्रत्येक योजना में ऐसे लक्ष्यों का चयन करना पड़ता है, जिनको प्राथमिकता दी जानी है। हाँ, योजनाकारों को यह सुनिश्चित करना होता है कि जहाँ तक संभव हो, चारों उद्देश्यों में कोई अंतर्विरोध न हो। आइए, योजना के इन लक्ष्यों के विषय में विस्तार से जानने का प्रयास करें।

संवृद्धिः इसका अर्थ है देश में वस्तुओं और सेवाओं की उत्पादन क्षमता में वृद्धि। इसका अभिप्राय उत्पादक पूँजी के अधिक भंडार या परिवहन, बैंकिंग आदि सहायक सेवाओं का विस्तार या उत्पादक पूँजी तथा सेवाओं की

बॉक्स 2.3 महालनोबिस: भारतीय योजनाओं के निर्माता

हमारी पंचवर्षीय योजनाओं के निर्माण में अनेक प्रसिद्ध विचारकों का योगदान रहा है। उनमें सांख्यिकीविद् प्रशांतचन्द्र महालनोबिस का नाम उल्लेखनीय है। द्वितीय पंचवर्षीय योजना का सामान्यत: विकासात्मक योजना में एक अति महत्वपूर्ण योगदान है। योजना का काम सही मायने में द्वितीय पंचवर्षीय योजना से प्रारंभ हुआ। इसमें भारतीय योजना के लक्ष्यों से संबंधित आधारिक विचार दिये गये हैं। यह योजना महालनोबिस के विचारों पर आधारित थी। इस अर्थ में, उन्हें भारतीय योजना का निर्माता माना जा सकता है।



महालनोबिस का जन्म 1893 में कलकत्ता (कोलकाता) में हुआ था। इनकी शिक्षा प्रेसीडेंसी कॉलेज कलकत्ता (कोलकाता) तथा सेंट्रल युनिवर्सिटी, इंग्लैंड में हुई। सांख्यिकी विषय में उनके योगदान के कारण उन्हें अंर्तराष्ट्रीय ख्याति मिली। 1946 में उन्हें ब्रिटेन की एक सोसाइटी का फेलो (सदस्य) बनाया गया। यह वैज्ञानिकों का एक सर्वाधिक प्रतिष्ठित संगठन है; जिसका सदस्य केवल उत्कृष्ट वैज्ञानिकों को ही बनाया जाता है।

महालनोबिस ने कोलकाता में भारतीय सांख्यिकी संस्थान (आई.एस.आई) स्थापना की तथा 'सांख्य' नामक एक जर्नल निकाला, जो आज भी सांख्यिकीविदों के लिये परस्पर विचार-विमर्श के लिये एक प्रतिष्ठित मंच बना हुआ है। आज भी आई.एस.आई. तथा सांख्य दोनों को ही समस्त विश्व में सांख्यिकीविदों और अर्थशास्त्रियों द्वारा अतिसम्मान की दृष्टि से देखा जाता है।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना के दौरान महालनोबिस ने भारत के आर्थिक विकास के लिए भारत तथा विदेशों से प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों को आमंत्रित किये जाने की सलाह दी। कालांतर में इनमें से कुछ अर्थशास्त्रियों को नोबेल पुरस्कार मिला। यह इस बात को दर्शाता है कि उन्हें प्रतिभाशाली व्यक्तियों की पहचान थी। महालनोबिस द्वारा आमंत्रित किये गये अर्थशास्त्रियों में वे लोग भी थे, जो द्वितीय पंचवर्षीय योजना के समाजवादी सिद्धांतों के कटु आलोचक थे। दूसरे शब्दों में, वह अपने आलोचकों को सुनने के भी इच्छुक थे। यह उनकी महान विद्वता का द्योतक है।

आज अनेक अर्थशास्त्री महालनोबिस के योजना संबंधी दृष्टिकोण को अस्वीकार करते हैं। परंतु भारत को आर्थिक प्रगति के पथ पर अग्रसर करने में उनकी महत्वपूर्ण भूमिका के लिये उन्हें सदैव स्मरण किया जायेगा। सांख्यिकीविद् सांख्यिकीय सिद्धांत में उनके योगदान से लाभ उठाते रहेंगे।

***स्रोत:** सुखमय चक्रवर्ती महालनोबिस, प्रशांतचन्द्र इन जोन ईटवैल इट.एल. दी न्यू पाल्ग्रेव डिक्शनरी, इकॉनामिक डेवलपमेंट, डब्ल्यू.डब्ल्यू, नार्टन न्यूयार्क एंड लंदन।*

बॉक्स 2.4 सेवा क्षेत्रक

देश के विकास के साथ-साथ इसमें एक संरचनात्मक परिवर्तन आता है। भारत में तो यह परिवर्तन बहुत विचित्र रहा है। सामान्यत: विकास के साथ-साथ सकल घरेलू उत्पाद में कृषि का अंश कम होता है और उद्योगों का अंश प्रधान होता है। विकास के उच्चतर स्तर पर पहुँच कर जी.डी.पी. में सेवाओं का अंशदान अन्य दोनों क्षेत्रकों से अधिक हो जाता है। भारत में, जैसा कि एक गरीब देश में अपेक्षा की जाती है, जी.डी.पी. में कृषि का अंश 50 प्रतिशत से अधिक था। किंतु, 1990 में सेवा क्षेत्रक का अंश बढ़कर 40.59 प्रतिशत हो गया- यह कृषि तथा उद्योग दोनों से ही अधिक था। ऐसी स्थिति तो प्राय: विकसित देशों में ही पायी जाती है। 1991 के बाद की अवधि में तो सेवा क्षेत्रक के अंश की संवृद्धि की यह प्रवृत्ति और बढ़ गई। इससे देश में वैश्वीकरण का प्रारंभ हुआ। इसकी चर्चा अगले अध्याय में विस्तार से की जायेगी।

दक्षता में वृद्धि से है। अर्थशास्त्र की भाषा में आर्थिक संवृद्धि का प्रामाणिक सूचक सकल घरेलू उत्पाद (जी.डी.पी.) में निरंतर वृद्धि है। जी.डी.पी. एक वर्ष की अवधि में देश में हुए सभी वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन का बाज़ार मूल्य होता है। यदि जी.डी.पी. को एक 'केक' मान लिया जाए तो संवृद्धि का अर्थ इसके आकार में वृद्धि होगा। यदि केक बड़ा होगा तो अधिक लोग उपभोग कर पाएँगे। यदि भारतीय जनता को अधिक समृद्ध और विविधतापूर्ण जीवन यापन करना है, (प्रथम पंचवर्षीय योजना के अनुसार), तो वस्तुओं और सेवाओं का अधिक उत्पादन करना आवश्यक है।

देश का सकल घरेलू उत्पाद देश की अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रकों से प्राप्त होता है। ये क्षेत्रक हैं- कृषि क्षेत्रक, औद्योगिक क्षेत्रक और सेवा क्षेत्रक। इन क्षेत्रकों के योगदान से ही अर्थव्यवस्था का ढाँचा तैयार होता है। कुछ देशों में सकल घरेलू उत्पाद की संवृद्धि में कृषि का योगदान अधिक होता हैं तो कुछ में सेवा क्षेत्रक की वृद्धि इसमें अधिक योगदान करती है (देखें बॉक्स 2.4)।

आधुनिकीकरण: वस्तुओं और सेवाओं का उत्पादन बढ़ाने के लिए उत्पादकों को नई प्रौद्योगिकी अपनानी पड़ती है। उदाहरण के लिए, किसान पुराने बीजों के स्थान पर नई किस्म के बीजों का प्रयोग कर खेतों की पैदावार बढ़ा सकता है। उसी प्रकार एक फैक्ट्री नई मशीनों का प्रयोग कर उत्पादन बढ़ा सकती है। नई प्रौद्योगिकी को अपनाना ही आधुनिकीकरण है।

आधुनिकीकरण केवल नवीन प्रौद्योगिकी के प्रयोग तक सीमित नहीं है, बल्कि इसका उद्देश्य सामाजिक दृष्टिकोण में परिवर्तन लाना भी है, जैसे यह स्वीकार करना कि महिलाओं का अधिकार भी पुरुषों के समान होना चाहिए। परंपरागत समाज में नारी का कार्यक्षेत्र घर की सीमाओं तक सीमित मान लिया जाता है। आधुनिक समाज में नारी की प्रतिभाओं का घर से बाहर- बैंकों, कारखानों, विद्यालयों आदि स्थानों पर प्रयोग किया जाता है और

इन्हें कीजिए

- निम्नलिखित के लिए प्रयुक्त प्रौद्योगिकी में आए परिवर्तनों पर अपनी कक्षा में चर्चा कीजिए।
  (क) खाद्यान्न उत्पादन
  (ख) उत्पादन की पैकेजिंग
  (ग) जन संचार
- उन वस्तुओं को ज्ञात कीजिए तथा उनकी सूची बनाइए, भारत जिनका 1950-51 तथा 1990-91 के दौरान आयात एवं निर्यात करता था।
  (क) अंतर बताइए।
  (ख) क्या आपको आत्मनिर्भरता का प्रभाव दिखाई देता है? चर्चा करें।
  उपर्युक्त विषयों में विस्तृत जानकारी के लिए आप नवीनतम 'आर्थिक सर्वेक्षण' को देख सकते हैं।

ऐसा करने वाला समाज ही अधिक सभ्य तथा समृद्ध होगा।

आत्मनिर्भरता: कोई राष्ट्र आधुनिकीकरण और आर्थिक संवृद्धि, अपने अथवा अन्य राष्ट्रों से आयातित संसाधनों के प्रयोग के द्वारा कर सकता है। हमारी प्रथम सात पंचवर्षीय योजनाओं में अत्मनिर्भरता को महत्त्व दिया गया, जिसका अर्थ है कि उन चीज़ों के आयात से बचा जाए, जिनका देश में ही उत्पादन संभव था। इस नीति को, विशेषकर खाद्यान्न के लिए अन्य देशों पर निर्भरता कम करने के लिए आवश्यक समझा गया। हाल ही में विदेशी शासन से मुक्त हुए देश के लोगों की आत्मनिर्भरता की नीति को महत्त्व देना समझ जा सकता है। इसके अतिरिक्त, यह आशंका भी थी कि आयातित खाद्यान्न, विदेशी प्रौद्योगिकी और पूँजी पर निर्भरता किसी न किसी रूप में हमारे देश की नीतियों में विदेशी हस्तक्षेप को बढ़ाकर हमारी संप्रभुता में बाधा डाल सकती थी।

समानता: केवल संवृद्धि, आधुनिकीकरण और आत्मनिर्भरता के द्वारा ही जनसामान्य के जीवन में सुधार नहीं आ सकता। किसी देश में उच्च संवृद्धि दर और विकसित अत्याधुनिक प्रौद्योगिकी का प्रयोग होने के बाद भी अधिकांश लोग गरीब हो सकते हैं। यह सुनिश्चित करना आवश्यक है कि आर्थिक समृद्धि के लाभ देश के निर्धन वर्ग को भी सुलभ हो, केवल धनी लोगों तक ही सीमित न रहे। अत: संवृद्धि, आधुनिकीकरण और आत्मनिर्भरता के साथ-साथ समानता भी महत्त्वपूर्ण है: प्रत्येक भारतीय को भोजन, अच्छा आवास, शिक्षा, स्वास्थ्य सेवाएँ जैसी मूलभूत आवश्यकताओं को पूरा कर पाने में समर्थ होना चाहिए और धन संपत्ति के वितरण की असमानताएँ भी कम होनी चाहिए।

आइए, अब यह जानने का प्रयास करें कि 1950 से 1990 तक की अवधि में लागू की गई प्रथम सात पंचवर्षीय योजनाओं ने किस प्रकार इन चार लक्ष्यों की प्राप्ति के प्रयास किए तथा कृषि, उद्योग और व्यापार के संदर्भ में ये प्रयास कहाँ तक सफल रहे। वर्ष 1991 के बाद

बॉक्स 2.5 स्वामित्व तथा प्रेरणाएँ

'किसान को भूमि' नीति इस विचारधारा पर आधारित है कि यदि किसानों को भूमि का स्वामी बना दिया जाए तो वे उत्पादन बढ़ाने में अधिक रुचि (उन्हें अधिक प्रेरणा मिलेगी) लेंगे। ऐसा इसलिए है क्योंकि भू-स्वामित्व से कृषक को अधिक उत्पादन का लाभ मिलता है। काश्तकारों को भूमि में सुधारों की कोई प्रेरणा नहीं होती, क्योंकि अधिक उत्पादन से जमींदार को ही लाभ मिलता है। प्रेरणा प्रदान करने में स्वामित्व के महत्त्व को बताने के लिये पूर्व सोवियत संघ के किसानों के द्वारा बिक्री हेतु फलों की पैकिंग करने में लापरवाही का उदाहरण दिया जाता है। वे सड़े-गले फलों और ताजे फलों को एक ही बॉक्स में पैक कर देते थे। आज प्रत्येक किसान यह जानता है कि सड़े-गले फल ताजे फलों को भी खराब कर देते हैं, यदि उन्हें एक साथ पैक किया जाये। इससे किसान को ही हानि होगी, क्योंकि फल बिक नहीं पायेंगे।

अत: प्रश्न उठता है कि सोवियत संघ के किसान ऐसा काम क्यों करते थे जो उनको साफ तौर पर हानि पहुँचाये? इसका अर्थ किसानों के सम्मुख प्रेरणाओं से है, क्योंकि पूर्व सोवियत संघ में किसान भूमि के स्वामी नहीं थे। अत: न उन्हें लाभ होता था और न हानि। स्वामित्व न होने के कारण, कृषकों को दक्ष होने की कोई प्रेरणा नहीं होती थी। इससे इस बात की भी जानकारी मिलती है कि अति उपजाऊ, विशाल कृषि क्षेत्र के उपलब्ध होने के बावजूद सोवियत संघ में कृषि क्षेत्रक का उत्पादन कम क्यों था?

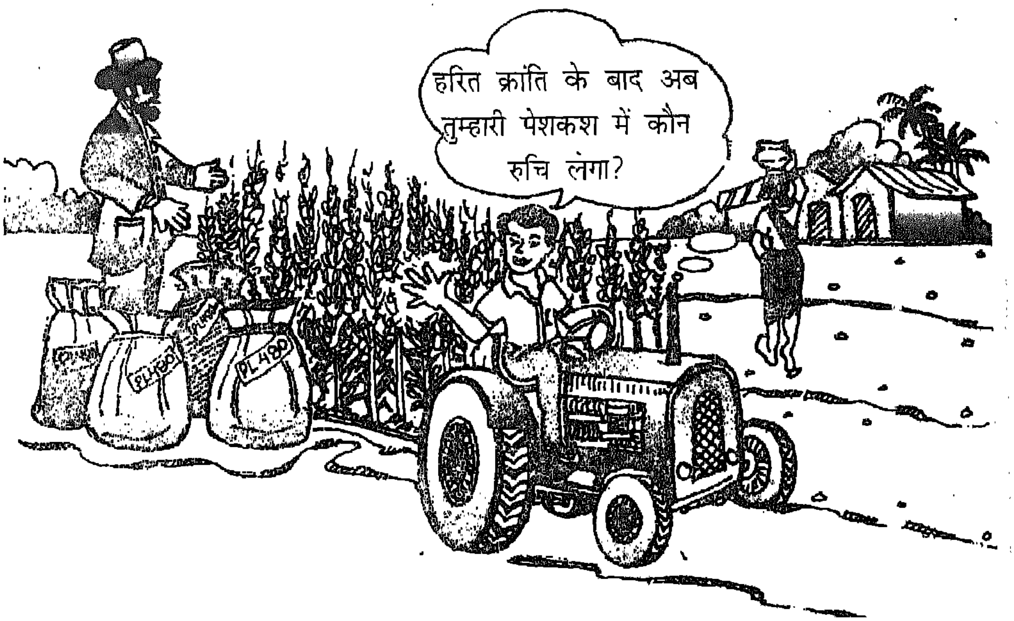
स्रोत: *थामस सोवेल, बेसिक इकॉनामिक्स: द सिटीजन्स गाइड टू दी इकॉनामी, न्यूयार्क: बेसिक बुक्स, 2004, दूसरा संस्करण।*

अपनाई गई नीतियों और विकासात्मक मुद्दों के बारे में आप अगले अध्याय में पढ़ेंगे।

2.3 कृषि

आपने पहले अध्याय में पढ़ा कि औपनिवेशिक शासन काल में कृषि क्षेत्रक में न तो संवृद्धि हुई और न ही समता रह पाई। स्वतंत्र भारत के नीति-निर्माताओं को इन मुद्दों पर विचार करना पड़ा तथा उन्होंने भू-सुधारों तथा चमत्कारी बीजों के प्रयोग द्वारा भारतीय कृषि में एक क्रांति का संचार किया।

भू-सुधार: स्वतंत्रता प्राप्ति के समय देश की भू-धारण पद्धति में जमींदार-जागीरदार आदि का वर्चस्व था। ये खेतों में कोई सुधार किये बिना मात्र लगान की वसूली किया करते थे। भारतीय कृषि क्षेत्रक की निम्न उत्पादकता के कारण भारत को संयुक्त राज्य अमेरिका (यू.एस.ए.) से अनाज का आयात करना पड़ा। कृषि में समानता लाने के लिय भू-सुधारों की आवश्यकता हुई, जिसका मुख्य ध्येय जोतों के स्वामित्व में परिवर्तन करना था। स्वतंत्रता के एक वर्ष बाद ही देश में बिचौलियों के उन्मूलन तथा वास्तविक कृषकों को ही भूमि का स्वामी बनाने जैसे कदम उठाये गये। इसका उद्देश्य यह था कि भूमि का स्वामित्व किसानों को निवेश करने की प्रेरणा देगा (बॉक्स 2.5), बशर्ते उन्हें पर्याप्त पूँजी उपलब्ध कराई जाए। दरअसल समानता को बढ़ाने के लिये भूमि की अधिकतम **सीमा निर्धारण** एक दसरी नीति थी। इसका अर्थ



है- किसी व्यक्ति की कृषि भूमि के स्वामित्व की अधिकतम सीमा का निर्धारण करना। इस नीति का उद्देश्य कुछ लोगों में भू-स्वामित्व के संकेंद्रण को कम करना था।

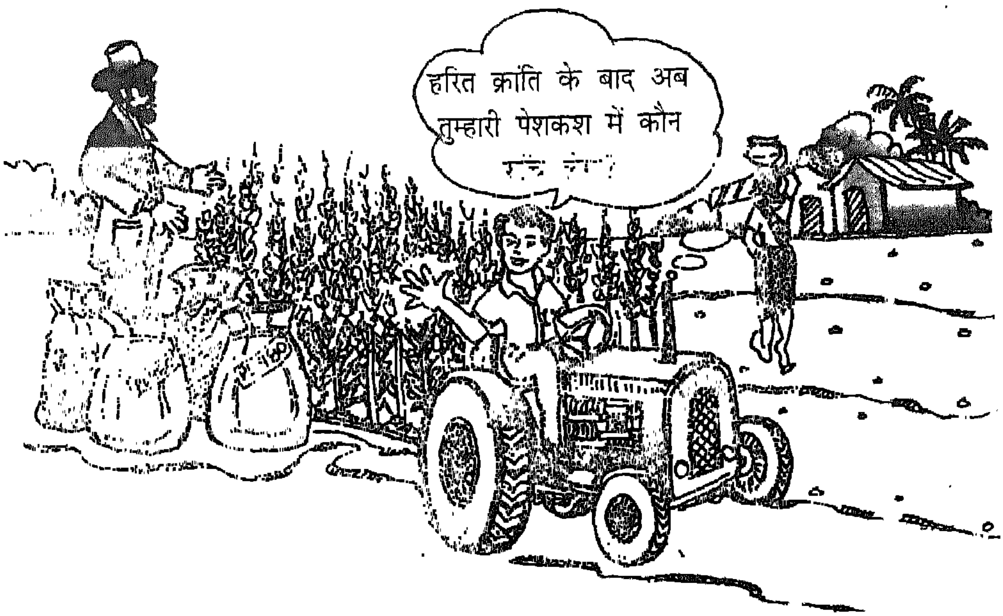
बिचौलियों के उन्मूलन का नतीजा यह था कि लगभग 200 लाख काश्तकारों का सरकार से सीधा संपर्क हो गया तथा वे जमींदारों के द्वारा किये जा रहे शोषण से मुक्त हो गए। भू-स्वामित्व से उन्हें उत्पादन में वृद्धि के लिए प्रोत्साहन मिला। इससे कृषि उत्पादन में वृद्धि हुई। किंतु बिचौलियों के उन्मूलन कर समानता के लक्ष्य की पूर्ण प्राप्ति नहीं हो पाई। कानून की कमियों का लाभ उठाकर कुछ भूतपूर्व जमींदारों ने कुछ क्षेत्रों में बहुत बड़े-बड़े भूखंडों पर अपना स्वामित्व बनाए रखा। कुछ मामलों में काश्तकारों को बेदखल कर दिया गया और भू-स्वामियों ने अपने किसान भू-स्वामी (वास्तविक कृषक) होने का दावा किया। कृषकों को भूमि का स्वामित्व मिलने के बाद भी निर्धनतम कृषि श्रमिकों (जैसे बटाईदार तथा भूमिहीन श्रमिक) को भूमि-सुधारों से कोई लाभ नहीं हुआ।

अधिकतम भूमि सीमा निर्धारण कानून में भी बाधाएँ आईं। बड़े जमीदारों ने इस कानून को न्यायालयों में चुनौती दी, जिसके कारण इसे लागू करने में देर हुई। इस अवधि में वे अपनी भूमि निकट संबंधियों आदि के नाम कराकर कानून से बच गये। कानून में भी अनेक कमियाँ थी, जिनके द्वारा बड़े जमीदारों ने भूमि पर अधिकार बनाए रखने के लिए लाभ उठाया। केरल और पश्चिम बंगाल की सरकारें वास्तविक किसान को भूमि देने की नीति के प्रति प्रतिबद्ध थीं, इसी कारण इन प्रांतों में भू-सुधार कार्यक्रमों को विशेष सफलता मिली। दुर्भाग्यवश, अन्य प्रांतों की सरकारों में इस स्तर की प्रतिबद्धता

नहीं थी, अतएव आज तक जोतों में भारी असमानता बनी हुई है।

हरित क्रांतिः स्वतंत्रता के समय देश की 75 प्रतिशत जनसंख्या कृषि पर आश्रित थी। इस क्षेत्रक में उत्पादकता बहुत ही कम थी, क्योंकि पुरानी प्रौद्योगिकी का प्रयोग किया जाता था और अधिसंख्य किसानों के पास आधारिक सरंचना का भी नितांत अभाव था। भारत की कृषि मानसून पर निर्भर है। यदि मानसून स्तर कम होता था तो किसानों को कठिनाई होती थी, क्योंकि उन्हें सिचाई सुविधाएँ उपलब्ध न थीं। यह सुविधा कुछ ही किसानों के पास थी। औपनिवेशिक काल का कृषि गतिरोध हरित क्रांति से स्थायी रूप से समाप्त हो गया। इसका तात्पर्य **उच्च पैदावार वाली किस्मों के बीजों (HYV)** के प्रयोग से है, विशेषकर गेहूँ तथा चावल उत्पादन में वृद्धि से। इन बीजों के प्रयोग के लिए पर्याप्त मात्रा में उर्वरकों, कीटनाशकों तथा निश्चित जल पूर्ति की भी आवश्यकता थी। इन आगतों का सही अनुपात में होना भी अति आवश्यक है। बीजों की अधिक पैदावार वाली किस्मों से लाभ उठाने वाले किसानों को सिंचाई की विश्वसनीय सुविधाओं और उर्वरकों तथा कीटनाशकों आदि की खरीदारी के लिए वित्तीय संसाधनों की आवश्यकता थी। अत: हरित क्रांति के पहले चरण में (लगभग 1960 के दशक के मध्य से 1970 के दशक के मध्य तक) HYV बीजों का प्रयोग पंजाब, आंध्रप्रदेश और तमिलनाडु जैसे अधिक समृद्ध राज्यों तक ही सीमित रहा। इसके अतिरिक्त, HYV बीजों का लाभ केवल गेहूँ पैदा करने वाले क्षेत्रों को ही मिल पाया। हरित क्रांति के द्वितीय चरण (1970 के दशक के मध्य से 1980 के दशक के मध्य तक) में HYV बीजों की प्रौद्योगिकी का विस्तार कई राज्यों तक पहुँचा और कई फसलों को लाभ हुआ। इस प्रकार, हरित क्रांति प्रौद्योगिकी के प्रसार से भारत को खाद्यान उत्पादन में आत्मनिर्भरता प्राप्त हुई। अब हम अपने राष्ट्र की खाद्य संबंधी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अमेरिका या किसी अन्य देश की कृपा पर निर्भर नहीं थे।

यदि किसान बाज़ार में बेचने की जगह इस उत्पादन का अधिकांश भाग स्वयं ही उपभोग करे, तो अधिक उत्पादन से अर्थव्यवस्था पर कुल मिलाकर कोई फर्क नहीं पड़ेगा। दूसरी ओर, यदि किसान पर्याप्त मात्रा में अपना उत्पादन बाज़ार में बेच सकें, तो अधिक उत्पादन का निश्चिय ही अर्थव्यवस्था पर प्रभाव पड़ सकता है। किसानों द्वारा उत्पादन का बाज़ार में बेचा गया अंश ही **'विपणित अधिशेष'** कहलाता है। प्रसिद्ध अर्थशास्त्री सी. एच. हनुमंथ राव का कहना है कि सौभाग्यवश हरित क्रांति काल में किसान अपने गेहूँ और चावल के अतिरिक्त उत्पादन का अच्छा खासा भाग बाज़ार में बेच रहे थे। इसके फलस्वरूप खाद्यानों की कीमतों में, उपभोग की अन्य वस्तुओं की अपेक्षा, कमी आई। अपनी कुल आय के बहुत बड़े प्रतिशत का भोजन पर खर्च करने वाले निम्न आय वर्गों को कीमतों में इस सापेक्ष कमी से बहुत लाभ हुआ। हरित क्रांति के कारण सरकार, पर्याप्त खाद्यान्न प्राप्त कर सुरक्षित स्टॉक बना सकी जिसे खाद्यान्नों की कमी के समय प्रयोग किया जा सकता था।



है- किसी व्यक्ति की कृषि भूमि के स्वामित्व की अधिकतम सीमा का निर्धारण करना। इस नीति का उद्देश्य कुछ लोगों में भू-स्वामित्व के संकेंद्रण को कम करना था।

बिचौलियों के उन्मूलन का नतीजा यह था कि लगभग 200 लाख काश्तकारों का सरकार से सीधा संपर्क हो गया तथा वे जमींदारों के द्वारा किये जा रहे शोषण से मुक्त हो गए। भू-स्वामित्व से उन्हें उत्पादन में वृद्धि के लिए प्रोत्साहन मिला। इससे कृषि उत्पादन में वृद्धि हुई। किंतु बिचौलियों के उन्मूलन कर समानता के लक्ष्य की पूर्ण प्राप्ति नहीं हो पाई। कानून की कमियों का लाभ उठाकर कुछ भूतपूर्व जमींदारों ने कुछ क्षेत्रों में बहुत बड़े-बड़े भूखंडों पर अपना स्वामित्व बनाए रखा। कुछ मामलों में काश्तकारों को बेदखल कर दिया गया और भू-स्वामियों ने अपने किसान भू-स्वामी (वास्तविक कृषक) होने का दावा किया। कृषकों को भूमि का स्वामित्व मिलने के बाद भी निर्धनतम कृषि श्रमिकों (जैसे बटाईदार तथा भूमिहीन श्रमिक) को भूमि-सुधारों से कोई लाभ नहीं हुआ।

अधिकतम भूमि सीमा निर्धारण कानून में भी बाधाएँ आई। बड़े जमीदारों ने इस कानून को न्यायालयों में चुनौती दी, जिसके कारण इसे लागू करने में देर हुई। इस अवधि में वे अपनी भूमि निकट संबंधियों आदि के नाम कराकर कानून से बच गये। कानून में भी अनेक कमियाँ थी, जिनके द्वारा बड़े जमीदारों ने भूमि पर अधिकार बनाए रखने के लिए लाभ उठाया। केरल और पश्चिम बंगाल की सरकारें वास्तविक किसान को भूमि देने की नीति के प्रति प्रतिबद्ध थीं, इसी कारण इन प्रांतों में भू-सुधार कार्यक्रमों को विशेष सफलता मिली। दुर्भाग्यवश, अन्य प्रांतों की सरकारों में इस स्तर की प्रतिबद्धता

नहीं थी, अतएव आज तक जोतों में भारी असमानता बनी हुई है।

हरित क्रांति: स्वतंत्रता के समय देश की 75 प्रतिशत जनसंख्या कृषि पर आश्रित थी। इस क्षेत्रक में उत्पादकता बहुत ही कम थी, क्योंकि पुरानी प्रौद्योगिकी का प्रयोग किया जाता था और अधिसंख्य किसानों के पास आधारिक सरंचना का भी नितांत अभाव था। भारत की कृषि मानसून पर निर्भर है। यदि मानसून स्तर कम होता था तो किसानों को कठिनाई होती थी, क्योंकि उन्हें सिचाई सुविधाएँ उपलब्ध न थीं। यह सुविधा कुछ ही किसानों के पास थी। औपनिवेशिक काल का कृषि गतिरोध हरित क्रांति से स्थायी रूप से समाप्त हो गया। इसका तात्पर्य **उच्च पैदावार वाली किस्मों के बीजों (HYV)** के प्रयोग से है, विशेषकर गेहूँ तथा चावल उत्पादन में वृद्धि से। इन बीजों के प्रयोग के लिए पर्याप्त मात्रा में उर्वरकों, कीटनाशकों तथा निश्चित जल पूर्ति की भी आवश्यकता थी। इन आगतों का सही अनुपात में होना भी अति आवश्यक है। बीजों की अधिक पैदावार वाली किस्मों से लाभ उठाने वाले किसानों को सिंचाई की विश्वसनीय सुविधाओं और उर्वरकों तथा कीटनाशकों आदि की खरीदारी के लिए वित्तीय संसाधनों की आवश्यकता थी। अत: हरित क्रांति के पहले चरण में (लगभग 1960 के दशक के मध्य से 1970 के दशक के मध्य तक) HYV बीजों का प्रयोग पंजाब, आंध्रप्रदेश और तमिलनाडु जैसे अधिक समृद्ध राज्यों तक ही सीमित रहा। इसके अतिरिक्त, HYV बीजों का लाभ केवल गेहूँ पैदा करने वाले क्षेत्रों को ही मिल पाया। हरित क्रांति के द्वितीय चरण (1970 के दशक के मध्य से 1980 के दशक के मध्य तक) में HYV बीजों की प्रौद्योगिकी का विस्तार कई राज्यों तक पहुँचा और कई फसलों को लाभ हुआ। इस प्रकार, हरित क्रांति प्रौद्योगिकी के प्रसार से भारत को खाद्यान उत्पादन में आत्मनिर्भरता प्राप्त हुई। अब हम अपने राष्ट्र की खाद्य संबंधी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अमेरिका या किसी अन्य देश की कृपा पर निर्भर नहीं थे।

यदि किसान बाज़ार में बेचने की जगह इस उत्पादन का अधिकांश भाग स्वयं ही उपभोग करे, तो अधिक उत्पादन से अर्थव्यवस्था पर कुल मिलाकर कोई फर्क नहीं पड़ेगा। दूसरी ओर, यदि किसान पर्याप्त मात्रा में अपना उत्पादन बाज़ार में बेच सकें, तो अधिक उत्पादन का निश्चिय ही अर्थव्यवस्था पर प्रभाव पड़ सकता है। किसानों द्वारा उत्पादन का बाज़ार में बेचा गया अंश ही **'विपणित अधिशेष'** कहलाता है। प्रसिद्ध अर्थशास्त्री सी. एच. हनुमंथ राव का कहना है कि सौभाग्यवश हरित क्रांति काल में किसान अपने गेहूँ और चावल के अतिरिक्त उत्पादन का अच्छा खासा भाग बाज़ार में बेच रहे थे। इसके फलस्वरूप खाद्यानों की कीमतों में, उपभोग की अन्य वस्तुओं की अपेक्षा, कमी आई। अपनी कुल आय के बहुत बड़े प्रतिशत का भोजन पर खर्च करने वाले निम्न आय वर्गों को कीमतों में इस सापेक्ष कमी से बहुत लाभ हुआ। हरित क्रांति के कारण सरकार, पर्याप्त खाद्यान्न प्राप्त कर सुरक्षित स्टॉक बना सकी जिसे खाद्यान्नों की कमी के समय प्रयोग किया जा सकता था।

यद्यपि हरित क्रांति से देश बहुत लाभांवित हुआ है पर यह प्रौद्योगिकी पूरी तरह निरापद नहीं है। एक जोखिम यह था कि इससे छोटे और बड़े किसानों के बीच असमानताएँ बढ़ने की संभावनाएँ थी, क्योंकि केवल बड़े किसान अपेक्षित आगतों को खरीदने में सक्षम थे, जिससे उन्हें हरित क्रांति का अधिकांश लाभ प्राप्त हो जाता था। इसके अतिरिक्त, इन फसलों में कीटनाशकों के आक्रमण की भी संभावनाएं अधिक होती हैं। ऐसी दशा में, इस प्रौद्योगिकी को अपनाने वाले छोटे किसानों की फसल का सब कुछ नष्ट हो जाता है। सौभाग्यवश, सरकार द्वारा किए गये कुछ उपायों के कारण ये आशंकाएँ सत्य साबित नहीं हुईं। सरकार ने निम्न ब्याज दर पर छोटे किसानों को ऋण दिये और उर्वरकों पर आर्थिक सहायता दी, ताकि छोटे किसानों को ये आवश्यक आगत उपलब्ध हो सकें। छोटे किसानों को, इन आगतों के प्राप्ति से छोटे खेतों की उपज और उत्पादकता भी समय के साथ बड़े खेतों की पैदावार के बराबर हो गई। इस प्रकार, हरित क्रांति से छोटे-बड़े सभी किसानों को लाभ मिला। सरकार द्वारा स्थापित अनुसंधान संस्थानों की सेवाओं के कारण, छोटे किसानों के जोखिम भी कम हो गए, जो कीटनाशकों के आक्रमण से उनकी फसलों की बर्बादी का कारण थे। यदि सरकार ने इस प्रौद्योगिकी का लाभ छोटे किसानों को उपलब्ध कराने के लिए व्यापक प्रयास नहीं किये होते, तो इस क्रांति का लाभ केवल धनी किसानों को ही मिलता।

सहायिकी पर बहस: आजकल कृषि क्षेत्रक को दी जा रही आर्थिक सहायिकी का आर्थिक औचित्य एक गरमा-गरम बहस का मुद्दा बन गया है। इस बात से तो सभी सहमत हैं कि किसानों द्वारा और सामान्यत: छोटे किसानों द्वारा विशेष रूप से नई HYV प्रौद्योगिकी को अपनाने के लिए प्रोत्साहन प्रदान करने हेतु सहायिकी दी जानी आवश्यक थी। किसान प्राय: किसी भी नई प्रौद्योगिकी को जोखिम पूर्ण समझते हैं। अत: किसानों द्वारा नई प्रौद्योगिकी की परख के लिये सहायिकी आवश्यक थी। कुछ अर्थशास्त्रियों का मत है कि एक बार प्रौद्योगिकी का लाभ मिल जाने तथा उसके व्यापक प्रचलन के बाद सहायिकी धीरे-धीरे समाप्त कर देनी चाहिए, क्योंकि उनका उद्देश्य पूरा हो गया है। यही नहीं, यद्यपि सहायिकी का ध्येय तो किसानों को लाभ पहुँचाना है, किंतु उर्वरक-सहायिकी का लाभ बड़ी मात्रा में प्राय: उर्वरक उद्योग तथा अधिक समृद्ध क्षेत्र के किसानों को ही पहुँचता है। अत: यह तर्क दिया जाता है कि उर्वरकों पर सहायिकी जारी रखने का कोई औचित्य नहीं है। इनसे लक्षित समूह को लाभ नहीं होता और सरकारी कोष पर अनावश्यक भारी बोझ पड़ता है (देखें बॉक्स 2.6)। दूसरी ओर कुछ विशेषज्ञों का मत है कि सरकार को कृषि-सहायिकी जारी रखनी चाहिए, क्योंकि भारत में कृषि एक बहुत ही जोखिम भरा व्यवसाय है। अधिकांश किसान बहुत गरीब हैं और सहायिकी को समाप्त करने से वे अपेक्षित आगतों का प्रयोग नहीं कर पाएँगे। सहायिकी समाप्त करने से गरीब और अमीर किसानों के बीच असमानता और बढ़ेगी तथा समता के लक्ष्य का उल्लंघन होगा। इन विशेषज्ञों का तर्क है कि यदि सहायिकी

बॉक्स 2.6 कीमतें-संकेतकों के रूप में

आपने पिछली कक्षा में पढ़ा होगा कि बाज़ार में कीमतों का निर्धारण किस प्रकार होता है? यह समझना आवश्यक है कि कीमतें वस्तुओं की उपलब्धता का संकेतक हैं। यदि कोई वस्तु दुर्लभ हो जाती है तो इसकी कीमत बढ़ जाती है और कीमतों के आधार पर, उसके प्रयोग के संबंध में सही निर्णय लेने की इसके उपभोक्तओं को प्रेरणा मिलती है। यदि निम्न पूर्ति के कारण पानी की कीमत बढ़ जाती है तो लोग इसका उपयोग सावधानीपूर्वक करेंगे; उदाहरण के लिए, पानी संरक्षण के लिए वे बगीचे में पानी देना बंद कर सकते हैं। जब भी पेट्रोल की कीमतें बढ़ती हैं तो हम शिकायत करते है और सरकार पर दोषारोपण करते हैं। परंतु, पेट्रोल की कीमत में वृद्धि इसकी अधिक कमी को दर्शाती है और कीमत वृद्धि इस बात का संकेतक है कि पेट्रोल कम मात्रा में उपलब्ध है- यह पेट्रोल का कम उपयोग करने और वैकल्पिक ईंधनों की तलाश की प्रेरणा देता है।

कुछ अर्थशास्त्रियों का कहना है कि सहायिकी, कीमतों को वस्तु की पूर्ति का संकेतक नहीं होने देती है। जब बिजली और पानी को सहायिकीयुक्त दरों पर या निःशुल्क प्रदान किया जाता है तो उनकी कमी का ध्यान रखे बिना, उनका फिजूल उपयोग किया जाएगा। यदि पानी निःशुल्क प्रदान किया जाएगा तो किसान पानी प्रधान फसलें उगाएँगे, भले ही उस क्षेत्र में जल संसाधनों की कमी हो और इन फसलों से दुर्लभ संसाधन भी कम हो जाएँगे। यदि पानी की कीमत दुर्लभता के अनुसार निर्धारित की जाए, तो किसान क्षेत्र के अनुकूल उपयुक्त फसलें उगाएँगे। उर्वरक कीटनाशकों पर सहायिकी संसाधनों का प्रयोग बढ़ाएगी, जो पर्यावरण के लिए हानिकारक हो सकता है। सहायिकी से फिजूल उपयोग को बढ़ावा मिलता है। प्रेरणा की दृष्टि से सहायिकी पर विचार करें और स्वयं से यह पूछें कि क्या किसानों को निःशुल्क बिजली प्रदान करना आर्थिक दृष्टि से उचित है?

से बड़े किसानों तथा उर्वरक उद्योग को अधिक लाभ हो रहा है, तो सही नीति सहायिकी समाप्त करना नहीं, बल्कि ऐसे कदम उठाना है जिनसे कि केवल निर्धन किसानों को ही इनका लाभ मिले।

1960 के दशक के अंत तक देश में कृषि उत्पादकता की वृद्धि से भारत खाद्यान्नों में आत्मनिर्भर हो गया। यह निश्चय ही गौरवपूर्ण उपलब्धि रही है। इसके बावजूद, नकारात्मक पहलू यह रहा है कि 1990 तक भी देश की 65 प्रतिशत जनसंख्या कृषि में लगी थी। अर्थशास्त्री इस निष्कर्ष पर पहुँचे है कि जैसे-जैसे देश संपन्न होता है, सकल घरेलू उत्पाद में, कृषि के योगदान में और उस पर निर्भर जनसंख्या में पर्याप्त कमी आती है। भारत में 1950–90 की अवधि में यद्यपि जी.डी.पी. में कृषि के अंशदान में तो भारी कमी आई है, पर कृषि पर निर्भर जनसंख्या के अनुपात में नहीं (जो 1950 में 67.50 प्रतिशत थी और 1990 तक घटकर 64.9 प्रतिशत ही हो पाई)। इस क्षेत्रक में इतनी उत्पादन वृद्धि तो न्यूनतम श्रम के प्रयोग द्वारा भी संभव थी, फिर इस क्षेत्रक में इतनी बड़ी संख्या में लोगों के लगे रहने की क्या आवश्यकता थी? इसका उत्तर यही है कि उद्योग क्षेत्रक

इन्हें कीजिए

- एक छात्र समूह को किसी कृषि फार्म पर ले जाएँ और प्रयुक्त कृषि विधियों का अध्ययन करें, अर्थात बीजों की किस्में, उर्वरक, मशीनें, सिंचाई के साधन, संबद्ध लागतें, विपणीय अधिशेष तथा अर्जित आय तैयार करें। यदि विधियों में परिवर्तन की जानकारी कृषक परिवार के किसी बुजुर्ग वृद्ध सदस्य से प्राप्त की जाएगी, तो अधिक अच्छा रहेगा। उसके बाद:-
  (क) निष्कर्षों पर अपनी कक्षा में चर्चा करें।
  (ख) विभिन्न उप-समूहों का एक चार्ट बनाएँ जिनमें उत्पादन लागत में परिवर्तन, उत्पादकता, बीजों के प्रयोग, उर्वरकों, सिचाई के साधनों, समय के प्रयोग, विपणीय अधिशेष और परिवार की आय में परिवर्तनों को दर्शाया गया हो।
- विश्व बैंक, अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष, विश्व व्यापार संगठन, (G-7, G-8 और G-10 देशों) की बैठकों के बारे में समाचार पत्रों की कतरनें एकत्र करें। कृषि सहायिकी पर विकसित और विकासशील देशों द्वारा व्यक्त विचारों पर चर्चा करें।
- इस तालिका में उपलब्ध जानकारी का प्रयोग कर भारत की अर्थव्यवस्था के व्यावसायिक ढाँचे का एक पाई-चार्ट बनाएँ।

क्षेत्रक	1950-51	1990-91
कृषि	70.1	66.8
उद्योग	10.7	12.7
सेवाएँ	17.2	20.5

- कृषि सहायिकी के पक्ष-विपक्ष में तर्कों का अध्ययन करें। आपका इस विषय में क्या मत है?
- कुछ अर्थशास्त्रियों का तर्क है कि अन्य देशों विशेषकर विकसित देशों के किसानों को अधिक सहायिकी देकर अपना उत्पादन अन्य देशों को निर्यात करने को प्रोत्साहित किया जाता है। क्या आप समझते हैं कि हमारे किसान उन देशों के किसानों से मुकाबला कर पाएँगे? चर्चा करें।

और सेवा क्षेत्रक, कृषि क्षेत्रक में काम करने वाले लोगों को नहीं खपा पाए। अनेक अर्थशास्त्री इसे 1950-90 के दौरान अपनाई गई नीतियों की विफलता मानते हैं।

2.4 उद्योग और व्यापार

अर्थशास्त्रियों ने ऐसा पाया है कि निर्धन राष्ट्र तभी प्रगति कर पाते हैं जब उनमें अच्छे औद्योगिक क्षेत्रक होते हैं। उद्योग रोजगार उपलब्ध कराते हैं और यह कृषि में रोजगार की अपेक्षा अधिक स्थाई होते हैं। इनसे आधुनिकीकरण और समग्र समृद्धि को बढ़ावा मिलता है। इन्हीं कारणों से हमारी पंचवर्षीय योजनाओं में औद्योगिक विकास पर अत्यधिक बल दिया गया है। आपने पिछले अध्याय में पढ़ा होगा कि स्वतंत्रता के समय भारत में बहुत कम उद्योग थे। अधिकांश उद्योग सूती वस्त्र, पटसन आदि तक ही सीमित थे। जमशेदपुर और कोलकाता में लोहा व इस्पात

की सुप्रबंधित फर्में थीं। यदि अर्थव्यवस्था का विकास करना था, तो हमें ऐसे औद्योगिक आधार का विस्तार करने की आवश्यकता थी जिसमें विविध प्रकार के उद्योग हों।

भारतीय औद्योगिक विकास में बाज़ार और राज्य: हमारे नीति-निर्माताओं के समक्ष एक बहुत बड़ा प्रश्न यह था कि औद्योगिक विकास में सरकार और निजी क्षेत्रक की क्या भूमिका होनी चाहिए? स्वतंत्रता प्राप्ति के समय भारत के उद्योगपतियों के पास हमारी अर्थव्यवस्था के विकास हेतु उद्योगों में निवेश करने के लिए अपेक्षित पूँजी नहीं थी। स्वतंत्रता प्राप्ति के समय इतना बड़ा बाज़ार भी नहीं था, जिसमें उद्योगपतियों को मुख्य परियोजनाएँ शुरू करने के लिए प्रोत्साहन मिलता। यद्यपि उनके पास ऐसा करने के लिए पूँजी भी थी। इन्हीं कारणों से राज्य को औद्योगिक क्षेत्र को प्रोत्साहन देने में व्यापक भूमिका निभानी पड़ी। इसके अतिरिक्त, भारतीय अर्थव्यवस्था को समाजवाद के पथ पर अग्रसर करने के लिए द्वितीय पंचवर्षीय योजना में यह निर्णय लिया गया कि सरकार अर्थव्यवस्था में बड़े तथा भारी उद्योगों का नियंत्रण करेगी। इसका अर्थ यह था कि राज्य उन उद्योगों पर पूरा नियंत्रण रखेगा, जो अर्थव्यवस्था के लिए महत्वपूर्ण थे। निजी क्षेत्रक की नीतियाँ सार्वजनिक क्षेत्रक की नीतियों की अनुपूरक होंगी और सार्वजनिक क्षेत्रक अग्रणी भूमिका निभायेगा।

औद्योगिक नीति प्रस्ताव, 1956: भारी उद्योगों पर नियंत्रण रखने के राज्य के लक्ष्य के अनुसार औद्योगिक नीति प्रस्ताव, 1956 को अंगीकार किया गया। इस प्रस्ताव को द्वितीय पंचवर्षीय योजना का आधार बनाया गया। द्वितीय योजना में ही समाज के समाजवादी स्वरूप का आधार तैयार करने का प्रयास किया गया। इस प्रस्ताव के अनुसार, उद्योगों को तीन वर्गों में वर्गीकृत किया गया। प्रथम वर्ग में वे उद्योग शामिल थे, जिन पर राज्य का अनन्य स्वामित्व था। दूसरे वर्ग में वे उद्योग शामिल थे, जिनके लिए निजी क्षेत्रक, सरकारी क्षेत्रक के साथ मिल कर प्रयास कर सकते थे, परंतु जिनमें नई इकाइयों को शुरू करने की एकमात्र जिम्मेदारी राज्य की होती। तीसरे वर्ग में वे उद्योग शामिल थे, जो निजी क्षेत्रक के अंतर्गत आते थे।

यद्यपि निजी क्षेत्रक में आने वाले उद्योगों का भी एक वर्ग था, लेकिन इस क्षेत्रक को लाइसेंस पद्धति के माध्यम से राज्य के नियंत्रण में रखा गया। नये उद्योगों को तब तक अनुमति नहीं दी जाती थी, जब तक सरकार से लाइसेंस नहीं प्राप्त कर लिया जाता था। इस नीति का प्रयोग पिछड़े क्षेत्रों में उद्योगों को प्रोत्साहित करने के लिए किया गया। यदि उद्योग आर्थिक रूप से पिछड़े क्षेत्रों में लगाए गए, तो लाइसेंस प्राप्त करना आसान था। इसके अतिरिक्त, उन इकाइयों को कुछ रियायतें जैसे, कर लाभ तथा कम प्रशुल्क पर बिजली दी गई। इस नीति का उद्देश्य क्षेत्रीय समानता को बढ़ावा देना था।

वर्तमान उद्योग को भी उत्पादन बढ़ाने या विविध प्रकार के उत्पादन (वस्तुओं की नई किस्मों का उत्पादन) करने के लिए लाइसेंस प्राप्त करना होता था। इसका अर्थ यह सुनिश्चित करना था कि उत्पादित वस्तुओं की मात्रा अर्थव्यवस्था द्वारा अपेक्षित मात्रा से अधिक न

हो। उत्पादन बढ़ाने का लाइसेंस केवल तभी दिया जाता था, जब सरकार इस बात से आश्वस्त होती थी कि अर्थव्यवस्था में बड़ी मात्रा में वस्तुओं की आवश्यकता है।

लघु उद्योग: 1955 में ग्राम तथा लघु उद्योग समिति, जिसे कर्वे समिति भी कहा जाता था, ने इस बात की संभावना पर विचार किया कि ग्राम विकास को प्रोत्साहित करने के लिए लघु उद्योगों का प्रयोग किया जाए। लघु उद्योग की परिभाषा किसी इकाई की परिसंपत्तियों के लिए दिये जाने वाले अधिकतम निवेश के संदर्भ में दी जाती है। समय के साथ-साथ निवेश की सीमा भी बदलती रही है। 1950 में लघु औद्योगिक इकाई उसे कहा जाता था, जो पाँच लाख रु का अधिकतम निवेश करती थीं। इस समय, एक करोड़ रु का अधिकतम निवेश किया जा सकता है।

ऐसा माना जाता था कि लघु उद्योग अधिक श्रम-प्रधान होते हैं, अर्थात् उनमें बड़े पैमाने के उद्योगों की अपेक्षा श्रम का प्रयोग अधिक किया जाता है। अत: वे अधिक रोजगारों का सृजन करते हैं। लेकिन, ये बड़ी औद्योगिक फर्मों के साथ प्रतिस्पर्धा नहीं कर सकते। यह स्पष्ट है कि लघु उद्योगों के विकास के लिए बड़ी फर्मो से उनकी रक्षा किये जाने की आवश्यकता है। इस उद्देश्य के लिए, अनेक उत्पादों को लघु उद्योग के लिए आरक्षित कर दिया गया। ऐसे आरक्षण की कसौटी यह थी कि ये इकाइयाँ उन वस्तुओं के विनिर्माण के योग्य हैं। उन्हें अन्य रियायतें भी दी गई थीं जैसे, कम उत्पाद शुल्क तथा कम ब्याज दरों पर बैंक-ऋण।

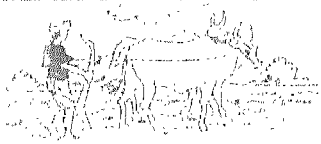
2.5 व्यापार नीति; आयात प्रतिस्थापन

हमारे द्वारा अपनाई गई औद्योगिक नीति **व्यापार नीति** से घनिष्ठ रूप से संबद्ध थी। प्रथम सात पंचवर्षीय योजनाओं में व्यापार की विशेषता **अंतर्मुखी** व्यापार नीति थी। तकनीकी रूप से इस नीति को **आयात-प्रतिस्थापन** कहा जाता है। इस नीति का उद्देश्य आयात के बदले घरेलू उत्पादन द्वारा पूर्ति करना है। उदाहरण के लिए, विदेश में निर्मित वाहनों का आयात करने के स्थान पर उन्हें भारत में ही निर्मित करने के लिए उद्योगों को प्रोत्साहित किया जाय। इस नीति के अनुसार, सरकार ने विदेशी प्रतिस्पर्धा से घरेलू उद्योगों की रक्षा की। आयात सरंक्षण के दो प्रकार थे: प्रशुल्क और कोटा। प्रशुल्क, आयातित वस्तुओं पर लगाया गया कर है। प्रशुल्क लगाने पर आयातित वस्तुएँ अधिक महँगी हो जाती हैं, जो वस्तुओं के प्रयोग को हतोत्साहित करती हैं। कोटे में वस्तुओं की मात्रा निर्दिष्ट की होती है, जिन्हें आयात किया जाता सकता है। प्रशुल्क और कोटे का प्रभाव यह होता है कि उनसे आयात प्रतिबंधित हो जाते हैं और उनसे विदेशी प्रतिस्पर्धा से देशी फर्मों की रक्षा होती है।

संरक्षण की नीति इस धारणा पर आधारित है कि विकासशील देशों के उद्योग अधिक विकसित देशों द्वारा उत्पादित वस्तुओं से प्रतिस्पर्धा करने की स्थिति में नहीं हैं। यह माना जाता है कि यदि घरेलू उद्योगों का संरक्षण किया जाता है, तो समय के साथ वे प्रतिस्पर्धा करना भी सीख लेंगे। हमारे योजनाकारों को भी यह आशंका थी

इन्हें कीजिए

➢ सकल घरेलू उत्पाद के लिए क्षेत्रकवार योगदान से संबंधित निम्नलिखित सारणी के लिए एक पाई चार्ट बनाइए और 1990–91 के दौरान विकास के प्रयासों को ध्यान में रखते हुए क्षेत्रकों के योगदान में हुए अंतर पर चर्चा कीजिए।

क्षेत्रक	*1950–51*	*1990–91*
कृषि 	59.0	34.9
उद्योग 	13.0	24.6
सेवाएँ 	28.0	40.5

➢ कक्षा के छात्रों को दो समूहों में विभाजित करते हुए सार्वजनिक क्षेत्रक के उपक्रमों की उपयोगिता के बारे में अपनी कक्षा में एक वाद-विवाद आयोजित कीजिए। एक समूह सार्वजनिक क्षेत्रकों के उपक्रमों के पक्ष में बोलेगा और दूसरा समूह इसके विपक्ष में बोलेगा (यथासंभव इसमें अधिक-से-अधिक छात्रों को शामिल कीजिए और उन्हें उदाहरण देने के लिए प्रोत्साहित कीजिए)।

कि यदि आयातों पर प्रतिबंध लगाया जाता है तो विलासिता की वस्तुओं के आयात पर विदेशी-मुद्रा खर्च होने की संभावना बढ़ जायेगी। 1980 के दशक के मध्य तक निर्यात-संवर्धन पर कोई गंभीर विचार नहीं किया गया था।

औद्योगिक विकास पर नीतियों का प्रभाव: प्रथम सात पंचवर्षीय योजनाओं के दौरान भारत के औद्योगिक क्षेत्रक की उपलब्धियाँ वस्तुत: उल्लेखनीय रही हैं। औद्योगिक क्षेत्रक द्वारा प्रदत्त जी.डी.पी. का अनुपात 1950–51 में 11.8 प्रतिशत से बढ़कर 1990–91 में 24.6 प्रतिशत हो गया। जी.डी.पी. से उद्योगों में हिस्सेदारी में बढ़ोतरी विकास का एक महत्वपूर्ण सूचक है। इस अवधि के दौरान औद्योगिक क्षेत्रक की 6 प्रतिशत वार्षिक संवृद्धि दर प्रशंसनीय है। भारतीय उद्योग सूती वस्त्र और पटसन तक ही सीमित नहीं थे। वस्तुत: औद्योगिक क्षेत्रक प्राय: सार्वजनिक क्षेत्रक के कारण विविधतापूर्ण बन गया था। लघु उद्योगों के संवर्धन से उन लोगों को अवसर प्राप्त हुए जिनके पास व्यवसाय में प्रवेश करने के

लिए बड़े फर्मों को प्रारंभ करने हेतु पूँजी नहीं थी। विदेशी प्रतिस्पर्धा के प्रति संरक्षण से उन इलेक्ट्रोनिकी व ऑटोमोबाइल क्षेत्रकों में देशी उद्योगों का विकास हुआ, जिनका विकास अन्यथा संभव नहीं था।

भारतीय अर्थव्यवस्था की संवृद्धि में सार्वजनिक क्षेत्रक द्वारा किए गए योगदान के बावजूद कुछ अर्थशास्त्रियों ने सावर्जनिक क्षेत्रक के अनेक उद्यमों के निष्पादन की कड़ी आलोचना की है। इस अध्याय के प्रारंभ में यह प्रस्तावित किया गया था कि शुरू में सार्वजनिक क्षेत्रक की आवश्यकता अधिक थी। अब यह व्यापक रूप से स्वीकार किया गया है कि सरकारी उद्यमों ने कुछ वस्तुओं एवं सेवाओं का उत्पादन (प्रायः उन पर एकाधिकार रखते हुए) जारी रखा, जिनकी कोई आवश्यकता नहीं थी। दूरसंचार सेवा का प्रावधान किया जाना दूसरा उदाहरण है। इस सेवा पर सरकार का एकाधिकार था। यद्यपि निजी क्षेत्रक की फर्मों ने भी बाद में उन्हें उपलब्ध कराया। 1990 के दशक के अंत तक भी प्रतिस्पर्धा न होने के कारण व्यक्ति को टेलीफोन कनेक्शन लेने में लंबे समय तक प्रतीक्षा करनी पड़ती थी। इसका दूसरा उदाहरण मॉडर्न ब्रेड की स्थापना है, जो ब्रेड विनिर्माण करने वाली एक फर्म है जैसे कि निजी क्षेत्रक ब्रेड का निर्माण ही नहीं कर सकता था। 2001 में यह फर्म निजी क्षेत्रक को बेच दी गई। मुख्य बात यह है कि इन दोनों के बीच कोई अंतर नहीं किया गया कि (क) केवल सार्वजनिक क्षेत्रक क्या कर सकता है और (ख) निजी क्षेत्रक भी क्या कर सकता है? उदाहरण के लिए, आज भी सार्वजनिक क्षेत्रक राष्ट्रीय सुरक्षा और निर्धन रोगियों के इलाज की सुविधा प्रदान कर सकता है। यद्यपि सार्वजनिक क्षेत्रक होटलों की भी व्यवस्था कर सकता है, तथापि सरकार होटलें चलाती हैं। इस आधार पर कुछ विद्वानों ने यह तर्क दिया है कि राज्य को उन क्षेत्रों से हट जाना चाहिए जिनमें निजी क्षेत्रक कार्य कर सकते हैं। सरकार ऐसी महत्त्वपूर्ण सेवाओं पर संसाधनों का संकेंद्रण कर सकती है, जिन्हें निजी क्षेत्रक उपलब्ध नहीं करा सकते।

अनेक सार्वजनिक क्षेत्रक की फर्मों ने भारी नुकसान उठाया था, लेकिन उन्होंने काम जारी रखा क्योंकि किसी सरकारी उपक्रम का बंद किया जाना अत्यंत कठिन और लगभग असंभव होता है। भले ही इसके कारण राष्ट्र के सीमित संसाधनों का निकास होता रहे। इसका अर्थ यह नहीं है कि निजी फर्मों को सदैव लाभ होता ही हो (वास्तव में कुछ सार्वजनिक क्षेत्रक की फर्में मूलतः निजी फर्में थी, जो हानि के कारण बंद होने को थी।) उसके बाद कामगारों की नौकरियों की संरक्षा के लिए उनका राष्ट्रीयकरण कर दिया गया। बहरहाल, नुकसान उठाने वाली निजी फर्में, अपने को बनाए रखने के लिए, संसाधनों का अपव्यय नहीं होने देंगी।

किसी उद्योग को शुरू करने के लिए आवश्यक लाइसेंस का कुछ औद्योगिक घरानों द्वारा दुरुपयोग किया गया। बड़े उद्योगपति नई फर्म शुरू करने के लिए नहीं, बल्कि नए प्रतिस्पर्धियों को रोकने के लिए लाइसेंस प्राप्त कर लेते थे। **परमिट लाइसेंस राज** के अत्यधिक नियमन के कारण कुछ फर्में कार्यकुशल नहीं

बन पाई। उद्योगपति अपने उत्पादन के विषय में विचार करने की अपेक्षा लाइसेंस प्राप्त करने की कोशिश में और संबंधित मंत्रालयों में लॉबी बनाने में समय व्यतीत करते थे।

विदेशी प्रतिस्पर्धा से संरक्षण की आलोचना भी इस आधार पर की जा रही है कि यह उस स्थिति के बाद भी जारी रहा, जब यह सिद्ध हो चुका था कि इससे लाभ के स्थान पर नुकसान अधिक होगा। आयातों पर प्रतिबंधों के कारण भारतीय उपभोक्ताओं को उन वस्तुओं को खरीदना पड़ता था, जिनका उत्पादन भारतीय उत्पादक करते थे। उत्पादक इस बात से अवगत थे कि उनके पास एक आबद्ध बाज़ार है, अत: उन्हें अपनी वस्तुओं की गुणवत्ता सुधारने हेतु कोई प्रेरणा नहीं थी। जब वे घटिया वस्तुओं को ऊँची कीमतों पर बेच सकते थे, तब वे उनकी गुणवत्ता में सुधार करने की क्यों सोचते! आयातों की प्रतिस्पर्धा ने हमारे उत्पादकों को और अधिक दक्ष बनने को बाध्य किया। लेकिन, कुछ विद्वानों का मत है कि सार्वजनिक क्षेत्रक का प्रयोजन लाभ कमाना नहीं है, बल्कि राष्ट्र के कल्याण को बढ़ावा देना है। इस दृष्टि से सार्वजनिक क्षेत्रक की फर्मों का मूल्यांकन जनता के कल्याण के आधार पर किया जाना चाहिए। उनका मूल्यांकन उनके द्वारा कमाये गये लाभों के आधार पर नहीं किया जाना चाहिए। संरक्षण के संबंध में कुछ अर्थशास्त्रियों का यह मत है कि हमें विदेशी प्रतिस्पर्धा से उत्पादनों का संरक्षण तब तक करना चाहिए, जब तक धनी राष्ट्र ऐसा करते रहें। इन सभी विरोधों के कारण अर्थशास्त्रियों ने हमारी नीति में परिवर्तन करने का आग्रह किया। अन्य समस्याओं सहित इस समस्या के कारण सरकार ने 1991 में नई आर्थिक नीति प्रारंभ की।

2.6 निष्कर्ष

प्रथम सात पंचवर्षीय योजनाओं के दौरान भारतीय अर्थव्यवस्था की प्रगति उल्लेखनीय रही। हमारे उद्योग स्वतंत्रता प्राप्ति के समय की स्थिति की तुलना में विविधतापूर्ण हो गये। हरित क्रांति के परिणामस्वरूप भारत खाद्य उत्पादन में आत्मनिर्भर बन गया। भूमि सुधारों का परिणाम यह हुआ कि घृणित जमींदारी प्रथा का उन्मूलन हो गया, लेकिन अनेक अर्थशास्त्री सार्वजनिक क्षेत्रक के उद्यमों के निष्पादन से असंतुष्ट थे। अतिशय सरकारी नियमन के कारण उद्यमवृत्ति अवरुद्ध हो गई। आत्मनिर्भरता के नाम पर हमारे उत्पादकों का संरक्षण विदेशी प्रतिस्पर्धा से किया गया और इससे उन्हें, उनके द्वारा उत्पादित वस्तुओं की गुणवत्ता में सुधार करने की प्रेरणा नहीं मिली। हमारी नीतियाँ अंतर्मुखी थीं, अत: हम एक सशक्त निर्यात क्षेत्रक विकसित करने में विफल रहे। बदलते हुए वैश्विक आर्थिक परिदृश्य के प्रसंग में यह सर्वत्र महसूस किया जा रहा था कि आर्थिक नीति में सुधार करने की आवश्यकता है। हमारी अर्थव्यवस्था को और अधिक सफल बनाने के लिए 1991 में एक नई आर्थिक नीति शुरू की गई। इस विषय पर अगले अध्याय में चर्चा की जायेगी।

पुनरावर्तन

- स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत ने एक आर्थिक पद्धति की कल्पना की, जिसमें समाजवाद और पूँजीवाद की विशेषताएँ सम्मिलित थीं। इसकी परिणति मिश्रित अर्थव्यवस्था मॉडल के रूप में हुई।
- सभी आर्थिक योजनाएँ पंचवर्षीय योजनाओं के माध्यम से ही निर्मित की गई हैं।
- पंचवर्षीय योजनाओं के लक्ष्य हैं-संवृद्धि, आधुनिकीकरण, आत्मनिर्भरता और समानता।
- कृषि क्षेत्रक में मुख्य नीतिगत पहल थे- भूमि सुधार तथा हरित क्रांति।
- इन पहलों से भारत को खाद्यान्नों के उत्पादन में आत्मनिर्भर बनने में सहायता मिली।
- कृषि पर निर्भर रहने वाले लोगों का अनुपात कम नहीं हुआ, जैसी कि आशा थी।
- औद्योगिक क्षेत्रों में नीतिगत पहलों ने सकल घरेलू उत्पाद के लिए इसके योगदान में वृद्धि की।
- औद्योगिक क्षेत्रक में एक बड़ी कमी यह थी की सार्वजनिक क्षेत्रक की कार्य पद्धति कुशल नहीं थी क्योंकि ये घाटे की ओर उन्मुख थीं, जिसके परिणामस्वरूप राष्ट्र के सीमित संसाधनों का बहिगर्मन और नुकसान हुआ।

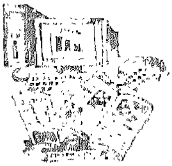


अभ्यास

1. योजना की परिभाषा दीजिए।
2. भारत ने योजना को क्यों चुना?
3. योजनाओं के लक्ष्य क्या होने चाहिए?
4. चमत्कारी बीज क्या होते हैं?
5. विक्रय अधिशेष क्या है?
6. कृषि क्षेत्रक में लागू किये गये भूमि सुधार की आवश्यकता और उनके प्रकारों की व्याख्या कीजिए।
7. हरित क्रांति क्या है? इसे क्यों लागू किया गया और इससे किसानों को कैसे लाभ पहुँचा? संक्षेप में व्याख्या कीजिए।
8. योजना उद्देश्य के रूप में 'समानता के साथ संवृद्धि' की व्याख्या कीजिए।

9. 'क्या रोजगार सृजन की दृष्टि से योजना उद्देश्य के रूप में आधुनिकीकरण विरोधाभास पैदा करता है?' व्याख्या कीजिए।
10. भारत जैसे विकासशील देश के रूप में आत्मनिर्भरता का पालन करना क्यों आवश्यक था?
11. किसी अर्थव्यवस्था का क्षेत्रक गठन क्या होता है? क्या यह आवश्यक है कि अर्थव्यवस्था के जी.डी.पी. में सेवा क्षेत्रक को सबसे अधिक योगदान करना चाहिए? टिप्पणी करें।
12. योजना अवधि के दौरान औद्योगिक विकास में सार्वजनिक क्षेत्रक को ही अग्रणी भूमिका क्यों सौंपी गई थी?
13. इस कथन की व्याख्या करें: 'हरित क्रांति ने सरकार को खाद्यान्नों के प्रापण द्वारा विशाल सुरक्षित भंडार बनाने के योग्य बनाया, ताकि वह कमी के समय उसका उपयोग कर सके'।
14. सहायिकी किसानों को नई प्रौद्योगिकी का प्रयोग करने को प्रोत्साहित तो करती है पर उसका सरकारी वित्त पर भारी बोझ पड़ता है। इस तथ्य को ध्यान में रखकर सहायिकी की उपयोगिता पर चर्चा करें।
15. हरित क्रांति के बाद भी 1990 तक हमारी 65 प्रतिशत जनसंख्या कृषि क्षेत्रक में ही क्यों लगी रही?
16. यद्यपि उद्योगों के लिए सार्वजनिक क्षेत्रक बहुत आवश्यक रहा है, पर सार्वजनिक क्षेत्र के अनेक उपक्रम ऐसे हैं जो भारी हानि उठा रहे हैं और इस क्षेत्रक के अर्थव्यवस्था के संसाधनों की बर्बादी के साधन बने हुए हैं। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए सार्वजनिक क्षेत्रक के उपक्रमों की उपयोगिता पर चर्चा करें।
17. आयात प्रतिस्थापन किस प्रकार घरेलू उद्योगों को संरक्षण प्रदान करता है?
18. औद्योगिक नीति प्रस्ताव, 1956 में निजी क्षेत्रक का नियमन क्यों और कैसे किया गया था?
19. निम्नलिखित युग्मों को सुमेलित कीजिए।

1. प्रधानमंत्री	(क) अधिक अनुपात में उत्पादन देने वाले बीज
2. सकल घरेलू उत्पाद	(ख) आयात की जा सकने वाली मात्रा
3. कोटा	(ग) योजना आयोग के अध्यक्ष
4. भूमि-सुधार	(घ) किसी अर्थव्यवस्था में एक वर्ष में उत्पादित की गई सभी अंतिम वस्तुओं और सेवाओं का मौद्रिक मूल्य।
5. उच्च उत्पादकता वाले बीज	(ङ.) कृषि क्षेत्र की उत्पादकता वृद्धि के लिए किए गए सुधार।
6. सहायिकी	(च) उत्पादक कार्यों के लिए सरकार द्वारा दी गई मौद्रिक सहायता।



संदर्भ

भगवती, जगदीश 1993. *इंडिया इन ट्रांजीशन: फ्रइंग द इकॉनोमी*, ऑक्सफोर्ड यूनीवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली।

डांडेकर वी.एम. 2004.: *फोर्टी ईयर्स आफटर इंडिपेंडेंस*, बिमल जालान (सं) इंडियन इकॉनोमी: *प्रोबलम्स एंड प्रोस्पेक्ट्स*, पेंगुइन, नई दिल्ली।

जोशी, विजय, एंड आई, एम.डी.टिप्ल 1996. *इंडियाज इकानॉमिक रिफोर्म्स, 1991–2001*. ए ऑक्सफोर्ड यूनीवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली।

मोहन, राकेश 2004. *इंडस्ट्रीयल पॉलिसी एंड कंट्रोल्स*, देखें बिमल जालान (सं) इंडियन इकॉनोमी: *प्रोबलम्स एंड प्रोस्पेक्ट्स*, पेंगुइन, नई दिल्ली।

राव, सी.एच.हनुमंथा 2004. एग्रीकल्चर: पॉलिसी एंड पर्फोमेंस, इन बिमल जालान (सं), द इंडियन इकोनॉमी: प्रोब्लम एंड प्रोस्पेक्ट. पेंगुइन, दिल्ली।

इकाई
दो

आर्थिक सुधार
1991 से

नियोजित विकास के चालीस वर्षों के बाद, भारत एक सशक्त औद्योगिक आधार तथा खाद्यन्नों के उत्पादन में स्व-निर्भरता प्राप्त करने में सक्षम रहा है। इसके बावजूद, जनसंख्या का एक बड़ा भाग अपनी आजीविका के लिए कृषि पर निर्भर है। 1991 में, भुगतान संकट के कारण भारत में आर्थिक सुधार का सूत्रपात हुआ। इस इकाई में सुधारों की प्रक्रिया तथा भारत के संदर्भ में उनके प्रयोग का मूल्यांकन किया गया है।

3

उदारीकरण, निजीकरण और वैश्वीकरण–एक समीक्षा

इस अध्याय को पढ़ने के बाद आप

- 1991 में भारत में आरंभ की गई सुधार नीतियों की पृष्ठभूमि से परिचित होंगे;
- सुधार नीतियों को आरंभ किये जाने की प्रक्रिया को समझेंगे;
- वैश्वीकरण की प्रक्रिया और भारत के लिए इसके निहितार्थ से परिचित होंगे;
- विभिन्न क्षेत्रकों पर सुधार प्रक्रिया के प्रभावों को जानेंगे।

आज के विश्व में आम सहमति है कि केवल आर्थिक विकास ही सब कुछ नहीं है तथा सकल घरेलू उत्पाद ही समाज की प्रगति का एकमात्र अनिवार्य सूचक नहीं है।

–के.आर. नारायणन

3.1 परिचय

आपने पिछले अध्याय में पढ़ा कि स्वतंत्रता के बाद भारत ने मिश्रित अर्थव्यवस्था के ढाँचे को अपनाया। इसमें बाज़ार अर्थव्यवस्था की विशेषताओं के साथ नियोजित अर्थव्यवस्था की विशेषताएँ एक साथ थीं। कुछ विद्वानों का तर्क है कि इन वर्षों में इस व्यवस्था के नियमन और नियंत्रण के लिए इतने अधिक नियम-कानून बनाए गए कि उनसे आर्थिक संवृद्धि और विकास की समूची प्रक्रिया ही अवरुद्ध हो गई। अन्य विद्वानों का मत है कि भारत जो अपनी विकास-यात्रा लगभग गतिहीनता के स्तर से वही आरंभ की थी, जो बचत में संवृद्धि और विविधतापूर्ण औद्योगिक आधार है, जो विभिन्न वस्तुओं का उत्पादन करता है। साथ ही, कृषि उत्पादन की निरंतर वृद्धि द्वारा खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित हो चुकी है।

वर्ष 1991 में भारत को विदेशी ऋणों के मामले में संकट का सामना करना पड़ा। सरकार अपने विदेशी ऋण के भुगतान करने की स्थिति में नहीं थी। पेट्रोल आदि आवश्यक वस्तुओं के आयात के लिए सामान्य रूप से रखा गया **विदेशी मुद्रा रिज़र्व** पंद्रह दिनों के लिए आवश्यक आयात का भुगतान करने योग्य भी नहीं बचा था। इस संकट को आवश्यक वस्तुओं की कीमतों में वृद्धि ने और भी गहन बना दिया था। इन सभी कारणों से सरकार ने कुछ नई नीतियों को अपनाया और इसने हमारी विकास रण-नीतियों की संपूर्ण दिशा को ही बदल दिया। इस अध्याय में हम उस आर्थिक संकट की पृष्ठभूमि, सरकार द्वारा अपनाई गई नीतियों तथा अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रकों पर उन नीतियों के प्रभावों पर विचार करेंगे।

3.2 पृष्ठभूमि

इस वित्तीय संकट का वास्तविक उद्‌गम स्रोत 1980 के दशक में अर्थव्यवस्था में अकुशल प्रबंधन था। सामान्य प्रशासन चलाने और अपनी विभिन्न नीतियों के क्रियान्वयन के लिए सरकार करों और सार्वजनिक उद्यम आदि के माध्यम से फंड जुटाती है। जब व्यय आय से अधिक हो तो सरकार बैंकों, जनसामान्य तथा **अंतर्राष्ट्रीय वित्तीय संस्थानों** से उधार लेने को बाध्य हो जाती है। इस प्रकार वह अपने घाटे का वित्तीय प्रबंध कर लेती है। कच्चे तेल आदि के आयात के लिए हमें डॉलरों में भुगतान करना होता है और ये डॉलर हम अपने उत्पादन के निर्यात द्वारा प्राप्त करते हैं।

इस अवधि में सरकार की विकास नीतियों की आवश्यकता रही क्योंकि राजस्व कम होने पर भी बेरोजगारी, गरीबी और जनसंख्या विस्फोट के कारण सरकार को अपने राजस्व से अधिक खर्च करना पड़ा। यही नहीं, सरकार द्वारा चलाए जा रहे कार्यक्रमों पर होने वाले व्यय के कारण अतिरिक्त राजस्व की प्राप्ति भी नहीं हुई। जब सरकार को प्रतिरक्षा और सामाजिक क्षेत्रों पर

अपने संसाधनों का एक बड़ा अंश खर्च करना पड़ रहा था और यह स्पष्ट था कि उन क्षेत्रों से किसी शीघ्र प्रतिफल की संभावना नहीं थी। इसकी आवश्यकता थी कि सरकार अपने बचे हुए राजस्व का बहुत ही सोच-विचार कर प्रयोग करती। बढ़ते हुए खर्चों की पूर्ति के लिये सार्वजनिक उद्यमों से भी अधिक आय अर्जित नहीं हो पा रही थी। कई बार तो अंतर्राष्ट्रीय संस्थानों तथा अन्य देशों से उधार ली गई **विदेशी मुद्रा** को उपभोग कार्यों पर ही खर्च कर दिया गया।

इस प्रकार के अनावश्यक खर्चों को नियंत्रित करने का न तो कोई प्रयास किया गया, न ही निरंतर बढ़ते आयात के लिए वित्त जुटाने की दृष्टि से निर्यात संवर्धन पर ही पर्याप्त ध्यान दिया गया।

1980 के दशक के अंत तक सरकार का व्यय उसके राजस्व से इतना अधिक हो गया कि उसे धारण क्षमता से अधिक माना जाने लगा। अनेक आवश्यक वस्तुओं की कीमतें तेजी से बढ़ने लगीं। आयात की वृद्धि इतनी तीव्र रही कि निर्यात की संवृद्धि से कोई तालमेल नहीं हो पा रहा था। जैसा कि हमने पहले भी कहा है, विदेशी मुद्रा के सुरक्षित भंडार इतने क्षीण हो गए थे कि देश की दो सप्ताह की आयात आवश्यकताओं को भी पूरा नहीं कर पाते थे। अंतर्राष्ट्रीय उधारदाताओं की ब्याज चुकाने के लिए भारत सरकार के पास पर्याप्त विदेशी मुद्रा नहीं बची थी।

उस स्थिति में भारत ने **अंतर्राष्ट्रीय पुनर्निमाण और विकास बैंक (आई.बी.आर.डी.)** जिसे सामान्यत: 'विश्व बैंक' के नाम से भी जाना जाता है और **अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष** का दरवाजा खटखटाया। उनसे देश को 7 बिलियन डॉलर का ऋण उस संकट का सामना करने के लिए मिला। किंतु, उस ऋण को पाने के लिए इन संस्थाओं ने भारत सरकार पर कुछ शर्तें लगाई; जैसे, सरकार उदारीकरण करेगी, निजी क्षेत्र पर लगे प्रतिबंधों को हटाएगी तथा अनेक क्षेत्रों में सरकारी हस्तक्षेप कम करेगी। साथ ही यह भी अपेक्षा की गई कि विदेशी व्यापार पर लगे प्रतिबंध भी हटाए जायेंगे।

भारत ने विश्व बैंक और अंतराष्ट्रीय मुद्रा कोष की ये शर्तें मान ली और **नई आर्थिक नीति** की घोषणा की। इस नई आर्थिक नीति में व्यापक आर्थिक सुधारों को सम्मिलित किया गया। इन समस्त नीतियों का उद्देश्य अर्थव्यवस्था में अधिक स्पर्धापूर्ण व्यावसायिक वातावरण की रचना करना तथा फर्मों के व्यापार में प्रवेश करने और उनकी संवृद्धि में आनेवाली बाधाओं को दूर करना था। इन नीतियों को दो उपसमूहों में विभाजित किया जा सकता है: स्थायित्वकारी उपाय तथा संरचनात्मक सुधार के उपाय। **स्थायित्वकारी उपाय** अल्पकालिक होते हैं, जिनका उद्देश्य **भुगतान संतुलन** में आ गई कुछ त्रुटियों को दूर करना और **मुद्रास्फीति** का नियंत्रण करना था। सरल शब्दों में, इसका अर्थ पर्याप्त विदेशी मुद्रा भंडार बनाए रखने और बढ़ती हुई कीमतों पर अंकुश रखने की आवश्यकता थी। दूसरी ओर, **संरचनात्मक सुधार** वे दीर्घकालिक उपाय हैं, जिनका उद्देश्य अर्थव्यवस्था की कुशलता को सुधारना तथा

अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रकों की अनम्यताओं को दूर कर भारत की अंतर्राष्ट्रीय स्पर्धा क्षमता को संवर्धित करना है। इस दृष्टि से सरकार ने अनेक नीतियाँ प्रारंभ कीं। इनके तीन उपवर्ग हैं: उदारीकरण, निजीकरण और वैश्वीकरण। वस्तुत: पहली दो नीतिगत रणनीतियाँ हैं। अंतिम नीति को इन दो रणनीतियों का परिणाम कहा जा सकता है।

3.3 उदारीकरण

हमने प्रारंभ में चर्चा की है कि आर्थिक गतिविधियों के नियमन के लिए बनाए गए नियम-कानून ही संवृद्धि और विकास के मार्ग की सबसे बड़ी बाधा बन गए। उदारीकरण इन्हीं प्रतिबंधों को दूर कर अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों को 'मुक्त' करने की नीति थी। वैसे तो औद्योगिक लाइसेंस प्रणाली, **आयात-निर्यात नीति**, तकनीकी उन्नयन, राजकोषीय और विदेशी निवेश नीतियों में उदारीकरण 1980 के दशक में भी आरंभ किए गए थे। किंतु, 1991 में आरंभ की गई सुधारवादी नीतियाँ कहीं अधिक व्यापक थीं। आइए, हम कुछ महत्वपूर्ण क्षेत्रों में किए गए सुधारों की समीक्षा करें। ये क्षेत्र हैं-औद्योगिक क्षेत्रक, वित्तीय क्षेत्रक, कर-सुधार, **विदेशी विनिमय बाज़ार**, व्यापार तथा निवेश क्षेत्रक, जिनपर 1991 में तथा 1991 के बाद से विशेष ध्यान दिया गया।

औद्योगिक क्षेत्रक का विनियमीकरण : भारत में नियमन प्रणालियों को अनेक प्रकार से लागू किया गया था **(क)** सबसे पहले औद्योगिक लाइसेंस की व्यवस्था थी, जिसमें उद्यमी को एक फर्म स्थापित करने, बंद करने या उत्पादन की मात्रा का निर्धारण करने के लिए किसी न किसी सरकारी अधिकारी की अनुमति प्राप्त करनी होती थी; **(ख)** अनेक उद्योगों में तो निजी उद्यमियों का प्रवेश ही निषिद्ध था; **(ग)** कुछ वस्तुओं का उत्पादन केवल लघु उद्योग ही कर सकते थे और सभी निजी उद्यमियों को कुछ औद्योगिक उत्पादों की कीमतों के निर्धारण तथा वितरण के बारे में भी अनेक नियंत्रणों का पालन करना पड़ता था।

1991 के बाद से आरंभ हुई सुधार नीतियों ने इनमें से अनेक प्रतिबंधों को समाप्त कर दिया। एल्कोहल, सिगरेट, जोखिम भरे रसायनों, औद्योगिक विस्फोटकों, इलेक्ट्रोनिकी, विमानन तथा औषधि-भेषज; इन छ: उत्पाद श्रेणियों को छोड़ अन्य सभी उद्योगों के लिए लाइसेंसिंग व्यवस्था को समाप्त कर दिया गया। अब सार्वजनिक क्षेत्रक के लिए सुरक्षित उद्योगों में भी केवल प्रतिरक्षा उपकरण, परमाणु ऊर्जा उत्पादन और रेल परिवहन ही बचे हैं। लघु उद्योगों द्वारा उत्पादित अनेक वस्तुएँ भी अब **अनारक्षित** श्रेणी में आ गई हैं। अनेक उद्योगों में अब बाज़ार को कीमतों के निर्धारण की अनुमति मिल गई है।

वित्तीय क्षेत्रक सुधार : वित्त के क्षेत्रक में व्यावसायिक और निवेश बैंक, **स्टॉक एक्सचेंज** तथा विदेशी मुद्रा बाज़ार जैसी वित्तीय संस्थाएँ सम्मिलित हैं। भारत में वित्तीय क्षेत्रक का नियंत्रण रिजर्व बैंक का दायित्व है। भारतीय रिजर्व बैंक के विभिन्न नियम और कसौटियों के माध्यम से ही बैंकों तथा अन्य वित्तीय संस्थानों के कार्यों

का नियमन होता है। रिजर्व बैंक ही तय करता है कि कोई बैंक अपने पास कितनी मुद्रा जमा रख सकता है। यही ब्याज की दरों को नियत करता है। विभिन्न क्षेत्रकों को उधार देने की प्रकृति इत्यादि को भी यही तय करता है। वित्तीय क्षेत्रक सुधार नीतियों का एक प्रमुख उद्देश्य यह भी है कि रिजर्व बैंक को इस क्षेत्रक के नियंत्रक की भूमिका से हटाकर उसे इस क्षेत्रक के एक सहायक की भूमिका तक सीमित कर दिया गया है। इसका अर्थ है कि वित्तीय क्षेत्रक रिजर्व बैंक से सलाह किए बिना ही कई मामलों में अपने निर्णय लेने में स्वतंत्र हो जाएगा।

सुधार नीतियों ने ही वित्तीय क्षेत्रक में भारतीय और विदेशी निजी. बैंकों को भी पदार्पण करने का अवसर दिया। बैंकों की पूँजी में विदेशी भागीदारी की सीमा 50 प्रतिशत कर दी गई। कुछ निश्चित शर्तों को पूरा करनेवाले बैंक अब रिज़र्व बैंक की अनुमति के बिना ही नई शाखाएँ खोल सकते हैं तथा पुरानी शाखाओं के जाल को अधिक युक्तिसंगत बना सकते हैं। यद्यपि बैंकों को अब देश-विदेश से और अधिक संसाधन जुटाने की भी अनुमति है- पर खाता धारकों और देश के हितों की रक्षा के उद्देश्य से कुछ नियंत्रक शक्ति अभी भी रिजर्व बैंक के पास ही हैं। **विदेशी निवेश संस्थाओं**(एफ.आई.आई) तथा व्यापारी बैंक, म्युचुअल फंड और पेंशन कोष आदि को भी अब भारतीय वित्तीय बाज़ारों में निवेश की अनुमति मिल गई है।

कर व्यवस्था में सुधार : इन सुधारों का संबंध सरकार की कराधान और सार्वजनिक व्यय नीतियों से है, जिन्हें सामूहिक रूप से **राजकोषीय नीतियाँ** भी कहा जाता है। करों के दो प्रकार होते हैं: प्रत्यक्ष कर और अप्रत्यक्ष कर। **प्रत्यक्ष कर** व्यक्तियों की आय और व्यावसायिक उद्यमों के लाभ पर लगाए जाते हैं। 1991 के बाद से व्यक्तिगत आय पर लगाए गए करों की दरों में निरंतर कमी की गई है। इसके पीछे मुख्य धारणा यह थी कि उच्च कर दरों के कारण ही कर-वंचन होता है। अब यह व्यापक रूप से स्वीकार किया जाता है कि करों की दरें अधिक ऊँची नहीं हों, तो बचतों को बढ़ावा मिलता है और लोग स्वेच्छा से अपनी आय का विवरण दे देते हैं। **निगम कर** की दर, जो पहले बहुत अधिक थी, धीरे-धीरे कम कर दी गई है। **अप्रत्यक्ष करों** में भी सुधार के प्रयास किए जा रहे हैं जैसे, वस्तुओं और सेवाओं पर लगाये गये कर-ताकि सभी वस्तुओं एवं सेवाओं के लिए एक साझे राष्ट्रीय स्तर के बाज़ार की रचना की जा सके। इस क्षेत्र में सुधारों का एक और घटक सरलीकरण भी है। करदाताओं के द्वारा नियम पालन को प्रोत्साहित करने के लिए अनेक प्रक्रियाओं को सरल बनाया गया है। साथ ही, कर की दरों में भी पर्याप्त रूप से कमी की गई है

विदेशी विनिमय सुधार: विदेशी क्षेत्रक में पहला सुधार विदेशी विनिमय बाज़ार में किया गया था। 1991 में भुगतान संतुलन की समस्या के तत्कालिक निदान के लिए अन्य देशों की मुद्रा की तुलना में रुपये का **अवमूल्यन** किया गया। इससे देश में विदेशी मुद्रा के आगमन में वृद्धि हुई। इसके अंतर्गत विदेशी विनिमय बाज़ार

में रुपये के मूल्य के निर्धारण को भी सरकारी नियंत्रण से मुक्त कराने की पहल की गई। अब तो प्रायः बाज़ार ही विदेशी मुद्रा की माँग और पूर्ति के आधार पर विनिमय दरों को निर्धारित कर रहा है।

व्यापार और निवेश नीति सुधार: अर्थव्यवस्था में औद्योगिक उत्पादों और विदेशी निवेश तथा प्रौद्योगिकी की अंतर्राष्ट्रीय प्रतिस्पर्धा की क्षमता को प्रोत्साहित करने के लिए व्यापार और निवेश व्यवस्थाओं का उदारीकरण प्रारंभ किया गया। इस कार्यक्रम का एक उद्देश्य स्थानीय उद्योगों की कार्यकुशलता को सुधारना और उन्हें आधुनिक प्रौद्योगिकी को अपनाने के लिए प्रोत्साहित करना भी था।

भारत आंतरिक उद्योगों के संरक्षण के लिए **आयात के परिमाण को सीमित** रखने की नीतियाँ अपना रहा था। इसके लिए आयात पर कड़े नियंत्रणों और उच्च **प्रशुल्कों** का प्रयोग होता था। ये नीतियाँ कुशलता और स्पर्धा क्षमता को कम करती थीं, जिससे देश में

इन्हें कीजिए

- राष्ट्रीयकृत बैंक, निजी बैंक, निजी विदेशी बैंक, विदेशी निवेश संस्थान और म्युचुअल फंड का एक-एक उदाहरण दें।
- अपने अभिभावकों के साथ पास के किसी बैंक में जाएँ। देखें और पता करें कि वे किन कार्यों को करते हैं। अपने सहपाठियों से इस विषय में चर्चा करें और इनका एक चार्ट तैयार करें।
- इन्हें प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष करों की श्रेणियों में विभाजित करें : विक्रय कर, सीमा शुल्क, संपत्ति कर, उत्तराधिकार कर, वर्धित मूल्य कर, आयकर।
- अपने अभिभावकों से ज्ञात करें कि क्या वे कर चुकाते हैं? यदि हाँ, तो वे ऐसा क्यों और कैसे करते हैं?
- क्या आप जानते हैं कि काफी समय तक दुनिया के सभी देश, विदेशी भुगतानों के लिए सोने और चाँदी के भंडार जमा रखते थे? ज्ञात करें कि आज हम अपने विदेशी विनिमय रिज़र्व को किस रूप में रखते हैं? आर्थिक सर्वेक्षण, समाचार पत्रों, पत्रिकाओं के माध्यम से यह भी जानने का प्रयास करें कि आज हमारे विदेशी विनिमय रिज़र्व कितने हैं? निम्न देशों की मुद्राओं के नाम तथा रुपयों में उनकी विनिमय दरों की जानकारी भी प्राप्त करें।

देश	मुद्रा	भारतीय रुपयों में विदेशी मुद्रा की एक इकाई का मूल्य
संयुक्त राज्य अमेरिका		
इंग्लैंड		
जापान		
चीन		
कोरिया		
सिंगापुर		
जर्मनी		

विनिर्माण उद्योगों की संवृद्धि दर कम हुई। व्यापार नीतियों के सुधारों के लक्ष्य थे : (क) आयात और निर्यात पर परिमाणात्मक प्रतिबंधों की समाप्ति, (ख) प्रशुल्क दरों में कटौती और (ग) आयातों के लिए लाइसेंस प्रक्रिया की समाप्ति। हानिकारक और पर्यावरण संवेदी उद्योगों के उत्पादों को छोड़, अन्य सभी वस्तुओं पर से **आयात लाइसेंस** व्यवस्था समाप्त कर दी गई। अप्रैल, 2001 से कृषि पदार्थों और औद्योगिक उपभोक्ता पदार्थों के आयात भी मात्रात्मक प्रतिबंधों से मुक्त कर दिए गए। भारतीय वस्तुओं का अंतर्राष्ट्रीय बाज़ारों में स्पर्धा शक्ति बढ़ाने के लिए उन्हें **निर्यात शुल्क** से मुक्त कर दिया गया है।

बॉक्स 3.1 'नवरत्न' और सार्वजनिक उद्यम नीतियाँ

आपने बचपन में सम्राट विक्रमादित्य के राज-दरबार के नवरत्नों के विषय में पढ़ा होगा जो कला, साहित्य और विद्वता के क्षेत्रों के *गणमान्य विशिष्ट्जन थे। 1996 में*, नवउदारवादी वातावरण में सार्वजनिक उपक्रमों की कुशलता बढ़ाने, उनके प्रबंधन में व्यावसायीकरण लाने और उनकी स्पर्धा क्षमता में प्रभावी सुधार लाने के लिए सरकार ने नौ सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों का चयन कर उन्हें 'नवरत्न' घोषित कर दिया। उन्हें कंपनी के कुशलतापूर्वक संचालन और लाभ में वृद्धि करने के लिए प्रबंधन और संचालन कार्यों में अधिक स्वायत्तता दी गई थी। लाभ कमा रहे अन्य 97 उपक्रमों को भी अधिक परिचालन, वित्तीय और प्रबंधकीय स्वायत्तता प्रदान कर उन्हें 'लघुरत्न' का नाम दिया गया।

'नवरत्न' कंपनियों के पहले वर्ग में ये कंपनियां रखी गई: इंडियन ऑयल कॉरपोरेशन लिमिटेड (IOCL), भारत पेट्रोलियम कॉरपोरेशन लिमिटेड (BPCL), हिन्दुस्तान पेट्रोलियम कॉरपोरेशन लिमिटेड (HPCL), ऑयल एंड नेचुरल गैस लिमिटेड (ONGC), स्टील ऑथोरिटी ऑफ इंडिया लिमिटेड (SAIL), इंडियन पेट्रोकेमिकल्स कॉरपोरेशन लिमिटेड (IPCL), भारत हेवी इलेक्ट्रिकल्स लिमिटेड (BHEL), नेशनल थर्मल पावर कॉरपोरेशन लिमिटेड (NTPC) तथा विदेश संचार निगम लिमिटेड (BSNL)। बाद में सार्वजनिक क्षेत्र के दो उपक्रमों - गैस ऑथोरिटी ऑफ इंडिया लिमिटेड (GAIL)और महानगर टेलिफोन निगम लिमिटेड (MTNL) को भी यही दर्जा दिया गया।

लाभ अर्जित कर रहे अधिकांश सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों की स्थापना पहली बार 1950 और 1960 के दशकों में उस समय की गई, जब सभी सार्वजनिक नीतियाँ आत्मनिर्भरता के विचार से प्रेरित थीं। उनकी स्थापना का ध्येय आधारभूत सुविधाओं का विस्तार और प्रत्यक्ष रोजगार का सृजन करना था, ताकि जनसामान्य तक उनका उच्च गुणवत्ता युक्त उत्पादन नाममात्र लागत पर पहुँचाया जा सके। इस प्रकार, इन कंपनियों को सभी पणधारियों के प्रति उत्तरदायी बनाया गया था।

'नवरत्न' नाम के अलंकरण के बाद से इन कंपनियों के निष्पादन में निश्चय ही सुधार आया है। विद्वानों का कहना है कि नवरत्नों के प्रसार को बढ़ावा देकर इन्हें विश्व-स्तरीय निकाय बनाने में सहायता देने के स्थान पर सरकार ने विनिवेश द्वारा आंशिक रूप से इनका निजीकरण कर दिया है। अभी कुछ समय पहले सरकार ने नवरत्नों को सार्वजनिक स्वामित्व में ही रखने का निर्णय किया है और उन्हें वित्तीय बाज़ार से स्वयं संसाधन जुटाने और विश्व बाज़ारों में अपना विस्तार करने के योग्य बनाया है।

इन्हें कीजिए

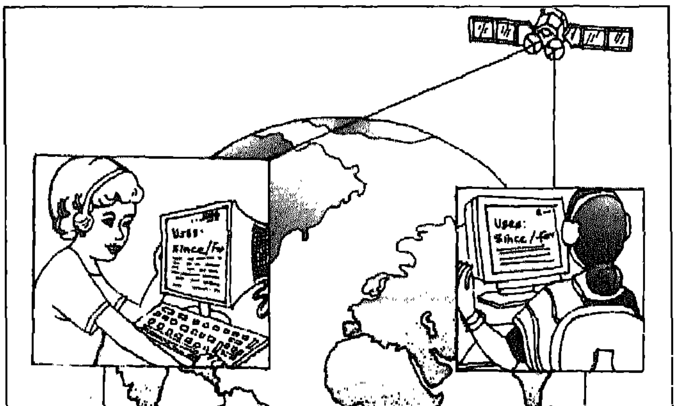
- कुछ विद्वान विनिवेश को सार्वजनिक उद्यमों की कुशलता बढ़ाने के लिए निजीकरण की विश्वव्यापी लहर का नाम दे रहे हैं, तो कुछ का विचार यह है कि ये तो सार्वजनिक संपत्ति के निहित स्वार्थों को बिक्री मात्र हैं। आपका क्या विचार है?
- समाचार पत्रों से नवरत्नों से संबंधित ऐसी 10–15 कतरने एकत्र करें जिन्हें आप महत्वपूर्ण मानते हैं तथा एक पोस्टर बनायें। इन सार्वजनिक उपक्रमों के विज्ञापन और शब्द चिह्न (Logos) एकत्र करें। उन्हें अपनी कक्षा के सूचना-पट पर लगाकर उनके विषय में चर्चा करें।
- क्या आपके विचार से कि केवल घाटे मे चल रहे सरकारी उपक्रम का निजीकरण होना चाहिए? क्यों?
- 'सार्वजनिक क्षेत्र की कंपनियों के घाटे की भरपाई सरकारी बजट से होनी चाहिए।' क्या आप इस कथन से सहमत हैं? चर्चा करें।

3.4 निजीकरण

इसका तात्पर्य है, किसी सार्वजनिक उपक्रम के स्वामित्व या प्रबंधन का सरकार द्वारा त्याग। सरकारी कंपनियों को निजी क्षेत्रक की कंपनियों में दो प्रकार से परिवर्तित किया जा सकता है: (क) सरकार का सार्वजनिक कंपनी के स्वामित्व और प्रबंधन से बाहर होना तथा (ख) सार्वजनिक क्षेत्रक की कपंनियों को सीधे बेच दिया जाना।

किसी सार्वजनिक क्षेत्रक के उद्यमों द्वारा जनसामान्य को इक्विटी की बिक्री के माध्यम से निजीकरण को **विनिवेश** कहा जाता है। सरकार के अनुसार, इस प्रकार की बिक्री का मुख्य ध्येय वित्तीय अनुशासन बढ़ाना और आधुनिकीकरण में सहायता देना था। यह भी अपेक्षा की गई थी कि निजी पूँजी और प्रबंधन क्षमताओं का उपयोग इन सार्वजनिक उद्यमों के निष्पादन को सुधारने में प्रभावोत्पादक सिद्ध होंगे। सरकार को यह भी आशा थी कि निजीकरण से प्रत्यक्ष विदेशी निवेश के अंतर्वाह को भी बढ़ावा मिलेगा।

सरकार ने सार्वजनिक उपक्रमों को प्रबंधकीय निर्णयों में स्वायत्तता प्रदान कर उनकी कार्यकुशलता को सुधारने का प्रयास किया है। उदाहरण के लिए, कुछ सार्वजनिक उपक्रमों को 'नवरत्न' और 'लघुरत्न' का विशेष दर्जा दिया गया है (देखें बॉक्स 3.1)।



चित्र 3.1 *बाह्य प्रापण : बड़े शहरों में रोजगार का एक नया अवसर*

बॉक्स 3.2 विश्वस्तरीय पद-छाप

वैश्वीकरण के कारण अब अनेक भारतीय कंपनियां भी विदेशों में अपने पैर फैलाने लगी हैं। टाटा टी ने वर्ष 2001 में इंग्लैंड की टेटली को खरीद कर विश्वभर को चकित कर दिया था। 'टी बैग' का प्रारंभ करने वाली टेटली को टाटा ने 1870 करोड़ रुपये की लागत पर खरीदा था। वर्ष 2004 में टाटा इस्पात ने सिंगापुर की नेट स्टील को 1245 करोड़ रुपये में तो टाटा मोटर्स ने डेबू का कोरिया स्थित भारी वाहन संयंत्र 448 करोड़ रुपये में खरीद लिया। अब विदेश संचार निगम लिमिटेड टाइको के भूसागर मग्न संचार तार तंत्र को भी 572 करोड़ रुपयों में खरीद रही है। इस प्रकार, विदेश संचार निगम को तीन महाद्वीपों तक व्याप्त 60,000 किलोमीटर लंबा सागरमग्न संचार तार तंत्र प्राप्त हो जाएगा। टाटा समूह बांग्ला देश में उर्वरक, इस्पात और विद्युत संयंत्रों आदि में 8,800 करोड़ रुपये का निवेश करने की योजना बना रहा है।
स्रोत : *बिजनेस टुडे, 22 मई 2005।*

3.5 वैश्वीकरण

वैश्वीकरण, उदारीकरण और निजीकरण की नीतियों का परिणाम है। यद्यपि वैश्वीकरण किसी अर्थव्यवस्था का विश्व अर्थव्यवस्था के साथ एकीकरण के रूप में जाना जाता है, जो एक जटिल परिघटना है। यह उन सभी नीतियों का परिणाम है, जिनका उद्देश्य है विश्व को परस्पर निर्भर और अधिक एकीकृत करना। इसके अंतर्गत आर्थिक, सामाजिक और भौगोलिक सीमाओं के अतिक्रमण की गतिविधियों और नेटवर्क का सृजन होता है। **वैश्वीकरण** ऐसे संपर्क सूत्रों की रचना का प्रयास है, जिससे मीलों दूर हो रही घटनाओं के प्रभाव भारत के घटनाक्रम पर भी स्पष्ट दिखाई देने लगे। यह समग्र विश्व को एक बनाने या सीमामुक्त विश्व की रचना करने का प्रयास है।

बाह्य प्रापण : वैश्वीकरण की प्रक्रिया का यह एक विशिष्ट् परिणाम है। इसमें कंपनियाँ किसी बाहरी स्रोत (संस्था) से नियमित सेवाएँ प्राप्त करतीं हैं। अधिकांशत: अन्य देशों से, जिन्हें पहले देश के भीतर ही प्रदान किया जाता था जैसे कि कानूनी सलाह, कंप्यूटर सेवा, विज्ञापन, सुरक्षा आदि। संचार के माध्यमों में आई क्रांति, विशेषकर सूचना प्रौद्योगिकी के प्रसार ने अब इन सेवाओं को ही एक विशिष्ट आर्थिक गतिविधि का स्वरूप प्रदान कर दिया है। इसी कारण, विदेशों से इन सेवाओं को प्राप्त करने (बाह्य प्रापण) की प्रवृत्ति बहुत सशक्त हो गई है। अब तो ध्वनि आधारित व्यावसायिक प्रक्रिया प्रतिपादन, अभिलेखांकन, लेखांकन, बैंक सेवाएँ, संगीत की रिर्कांडिंग, फिल्म संपादन, पुस्तक शब्दांकन, चिकित्सा संबंधी परामर्श और यहाँ तक कि शिक्षण कार्य भी बाह्य स्रोतों के सुपुर्द किया जाने लगा है। अनेक विकसित देशों की कंपनियाँ भारत की छोटी-छोटी संस्थाओं से ये सेवाएँ प्राप्त कर रही हैं। आधुनिक संचार साधनों के माध्यमों जैसे, इंटरनेट आदि से इन सेवाओं से जुड़ी रचनाओं, ध्वनियों और दृश्यों की जानकारी को तुरंत शून्य से नौ तक की संख्याओं में परिवर्तित कर देश ही नहीं बल्कि महाद्वीपों के बाहर तक प्रसारित कर दिया जाता है। अब तो अधिकांश बहुराष्ट्रीय कंपनियों के साथ-साथ अनेक छोटी बड़ी कंपनियाँ भारत से ये सेवाएँ प्राप्त करने लगी हैं, क्योंकि भारत में

इन्हें कीजिए

- अनेक विद्वानों का तर्क है कि वैश्वीकरण एक चेतावनी है- इससे अनेक क्षेत्रों में राष्ट्रीय सरकार का महत्व ही समाप्त हो जाता है। दूसरे, इसके विरोध में यह तर्क देते हैं कि वैश्वीकरण एक सुअवसर है क्योंकि यह बाज़ारों को आपस में प्रतिस्पर्धा का और किसी एक देश को अपना वर्चस्व बनाने का अवसर प्रदान करता है। इस विषय में अपनी कक्षा में वाद-विवाद करें।
- भारत में व्यापारिक सेवाएँ प्रदान करने वाली पाँच कंपनियों की सूची और उनके मुनाफे का चार्ट तैयार करें।
- एक दैनिक समाचार पत्र में छपे इस समाचार को पढ़ें, जो अब एक सामान्य बात हो गई है-
  "एक दिन सुबह 7 बजे से कुछ मिनट पहले, ग्रीष्मा अपना हैंड सेट पहने अपने कंप्यूटर के सामने बैठी थी। उसने अंग्रेजी में विशिष्ट शैली में कहा, 'हैलो डेनियला'। कुछ ही क्षणों में उसे उत्तर मिला 'हैलो, ग्रीष्मा।' कुछ देर दोनों में बड़ी गर्मजोशी से बातें होती रही और फिर ग्रीष्मा ने कहा, आज हम 'सर्वनाम' के विषय में बातचीत करेंगे। इसमें कोई विचित्र बात नहीं लगती। पर है अवश्य। 22 वर्षीया ग्रीष्मा कोची में अपने घर पर बैठी थी जबकि उसकी 13 वर्षीया छात्रा डेनियला केलिफोर्निया के मैलीबू में। अपने-अपने कम्प्यूटरों पर कृत्रिम श्वेत पट्ट को प्रयोगकर (वे कंप्यूटर इंटरनेट के माध्यम से जुड़ी हैं) तथा डेनियला की पाठ्यपुस्तक अपने सामने रख ग्रीष्मा उस किशोरी को संज्ञा, सर्वनाम, क्रिया, विशेषण आदि की जटिलताएँ समझा रही थी। मलयालम भाषा को ही पढ़ते और बोलते हुए युवा हुई ग्रीष्मा डेनियला को अंग्रेजी व्याकरण और पठन तथा लेखन का प्रशिक्षण दे रही थी।"
  यह सब कैसे संभव हो पाया है? डेनियला को यह शिक्षा देने वाले उसके अपने देश में क्यों नहीं मिल पाते?
  ✓ उसे अंग्रेजी भी उन भारतवासियों से क्यों सीखनी पड़ रही है, जिनकी मातृभाषा अंग्रेजी नहीं है?
  ✓ भारत उदारीकरण और विश्व बाज़ारों के एकीकरण होने से लाभांवित हो रहा है। क्या आप सहमत हैं?
- क्या 'कॉल सेंटरों में रोजगार स्थायी रूप धारण कर सकता है? नियमित आय कमाने के लिए इन कॉल सेंटरों में काम करने वाले को किस प्रकार के कौशल सीखने होंगे?
- यदि बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ भारत जैसे देशों से इसी प्रकार सेवा प्राप्त करती हैं तो उन देशों के वासियों का क्या होगा, जहां ये कंपनियां स्थित हैं? चर्चा करें।

इस तरह के कार्य बहुत कम लागत में और उचित रूप से निष्पादित हो जाते हैं। भारत की निम्न मजदूरी दरें तथा कुशल श्रम शक्ति की उपलब्धता ने **सुधारोपरांत इसे विश्व स्तरीय 'बाह्य प्रापण' का एक गंतव्य बना दिया है।**

विश्व व्यापार संगठन: *व्यापार और सीमा शुल्क महासंधि* (GATT) के परवर्ती *विश्व व्यापार संगठन* (WTO) का गठन 1995 में किया गया। उस महासंधि की रचना विश्व व्यापार प्रशासक के रूप में 23 देशों ने मिलकर 1948 में की थी। उसका ध्येय सभी देशों को विश्व व्यापार में समान अवसर सुलभ कराना था। विश्व व्यापार संगठन का ध्येय ऐसी नियम आधारित व्यवस्था की स्थापना है, जिसमें कोई देश मनमाने ढंग से व्यापार के मार्ग में बाधाएँ खड़ी नहीं कर पाए। साथ ही, इसका ध्येय

सारणी 3.1 **सकल घरेलू उत्पाद और प्रमुख क्षेत्रकों की संवृद्धि दरें (प्रतिशत में)**			
क्षेत्रक	1980-91	1992-2001	2002-07 दसवीं योजना के अनुमान
कृषि	3.6	3.3	4.0
उद्योग	7.1	6.5	9.5
सेवाएँ	6.7	8.2	9.1
स.घ.उ.	5.6	6.4	8.0

स्रोत : दशम पंचवर्षीय योजना
(स.घ.उ. -सकल घरेलू उत्पाद)

सेवाओं के सृजन और व्यापार को प्रोत्साहन देना भी है, ताकि विश्व के संसाधनों का इष्टतम स्तर पर प्रयोग हो और पर्यावरण का भी संरक्षण हो सके। विश्व व्यापार संगठन की संधियों में **द्विपक्षीय और बहुपक्षीय व्यापार** को बढ़ाने हेतु इसमें वस्तुओं के साथ-साथ सेवाओं के विनिमय को भी स्थान दिया गया है। ऐसा सभी सदस्य देशों के प्रशुल्क और **अप्रशुल्क अवरोधकों** को हटाकर तथा अपने बाज़ारों को सदस्य देशों के लिए खोलकर किया गया है।

विश्व व्यापार संगठन के एक महत्वपूर्ण सदस्य के रूप में भारत विकासशील विश्व के हितों का संरक्षण करते हुए न्यायपूर्ण विश्वस्तरीय व्यापार व्यवस्था के नियमों तथा सुरक्षात्मक व्यवस्थाओं की रचना में सक्रिय भागीदार रहा है। भारत ने व्यापार के उदारीकरण की अपनी प्रतिबद्धता को बनाए रखा है। इसके लिए इसने **आयात पर से** अनेक परिमाणात्मक प्रतिबंध हटाए हैं और प्रशुल्क दरों को भी बहुत कम किया है।

कुछ विद्वानों को आशंका है कि विश्व व्यापार संगठन में भारत की सदस्यता का कोई औचित्य नहीं है, क्योंकि विश्व व्यापार का अधिकांश भाग तो विकसित देशों के बीच ही होता है। उनका यह भी मानना है कि विकसित देश अपने देशों में जहाँ कृषि सहायिकी दिये जाने को लेकर शिकायत करते हैं, वहीं विकासशील देश अपने बाज़ारों को विकसित देशों के लिए खोले जाने को मजबूर करने को लेकर छला हुआ महसूस करते हैं। वे देश विकासशील देशों को अपने बाज़ारों में किसी न किसी बहाने प्रवेश करने से रोकने का प्रयास भी करते रहते हैं। क्या आपको ऐसा लगता है कि विश्व व्यापार संगठन तो गरीब देशों को छलने की व्यवस्था मात्र है?



चित्र 3.2 *सूचना प्रौद्योगिकी उद्योग का भारत के निर्यात में प्रमुख योगदान*

3.6 सुधारकालीन भारतीय अर्थव्यवस्था—एक समीक्षा

अब तो सुधार कार्यक्रम को आरंभ हुए डेढ़ दशक हो चुके हैं। आइए, इस अवधि में भारतीय अर्थव्यवस्था के निष्पादन की समीक्षा करें। अर्थशास्त्री किसी अर्थव्यवस्था की संवृद्धि का मापन सकल घरेलू उत्पाद द्वारा करते हैं। देखें सारणी 3.1। इस सारणी में विभिन्न अवधियों में सकल घरेलू उत्पाद की संवृद्धि दरें दिखाई गई हैं। यह दर 1980-91 में 5.6 प्रतिशत से बढ़कर 1992-2001 की अवधि में 6.4 प्रतिशत हो गई। अतः स्पष्ट है कि सुधार अवधि में कुल मिलाकर संवृद्धि दर में सुधार हुआ है। इसी समय में कृषि और उद्योगों की संवृद्धि दरों में कुछ गिरावट भी आई है, किंतु सेवा क्षेत्रक की संवृद्धि दर में अच्छा सुधार हुआ है। अत: यह भी स्पष्ट है कि सकल घरेलू उत्पाद की यह संवृद्धि मुख्यतः सेवा क्षेत्रक के बढ़ते योगदान का परिणाम है। इस समय चल रही दसवीं पंचवर्षीय योजना में सकल घरेलू उत्पाद संवृद्धि दर के 8 प्रतिशत का लक्ष्य रखा गया है। इस लक्ष्य की प्राप्ति के

इन्हें कीजिए

- पिछले अध्याय में आपने कृषि सहित अनेक क्षेत्रकों में आर्थिक सहायता दिये जाने के विषय में पढ़ा होगा। कुछ विद्वानों का कहना है कि कृषि को अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर स्पर्धाशील बनाने के लिए इस क्षेत्रक को मिल रही सहायिकी को बंद किया जाना चाहिए। क्या आप सहमत हैं? यदि हाँ, तो यह कार्य कैसे किया जाना चाहिए? कक्षा में चर्चा करें।
- इस अनुच्छेद को ध्यान से पढ़े और कक्षा में इस पर चर्चा करें:
  मूँगफली आंध्र प्रदेश की एक प्रमुख तेलहन फसल है। आंध्र के अनंतपुर जिले का एक किसान महादेव अपनी आधा एकड़ भूमि पर मूँगफली की खेती पर 1500 रुपये खर्च किया करता था। इस लागत में बीज, उर्वरक, श्रम, बैलशक्ति और सामान्य हल पर हुए सभी खर्च सम्मिलित होते थे। औसतन महादेव को दो क्विंटल उत्पादन प्राप्त हो जाता था, जिसे बेचकर वह 2000 रुपये प्राप्त कर लेता था। अत: वह 1500 का खर्च कर 2000 की कमाई कर लेता था। अनंतपुर जिले में अक्सर अकाल पड़ते रहते थे। आर्थिक सुधारों के बाद तो सरकार ने वहाँ किसी बड़ी सिंचाई योजना पर काम करने का विचार भी नहीं किया। अभी कुछ समय पहले अनंतपुर में मूँगफली की फसल किसी बीमारी की चपेट में आ गई। सरकारी व्यय में कमी के कारण अब उस दिशा में शोध और प्रसार कार्य भी शिथिल हो चुके हैं। महादेव और उसके मित्रों ने कई बार इस ओर सरकारी अधिकारियों का ध्यान आकर्षित करने का प्रयास किया, पर उन्हें सफलता नहीं मिल पाई। बीज, उर्वरक आदि पर सहायिका भी घटा दी गई। महादेव की उत्पादन लागतों में इस कारण भी वृद्धि हुई। यहीं नहीं, स्थानीय बाज़ार में आयात किए गए सस्ते खाद्य तेलों की तो जैसे बाढ़ सी आ गई है- यह आयात प्रतिबंध हटाने का परिणाम है। महादेव अब अपना उत्पादन बाज़ार में नहीं बेच पाता - बाज़ार की कीमतें उसकी उत्पादन की लागत को भी पूरा नहीं कर पाती। क्या महादेव जैसे किसान भी आर्थिक सुधारों से लाभान्वित हो पाए हैं? कक्षा में चर्चा करें।

लिए कृषि, उद्योग और सेवाओं में क्रमशः 4, 9.5 और 9.1 प्रतिशत की दर पर प्रगति होनी चाहिए। वैसे कई विशेषज्ञों ने इतनी उच्च संवृद्धि दरों के प्रक्षेपणों की व्यावहारिक धारणीयता को लेकर प्रश्न भी उठाए हैं।

अर्थव्यवस्था के खुलने से प्रत्यक्ष विदेशी निवेश तथा विदेशी विनिमय रिज़र्व में तेजी से वृद्धि हुई है। विदेशी निवेश (जिसमें **प्रत्यक्ष और संस्थागत विदेशी निवेश** दोनों ही सम्मिलित हैं) 1990-91 के 100 मिलियन अमेरिकी डॉलर से ऊपर उठकर 2003-04 में 150 बिलियन डॉलर के स्तर पर पहुँच गया है। भारत के विनिमय रिज़र्व का आकार भी इसी अवधि में 6 बिलियन अमेरिकी डॉलर से बढ़कर 2004-05 में 125 बिलियन डॉलर से अधिक हो गया है। इस समय भारत विदेशी विनिमय रिज़र्व का छठा सबसे बड़ा धारक माना जाता है।

अब भारत वाहन, कल-पुर्ज़ों, इंजीनियरी उत्पादों, सूचना प्रौद्योगिकी उत्पादों और वस्त्रादि के एक सफल निर्यातक के रूप में विश्व बाज़ार में जम गया है। बढ़ती हुई कीमतों पर भी नियंत्रण रखा गया है।

दूसरी ओर, सुधार कार्यक्रमों द्वारा अपने देश की अनेक मूलभूत समस्याओं का समाधान खोज पाने में विफलता के कारण कड़ी आलोचना भी होती रही है। ये समस्याएँ विशेषकर रोजगार सृजन, कृषि, उद्योग, आधारभूत सुविधाओं के विकास तथा राजकोषीय प्रबंधन से जुड़ी हैं।

संवृद्धि और रोजगार : यद्यपि सकल घरेलू उत्पाद की संवृद्धि दर में वृद्धि हुई है, फिर भी अनेक विद्वानों ने इस बात पर ध्यान दिलाया है कि सुधार प्रेरित संवृद्धि ने देश में रोजगार के पर्याप्त अवसरों का सृजन नहीं किया है। आपको रोजगार और संवृद्धि के विभिन्न आयामों के अंर्तसंबंध अगले अध्याय में विस्तार से समझाए जाएँगे।

कृषि में सुधार : सुधार कार्यों से कृषि को कोई लाभ नहीं हो पाया है और कृषि की संवृद्धि दर कम होती जा रही है।

सुधार अवधि में कृषि क्षेत्रक में सार्वजनिक व्यय विशेषकर आधारिक सरंचना अर्थात् सिंचाई, बिजली, सड़क निर्माण, बाज़ार संपर्कों और शोध-प्रसार आदि पर व्यय में काफी कमी आई है (ध्यान रहे कि हरित क्रांति में इसकी महत्वूपूर्ण भूमिका रही थी)। साथ ही, उर्वरक सहायिकी की समाप्ति ने भी उत्पादन लागतों को बढ़ा दिया है। इसका छोटे और सीमांत किसानों पर बहुत ही गंभीर प्रभाव पड़ा है। इसके साथ ही, विश्व व्यापार संगठन की स्थापना के कारण कृषि उत्पादों पर आयात शुल्क में कटौती, न्यूनतम समर्थन मूल्यों की समाप्ति और इन पदार्थों के आयात पर परिमाणात्मक प्रतिबंध हटाए जाने के कारण इस क्षेत्रक की नीतियों में कई परिवर्तन हुए। इसके कारण भारत के किसानों को विदेशी स्पर्धा का भी सामना करना पड़ा है, जिसका उन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है।

दूसरी तरफ, उत्पादन व्यवस्था निर्यातोन्मुखी हो रही है। आंतरिक उपभोग की खाद्यान्न फसलों के स्थान पर निर्यात के लिए नकदी फसलों पर बल दिया जा रहा है। इससे देश में खाद्यान्नों की कीमतों पर दबाव बढ़ रहा है।

उद्योगों में सुधार : औद्योगिक संवृद्धि की दर में भी कुछ शिथिलता आई है। यह औद्योगिक उत्पादों की गिरती हुई माँग के कारण है। माँग

में गिरावट के कई कारण हैं जैसे, सस्ते आयात, आधारित सरंचना में अपर्याप्त निवेश आदि। वैश्वीकरण की व्यवस्था में विकासशील देश अपनी अर्थव्यवस्थाओं को विकसित देशों की वस्तुओं और पूँजी प्रवाहों को प्राप्त करने के लिए खोल देने को बाध्य हुए हैं तथा उन्होंने अपने उद्योगों का आयतित वस्तुओं से प्रतिस्पर्धा का खतरा मोल ले लिया। सस्ते आयातों ने घरेलू वस्तुओं की माँग को प्रतिस्थापित कर दिया है। निवेश में कटौती के कारण, बिजली सहित, आधारिक सरंचनाओं की पूर्ति अपर्याप्त ही बनी हुई है। इसी कारण, प्रायः यह समझा जा रहा है कि विदेशियों के माल में बेरोक-टोक आवागमन को सहज बनाकर गरीब देशों के स्थानीय उद्योगों और रोजगार की संभावनाओं के लिए वैश्वीकरण पूरी तरह से बर्बाद करने वाली परिस्थितियों की रचना कर रहा है।

यही नहीं, भारत जैसे गरीब देशों को अभी विकसित देशों में विद्यमान उच्च अप्रशुल्क अवरोधकों के कारण उनके बाज़ारों में प्रवेश के उपयुक्त अवसर भी नहीं मिल पा रहे हैं। यद्यपि हमने तो वस्त्र-परिधान आदि के व्यापार से सभी कोटा आदि के प्रतिबंध हटा दिए हैं, पर अभी भी संयुक्त राज्य अमेरिका ने भारत और चीन से इनके आयातों से अपने कोटा प्रतिबंध नहीं हटाए हैं।

विनिवेश : प्रतिवर्ष सरकार सार्वजनिक उद्यमों में विनिवेश के कुछ लक्ष्य निर्धारित करती है। वर्ष 1991-92 में उसने विनिवेश द्वारा 2500 करोड़ रुपये जुटाने का लक्ष्य रखा था। सरकार उस लक्ष्य से 3040 करोड़ अधिक जुटा पाने में सफल रही। वर्ष 1998-99 में लक्ष्य तो 5000 करोड़ के विनिवेश का था, पर उपलब्धि 5400 करोड़ की रही। इस प्रक्रिया के आलोचकों का कहना है कि सार्वजनिक उपक्रमों की परिसंपत्तियों को औने-पौने दामों में निजी व्यापारियों को बेचा जा रहा है। दूसरे शब्दों में, इस प्रक्रिया से सरकार को बहुत घाटा उठाना पड़ रहा है। साथ

बॉक्स 3.3 'सिरीसिला त्रासदी'

उदारीकरण, निजीकरण और वैश्वीकरण के तहत सरकार ने विद्युत क्षेत्र में भी सुधार आरंभ किए हैं। इनका सबसे महत्वपूर्ण प्रभाव बिजली की दरों में भारी वृद्धि रहा है। कुटीर और लघु उद्योगों के अधिकांश बुनकर विद्युत-करघों पर काम करते हैं। अतः बिजली की दरों में वृद्धि से उनपर पड़े प्रभाव बहुत गंभीर हो गए हैं। यही नहीं, बिजली की दरें तो बढ़ी हैं पर बिजली उत्पादक लघु उद्योगों को बिजली पूर्ति की गुणवत्ता में कोई सुधार नहीं हो पाया है। इन उद्योगों में काम कर रहे बुनकरों की मजदूरी बुने गए कपड़े की मात्रा पर आधारित होती है। अतः बिजली में कटौती का अर्थ ऊँची दरों की मार झेल रहे बुनकरों की मजदूरी में भी कटौती है। इससे तो बुनकरों की अजीविका ही संकट में पड़ गई। आंध्र के एक छोटे से कस्बे सिरीसीला में विद्युत करघों पर काम करने वाले 50 बुनकरों को आत्महत्या करने को बाध्य होना पड़ा। क्या बिजली की दरें नहीं बढ़ानी चाहिए? बिजली उत्पादन करनेवाली कंपनियों की लाभप्रदता सुधारने के लिए आप क्या सुझाव देंगे?

ही, विनिवेश से प्राप्त राशि का उपक्रमों के विकास के लिए प्रयोग नहीं किया गया, न ही इसे सामाजिक आधारिक सरंचनाओं के निर्माण पर खर्च किया गया। यह राशि सरकार के बजट के राजस्व घाटे को कम करने में ही लग गई।

सुधार और राजकोषीय नीतियाँ : आर्थिक सुधारों ने सामाजिक क्षेत्रकों में सार्वजनिक व्यय की वृद्धि पर विशेष रूप से रोक लगा दी है। इस अवधि में कर घटाकर और कर वंचना नियंत्रित कर राजस्व संग्रह बढ़ाने की नीतियों के यथोचित सकारात्मक प्रभाव भी नहीं मिल पाए हैं। यही नहीं, सीमाशुल्क दरों में कटौती तो सुधार कार्यों का आवश्यक अंग है। अतः उन दरों को बढ़ाकर अधिक राजस्व जुटाने का मार्ग बंद हो चुका है। विदेशी निवेश आकर्षित करने के लिए निवेशकों को कई प्रकार के कर प्रोत्साहन दिए गए हैं, इससे भी कर राजस्व को बढ़ा पाने की संभावनाएँ क्षीण हो गई हैं। इन सबका विकास और जनकल्याण आदि पर होने वाले व्यय पर नकारात्मक प्रभाव पड़ रहा है।

3.7 निष्कर्ष

उदारीकरण और निजीकरण की नीतियों के माध्यम से वैश्वीकरण के भारत सहित अनेक देशों पर सकारात्मक तथा नकारात्मक प्रभाव पड़े हैं। कुछ विद्वानों का विचार है कि वैश्वीकरण को एक सुअवसर की भाँति देखा जाना चाहिए क्योंकि विश्व बाज़ारों में बेहतर पहुँच तथा तकनीकी उन्नयन द्वारा विकासशील देशों के बड़े उद्योगों को अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर 'महत्वपूर्ण' बनने का अवसर प्रदान कर रहा है।

दूसरी ओर, आलोचकों का मत है कि वैश्वीकरण तो अमीर देशों द्वारा विकासशील देशों के आंतरिक बाज़ारों पर कब्जा करने की साजिश है। इनके अनुसार वैश्वीकरण से गरीब देशवासियों का कल्याण ही नहीं वरन् उनकी पहचान भी खतरे में पड़ गई है। यह भी बताया जा रहा है कि बाज़ार प्रेरित वैश्वीकरण से विभिन्न देशों और जन समुदायों के बीच की खाई और विस्तृत हो रही है।

भारतीय परिप्रेक्ष्य में किए गए अनेक अध्ययनों का निष्कर्ष है कि भारत के 1990 का वित्तीय संकट उसकी आंतरिक संरचना में कई भीषण विषमताओं का ही परिणाम था। उस संकट के निदान के लिए बाहरी शक्तियों के परामर्श पर सरकार द्वारा प्रारंभ नीतियों ने उन विषमताओं को और भी गहन बना दिया है। इन्होंने केवल उच्च आयवर्ग की आमदनी और उपभोग स्तर का उन्नयन किया है तथा सारी संवृद्धि कुछ इने-गिने क्षेत्रों तक सीमित रही है। ये क्षेत्र हैं-दूरसंचार, सूचना प्रौद्योगिकी, वित्त, मनोरंजन, पर्यटन और परिचर्या सेवाएँ, भवन निर्माण और व्यापार आदि। कृषि, विनिर्माण जैसे आधारभूत क्षेत्रक (जो देश के करोड़ों लोगों को रोजगार प्रदान करते हैं) इन सुधारों से लाभान्वित नहीं हो पाए हैं।

पुनरावर्तन

- भारतीय अर्थव्यवस्था को विदेशी विनिमय भंडार में कमी, निर्यात में कमी के साथ-साथ आयात में वृद्धि और उच्च मुद्रास्फीति की समस्याओं का सामना करना पड़ रहा था। फलस्वरूप, उत्पन्न वित्तीय संकट के निदान के लिए विश्व बैंक और अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष से सहायता माँगने पर उनके दबाव के कारण भारत सरकार को 1991 में अपनी नीतियों में आमूलचूल परिवर्तन करना पड़ा।
- आंतरिक दृष्टि से उद्योग और वित्तीय क्षेत्रकों में व्यापक और दूरगामी सुधार आरंभ किए गए। बाह्य दृष्टि से प्रमुख सुधार विदेशी विनिमय विनियंत्रण में कमी और आयात उदारीकरण रहे।
- सार्वजनिक क्षेत्रक की कार्यकुशलता बढ़ाने के लिए इसकी भूमिका को सीमित करने और इसमें निजी उद्यमियों को प्रवेश के अवसर प्रदान करने पर सहमति बनी। इस कार्य के लिए उदारीकरण और विनिवेश की नीतियाँ अपनाई गई।
- वैश्वीकरण तो उदारीकरण और निजीकरण की नीतियों का प्रत्यक्ष प्रभाव ही है। इसका अर्थ आंतरिक अर्थव्यवस्था को शेष विश्व से और बेहतर जोड़ना है।
- बाह्य प्रापण: बाहरी देशों से व्यावसायिक सेवाओं की प्राप्ति एक उदीयमान व्यापारिक गतिविधि है।
- विश्व व्यापार संगठन का ध्येय ऐसी नियम आधारित विश्व व्यवस्था की रचना करना है, जिसमें विश्व भर के संसाधनों का इष्टतम उपयोग संभव हो सके।
- सुधारकाल में कृषि और उद्योगों की संवृद्धि दर में कुछ गिरावट आई है और सेवाओं में उछाल आया है।
- सुधारों से कृषि को लाभ नहीं पहुँचा है। इस क्षेत्रक में सार्वजनिक निवेश में निश्चय ही कमी आई है।
- औद्योगिक क्षेत्रक में भी निवेश में कमी और सस्ते आयातों की बहुतायत के कारण शिथिलता ही आई है।



अभ्यास

1. भारत में आर्थिक सुधार क्यों आरंभ किए गए?
2. विश्व व्यापार संगठन के कितने सदस्य देश हैं?
3. भारतीय रिर्ज़व बैंक का सबसे प्रमुख कार्य क्या है?
4. रिर्ज़व बैंक व्यावसायिक बैंकों पर किस प्रकार नियंत्रण रखता है।
5. रुपयों के अवमूल्यन से आप क्या समझते हैं?
6. इनमें भेद करें:
   (क) युक्तियुक्त और अल्पांश विक्रय
   (ख) द्विपक्षीय और बहुपक्षीय व्यापार
   (ग) प्रशुल्क एवं अप्रशुल्क अवरोधक
7. प्रशुल्क क्यों लगाए जाते हैं?
8. परिमाणात्मक प्रतिबंधों का क्या अर्थ होता है?
9. 'लाभ कमा रहे सार्वजनिक उपक्रमों का निजीकरण कर देना चाहिए'? क्या आप इस विचार से सहमत हैं? क्यों?
10. क्या आप के विचार में बाह्य प्रापण भारत के लिए अच्छा है? विकसित देशों में इसका विरोध क्यों हो रहा है?
11. भारतीय अर्थव्यवस्था में कुछ विशेष अनुकूल परिस्थितियाँ हैं जिनके कारण यह विश्व का बाह्य प्रापण केंद्र बन रहा है। अनुकूल परिस्थितियाँ क्या हैं?
12. क्या भारत सरकार की नवरत्न नीति सार्वजनिक उपक्रमों के निष्पादन को सुधारने में सहायक रही है? कैसे?
13. सेवा क्षेत्रक के तीव्र विकास के लिए उत्तरदायी प्रमुख कारक कौन-से रहे हैं?
14. सुधार प्रक्रिया से कृषि क्षेत्रक दुष्प्रभावित हुआ लगता है? क्यों?
15. सुधार काल में औद्योगिक क्षेत्रक के निराशाजनक निष्पादन के क्या कारण रहे हैं?
16. सामाजिक न्याय और जन-कल्याण के परिप्रेक्ष्य में भारत के आर्थिक सुधारों पर चर्चा करें।

1. इस सारणी में 1993-1994 के कीमत स्तर पर सकल घरेलू उत्पाद की संवृद्धि दर के आँकड़े दिए गए हैं। आपने अर्थशास्त्र के लिए सांख्यिकी विश्लेषण में आँकड़ों की प्रस्तुति की तकनीकों का अध्ययन किया है। इस सारणी के आँकड़ों का प्रयोग कर एक रेखीय आरेख अंकित कर उसका निर्वचन करें।

वर्ष	स.घ.उ. संवृद्धि दर(%)
1991-92	1.3
1992-93	5.1
1993-94	5.9
1994-95	7.3
1996-97	7.8
1997-98	4.8
1998-99	6.5
2000-01	4.4
2001-02	5.8
2002-03	4.0

(स.घ.उ.- सकल घरेलू उत्पाद)

2. अपने आस-पास ध्यान दें : आप के नगर और राज्य में बिजली की पूर्ति राज्य विद्युत मंडल और अनेक निजी कंपनियाँ कर रही होंगी। सरकारी बस सेवा के साथ-साथ निजी बसें भी सड़कों पर दौड़ती दिखाई देती हैं।
   (क) सार्वजनिक एवं निजी क्षेत्रकों के सह-अस्तित्वपूर्ण दोहरी व्यवस्था के बारे में आपका क्या विचार है?
   (ख) इस प्रकार के दोहरी पद्धति के गुण-दोषों का विवेचन करें?
3. अपने अभिभावकों और दादा-नाना के समवयस्कों की सहायता से उन बहुराष्ट्रीय कंपनियों की सूची बनाएँ, जो स्वतंत्रता के समय भारत में काम कर रही थीं। उनमें से जो अभी भी यहाँ पर हैं उनके सामने (✓) तथा जो अब नहीं है उनके सामने (X) का चिह्न अंकित करें।

क्या ऐसी कंपनियाँ भी हैं, जिन्होंने अपने नाम बदल लिए हों? नए नाम, उद्गम के देश, उत्पाद की प्रकृति और उनके शब्द चिह्नों की जानकारी एकत्र कर चार्ट तैयार करें।

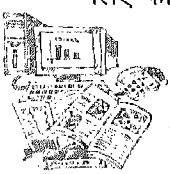
4. इनके उपयुक्त उदाहरण दें।

उत्पाद की प्रकृति	**किसी विदेशी कंपनी का नाम**
बिस्कुट	
जूते	
कंप्यूटर	
कारें	
टेलिविजन और रेफ्रिजरेटर	
लेखन सामग्री	

यह भी पता करें कि क्या ये कंपनियाँ 1991 से पहले भी भारत में काम कर रही थीं या नई आर्थिक नीति के बाद ही इनका आगमन हुआ है। इसके लिए अपने शिक्षकों, अभिभावकों, दादा-दादी और दुकानदारों की सहायता ले सकते हैं।

5. विश्व व्यापार संगठन की बैठकों से संबंधित कुछ समाचारों की कतरनें एकत्र करें। इन बैठकों में चर्चित मुद्दों पर विचार-विमर्श करें और पता करें कि यह संस्था किस प्रकार व्यापार को बढ़ावा देती है।

6. क्या भारत के लिए विश्व बैंक और अंर्तराष्ट्रीय मुद्रा कोष के आग्रह पर आर्थिक सुधार आरंभ करना आवश्यक था? क्या सरकार के पास भुगतान संतुलन की समस्या को सुलझाने के लिए कोई और विकल्प नहीं था? कक्षा में चर्चा करें।



संदर्भ

आचार्य शंकर 2003. इंडियाज इकॉनोमी: *सम इश्यूज एंड आनसर्ज,* एकेडेमिक फाउंडेशन, नई दिल्ली।

आल्टरनेटिव सर्वे ग्रुप 2005. *आल्टरनेटिव इक्नॉमिक सर्वे, इंडिया 2004-05*, डिसइक्विलाइजिंग ग्रोथ, दानिश बुक्स दिल्ली।

अहलूवालिया, आई.जे.एंड आठ.एम.डी. लिटिल, 1998. इंडियान इकॉनॉमिक रिफोर्मस एंड डेवलमंट, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली।

बर्धन प्रनव 1998. द पॉलिटिकल इकॉनामी ऑफ डेवलपमेंट इन इंडिया, *एक्सपेंडेड एडीसन विथ एन ऐपीलॉग ओन द पॉलिटिकल इकोनोमी ऑफ रिफार्म इन इंडिया*, ऑक्सफोर्ड यूनीवर्सिटी प्रेस, दिल्ली।

भादुरी अमित और दीपक नायर 1996. द *इनटैलीजेंट परसंस गाईड टू लिब्रलाजेशन*, पेंग्युइन, दिल्ली।

भारवती, जगदीश, 1992. इंडिया इन ट्रांजीशन: फ्रीइंग द इकॉनॉमी ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, दिल्ली।

बायरस टिरेन्स जे 1997. द *स्टेट, डेवेलमेंट प्लानिंग एंड लिब्रलाइजेशन इन इंडिया*, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, दिल्ली।

चढा जी.के. 1994. *पॉलिसी परसपेक्टिव इन इंडियन इकोनोमिक डेवेलेपमेंट*, हर आनंद दिल्ली।

चेलय्याह राजा जे. 1996. *टूवार्डस ससटेनेबल ग्रोथ, एसयेज इन फिसकल सेंटर रिफार्मस इन इंडिया*, ऑक्सफोर्ड यूनीवर्सिटी प्रेस, दिल्ली।

देवराय विवेक और राहुल मुखर्जी (संपादित) 2004. द *पॉलिटिकल इकॉनोमी ऑफ रिफोर्म्स*, बुकवेल पब्लिकेशन, नई दिल्ली।

ड्रेजी जीन और अमर्त्य सेन 1996. *इंडिया इकोनोमिक डेवेलेपमेंट एंड सोशल ऑपरच्यूनिटी*, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, दिल्ली।

दत्त रूद्र और के.पी.एस सुन्दरम 2005. *इंडियन इकोनामी*, एस.चंद एंड कंपनी, नई दिल्ली।

गुहा अशोक (ऐडीटेड) 1990. इकोनोमिक लिबरलाइेजेशन, *इंडसट्रियल स्ट्रक्चर एंड ग्रोथ इन इंडिया*, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, दिल्ली।

जालान विमल 1993. इंडियाज इकोनोमिक क्राइसिस: द *वे अहेड, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस*, दिल्ली।

जालान विमल 1996. इंडियाज इकोनोमिक पोलिसी: *प्रिपेरिंग फोरद ट्वेंटी फर्स्ट सेंचुरी*, बाइकिंग, दिल्ली।

जोशी विजय एंड आई.एम.डी. लिट्टिल 1996. *इंडियाज इकोनोमिक रिफार्मस 1991-2001*, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, दिल्ली।

कपिला उमा 2005. *अंडरस्टैंडिग प्रौबल्मस ऑफ इंडियन इकॉनोमी*, एकेडेमिक फाउंडेशन, नई दिल्ली

महाजन वी.एस. 1994. *इंडियन इकॉनामी टुवर्ड्स 2000*, ए डी दीप एंड दीप, दिल्ली।

पारिख, किरीट एंड राधाकृष्णा, 2002, *इंडिया डेवलपमेंट रिपोर्ट 2001-02* ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, दिल्ली।

राव सी.एच. हनुमंथा. एंड हंस लिन्नेमन 1996. *इकनॉमिक रिफोर्म्स एंड पावर्टी एलिविएशन इन इंडिया*, सेज, दिल्ली।

सेचस जैफ्रे डी. *आशुतोष वार्ष्णेय और निरूपम वाजपेयी (ऐडीटेड) 1999.* ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली

इकाई
तीन

भारतीय अर्थव्यवस्था की वर्तमान चुनौतियाँ

आज भारत की चुनौतियों में निधर्नता, ग्रामीण भारत का विकास तथा आधारिक संरचना का निर्माण प्रमुख है। हम सौ करोड़ लोगों की शक्ति से संपन्न राष्ट्र हैं तथा मानव पूँजी हमारी एक बड़ी संपत्ति है। इसमें शिक्षा तथा स्वास्थ्य में निवेश आवश्यक है। हमें रोजगार के स्वरूप को समझने की एवं देश में और अधिक रोजगार के अवसर के सृजन की ज़रूरत है। हम विकास के निहितार्थों को भी अपने पर्यावरण तथा धारणीय विकास की मांग के संदर्भ में देखेंगे। इन मुद्‌दों को सुलझाने के क्रम में सरकार की नीतियों का आलोचनात्मक आकलन किए जाने की ज़रूरत है, जिस पर इस इकाई में अलग से चर्चा की गई है।

4

निर्धनता

इस अध्याय को पढ़ने के बाद आप

- निर्धनता के विभिन्न लक्षणों को जान सकेंगे;
- निर्धनता की अवधारणा के विभिन्न पक्षों को समझ सकेंगे;
- निर्धनता मापन के तरीकों की आलोचनात्मक समीक्षा कर सकेंगे;
- निर्धनता निवारण के वर्तमान कार्यक्रमों को समझ कर उनकी समीक्षा कर सकेंगे।

कोई भी ऐसा समाज कभी सुखी और संपन्न नहीं हो सकता है, जिसके अधिकांश सदस्य निर्धन और दयनीय हों।

-ऐडम स्मिथ

4.1 प्रस्तावना

पिछले अध्यायों में आपने साढ़े पाँच दशकों से भारत में अपनाई गई आर्थिक नीतियों तथा विभिन्न विकास सूचकों पर उनके प्रभावों का अध्ययन किया है। जन-जन की न्यूनतम मूलभूत आवश्यकताओं की संपूर्ति और निर्धनता निवारण स्वतंत्र भारत का एक प्रमुख लक्ष्य रहा है। हमारी सभी पंचवर्षीय योजनाओं ने विकास के जिस स्वरूप को अंगीकार किया है, उसका उद्देश्य समाज के निर्धनतम और सबसे पिछड़े सदस्यों का उन्नयन (अंत्योदय) रहा है। साथ ही निर्धन वर्गों को समाज की मुख्यधारा का अंग बना सभी के लिए एक न्यूनतम जीवन स्तर सुनिश्चित कराने का ध्येय लेकर ही सारे विकास कार्यक्रमों की रचना की गई है।

संविधान सभा को संबोधित करते हुए 1947 में जवाहरलाल नेहरू ने कहा था, "स्वतंत्रता की प्राप्ति तो एक कदम मात्र है, एक सुअवसर का आरंभ मात्र है - अभी और बहुत-सी महान उपलब्धियाँ और विजयोत्सव हमारी प्रतीक्षा में हैं। ये होंगे निर्धनता, अज्ञान, रोग और अवसरों की असमानताओं के उन्मूलन के उत्सव।"

किंतु आज हम कहाँ तक पहुँच पाए हैं, यह जानना भी आवश्यक है। आज विश्व के निर्धनों की कुल संख्या के पाँचवें हिस्से से अधिक निर्धन केवल भारत में रहते हैं। यहाँ 26 करोड़ ऐसे लोग बसे हैं, जो अपनी मूलभूत ज़रूरतों को भी ढंग से पूरा नहीं कर पाते।

निर्धनता के स्थान-स्थान पर तथा समय-समय पर अलग-अलग स्वरूप हैं। इनकी अनेक प्रकार से व्याख्या की गई है। मोटे तौर पर निर्धनता ऐसी दशा तो मानी ही जाती है, जिससे सभी व्यक्ति बचना चाहते हैं। अत: निर्धनता, निर्धन तथा धनी दोनों के लिए विश्व को बदलने का एक आह्वान है ताकि अधिक से अधिक लोगों को पेटभर भोजन नसीब हो सके, सिर छुपाने को बेहतर जगह मिल सके, चिकित्सा व शिक्षा की सुविधाएँ प्राप्त हो सके, हिंसा से उनका बचाव हो सके तथा अपने समाज के घटनाक्रम में उनकी आवाज की भी सुनवाई हो सके।

यह जानने के लिए कि निर्धनता कम करने में कौन-सी नीतियाँ सफल हो सकती हैं और कौन सी नहीं, समयानुसार किन बातों में बदलाव आ सकते हैं, हमें निर्धनता को परिभाषित करना तथा इसका मापन, अध्ययन और अनुभव भी करना होगा। निर्धनता के अनेक आयाम होते हैं, अत: अनेक सूचकों के माध्यम से उनका अवलोकन करना होगा। कहीं आय और उपभोग के स्तर, कहीं सामाजिक सूचकों और जोखिम के प्रति संवेदनशीलता के सूचकों, तो कहीं सामाजिक-राजनीतिक प्रक्रियाओं तक पहुँच या उनमें भागीदारी पर विचार करना होगा।

4.2 निर्धन कौन हैं?

आपने देखा होगा, प्राय: सभी क्षेत्रों-गाँवों और शहरों में कुछ लोग धनी तो कुछ निर्धन होते हैं।

बॉक्स 4.1 में अनु और सुधा की कहानी पढ़ें। उनके जीवन विषमताओं के चरम बिंदुओं के उदाहरण कहे जा सकते हैं। ऐसे लोग भी हैं जो इन दोनों चरम बिंदुओं के बीच जीवन निर्वाह कर रहे हैं।

रेहड़ीवाले, गली में काम करने वाले मोची, मालाएँ गूँथने वाली महिलाएँ, कागज़-कतरन बीनने वाले, फेरी वाले, भिखारी आदि शहरी क्षेत्रों के अति निर्धन और जोखिम भरा जीवन व्यतीत करने वाले वर्ग हैं। इनकी परिसंपत्तियाँ बहुत कम होती हैं। ये कच्चे घरों में रहते हैं, जिनकी दीवारें (धूप में सूखी) मिट्टी की तो छतें घास, तिनकों, बाँस और कमजोर लकड़ियों की बनी होती हैं। इनमें से भी जो बहुत निर्धन हैं, उनके पास तो ऐसे घर भी नहीं होते। ग्रामीण क्षेत्रों में निर्धनों के पास प्रायः भूमि भी नहीं

बॉक्स 4.1 अनु और सुधा

अनु और सुधा का जन्म एक ही दिन हुआ था। अनु के माता-पिता निर्माण कार्य पर लगे मजदूर थे तो सुधा के पिता एक व्यवसायी तथा माँ शिल्पकार (डिजाइनर) थी।

अनु की माँ प्रसव पीड़ा आरंभ होने तक अपने सिर पर ईटों का भार ढो रही थी। दर्द आरंभ होने पर वह निर्माण स्थल पर ही औजार आदि रखने के स्थान पर चली गई और वहीं उसने अकेले ही अपनी बेटी को जन्म दिया। अपनी बच्ची को दूध पिलाया, पुरानी फटी साड़ी के चीथड़ों में उसे लपेटा और बोरी के झूले में उसे एक पेड़ पर टाँग तुरंत काम पर लौट आई। उसे डर था, कहीं उस का रोजगार न छिन जाए। उसे इतनी आशा थी कि उसकी बेटी शाम तक सोती रहेगी।

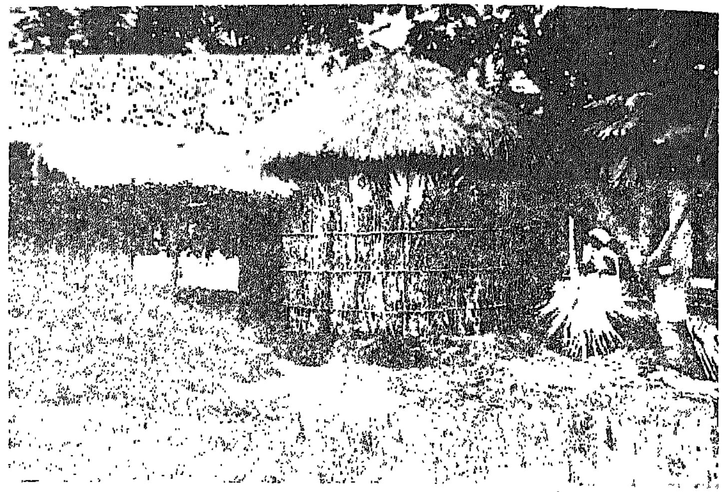
सुधा का जन्म शहर के सर्वश्रेष्ठ नर्सिंगहोम में हुआ। विशेषज्ञ डॉक्टरों ने उसकी जाँच की, उसे नहला कर साफ मुलायम कपड़ों में लपेट कर उसकी माँ के पास ही एक पालने में लिटा दिया गया। जब भी उसे भूख लगी, उसकी माँ ने उसे दूध पिलाया, दुलारा, प्यार किया और लोरियाँ गुनगुनाते हुए उसे सुला दिया। उसके परिवार तथा पारिवारिक मित्रों ने उसके आगमन का जश्न मनाया।

अनु और सुधा का बचपन भी बहुत ही अलग रहा। अनु ने बहुत कम आयु में ही अपनी देखभाल स्वयं करना सीख लिया। उसे भूख और अभाव की पूरी अनुभूति थी। उसने कूड़े के ढेर से खाने योग्य चीजें बीनना तथा सर्दी की रातों में किसी तरह 'गर्म' रहना सीख लिया था। वह यह भी जान गई कि बरसात में कैसे सिर छिपाना है तो धागों, पत्थरों या तिनकों के खेल रचा कर किस प्रकार अपना मनोरंजन करना है। वह स्कूल नहीं जा पाई, क्योंकि उसके माँ-बाप प्रवासी मजदूर थे जो काम की तलाश में एक शहर से दूसरे में भटकते रहते थे।

अनु को नाचना बेहद पसंद था। जब भी वह संगीत की धुन सुनती, थिरकने लगती। वह बहुत ही सुंदर थी, उसकी भाव भंगिमाएँ भी बहुत अर्थपूर्ण थी। किसी दिन रंगमंच पर अपनी प्रतिभा का प्रदर्शन उसके जीवन की अभिलाषा थी। वह एक महान नृत्यांगना बन सकती थी। किंतु उसे बारह वर्ष की आयु में काम करना शुरू करना पड़ा। उसे अपने माँ-बाप के साथ अमीरों के लिए भवन बनाने के काम से रोजी कमाने के लिए जुट जाना पड़ा, ऐसे मकान बनाने में जिनमें वह स्वयं कभी नहीं रह पाएगी।

सुधा को एक श्रेष्ठ बाल विद्यालय में भेजा गया, जहाँ उसने खेल खेल में ही पढ़ना, लिखना और गिनना सीख लिया। वह नक्षत्रशालाओं, संग्रहालयों, राष्ट्रीय उद्यान आदि के भ्रमण-दर्शन पर भी गई। फिर वह एक बहुत अच्छे स्कूल गई। उसे चित्रकारी से लगाव था तो उसके लिए एक प्रख्यात चित्रकार से प्रशिक्षण की व्यवस्था की गई। उसने आगे चलकर एक ललित कला महाविद्यालय में प्रवेश पाया और आज वह एक प्रख्यात चित्रकार बन चुकी है।

होती। यदि किसी के पास भूमि हो भी तो वह सूखी और बंजर होती है। कितनों को ही दिन में दो बार भोजन भी नहीं मिल पाता। निर्धनतम परिवारों के जीवन का शाश्वत सत्य भूख और भुखमरी होती है। निर्धन बुनियादी साक्षरता तथा कौशल से भी वंचित रह जाते हैं। इसी कारण उनके लिए आर्थिक अवसर अत्यंत सीमित रह जाते हैं। निर्धन श्रमिकों के रोजगार भी निश्चित नहीं होते। समाज के निर्धन वर्गों में कुपोषण बहुत ही गंभीर स्तर तक पहुँचा हुआ होता है। अस्वस्थता, अपंगता और गंभीर बीमारियाँ आदि उन्हें शारीरिक रूप से कमजोर बना देती हैं। वे साहूकारों से उधार लेने को विवश रहते हैं तथा साहूकार जो उनसे ब्याज की ऊँची दरें वसूल करते हैं, उन्हें जीवनपर्यंत ऋण ग्रस्तता से मुक्त नहीं होने देते। निर्धन का जीवन नित्त जोखिम भरा रहता है। नियोक्ताओं से अपनी कानून द्वारा निर्धारित मज़दूरी बढ़ाने के बारे में बात नहीं कर पाते और इनका शोषण चलता रहता है। अधिकांश निर्धन परिवारों को बिजली उपलब्ध नहीं होती। वे प्रायः लकड़ी और उपलों की आग पर ही अपना खाना पकाते हैं। निर्धन वर्गों में से अधिकांश को पीने का स्वच्छ सुरक्षित पानी भी सुलभ नहीं होता। लाभपूर्ण रोजगार में भागीदारी में स्त्री-पुरुष के बीच बहुत बड़ी असमानता भी साफ दिखाई देती है। शिक्षा सुविधाओं की उपलब्धता और परिवार की निर्णय प्रक्रिया में भागीदारी भी इसी असमानता से ग्रस्त रहती है। निर्धन महिलाओं को मातृत्व काल में भी कम देखभाल ही प्राप्त हो पाता है। उनके बच्चों के स्वस्थ जन्म लेने और फिर दीर्घ जीवन धारण की संभावनाएँ भी क्षीण होती हैं।

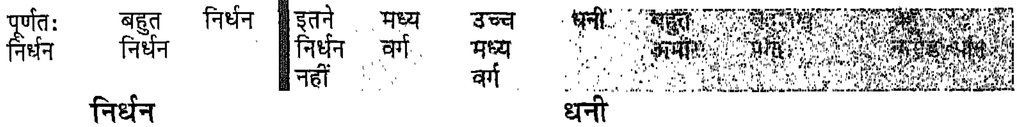


चित्र 4.2 *अनेक निर्धन बच्चे घरों, झोंपड़ियों में रहते हैं*



चित्र 4.3 *अधिकांश कृषि मजदूर निर्धन होते हैं*

चार्ट 4.1: निर्धनता रेखा



विद्वान निर्धनों की पहचान उनके व्यवसाय तथा संपत्ति स्वामित्व के आधार पर करते हैं। उनका कहना है कि ग्रामीण निर्धन प्रायः भूमिहीन कृषि श्रमिक होते हैं या फिर वे बहुत ही छोटी जोतों के स्वामी किसान होते हैं। वे ऐसे भूमिहीन मजदूर भी हो सकते हैं, जो विभिन्न प्रकार के गैर-कृषि कार्य करते हैं या किसी और की जमीन पर आसामी काश्तकार की भाँति खेती करते हैं। शहरी क्षेत्रों में अधिकांश निर्धन वही हैं जो गाँवों से वैकल्पिक रोजगार और निर्वाह की तलाश में शहर चले आए हैं। ये लोग तरह-तरह के अनियमित काम करते हैं। यही स्वनियोजित लोग सड़कों के किनारे, गलियों में घूम-घूम कर कुछ सामान बेचते दिखाई देते हैं।

4.3 निर्धनों की पहचान कैसे होती है?

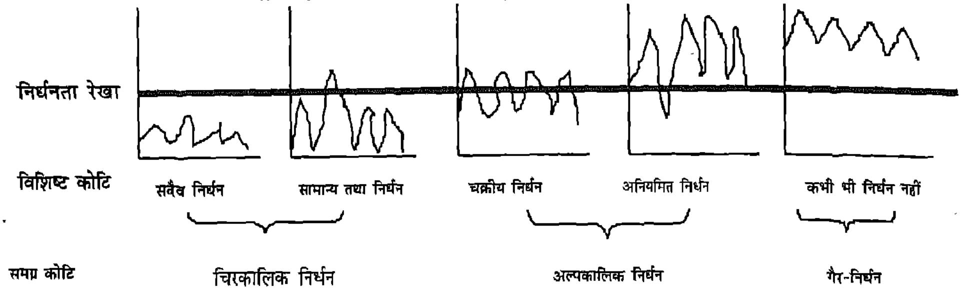
यदि भारत की निर्धनता की समस्या का समाधान करना है, तो उसे निर्धनता के कारणों का उन्मूलन करने के लिए व्यावहारिक और धारणीय रण-नीतियाँ बनानी होंगी तथा निर्धन जन-समुदाय को उनकी दारुण दशा से उबारने के लिए उपयुक्त योजनाएँ बनानी होंगी। किंतु इस प्रकार की योजनाओं के क्रियान्वयन के लिए सरकार को निर्धनों की पहचान करने योग्य होना होगा। इसके लिए निर्धनता और उसके कारकों को मापने का एक उपयुक्त स्केल बनाना होगा और उसके लिए कसौटियों व विधियों का बहुत ध्यानपूर्वक चयन करना होगा।

स्वतंत्र पूर्व भारत में सबसे पहले दादा भाई नौरोजी ने निर्धनता-रेखा की अवधारणा पर विचार किया था। उन्होंने जेल में कैदियों को दिए जा रहे भोजन का बाज़ार कीमतों पर मूल्यांकन कर 'जेल की निर्वाह लागत' का आकलन किया था, किंतु बंदीगृहों में तो प्रायः वयस्क व्यक्ति ही होते हैं जबकि वास्तविक समाज में बच्चे भी सम्मिलित हैं। अतः इस जेल निर्वाह लागत में कुछ परिवर्तन कर उन्होंने निर्धनता रेखा तक पहुँचने का प्रयास किया। इसके लिए उन्होंने यह माना कि कुल जनसंख्या में एक तिहाई संख्या बच्चों की होती है, जिनमें से आधे बच्चों

बॉक्स 4.2 निर्धनता क्या है

दो अध्येताओं, शाहीन रफी खान और डैमियन किल्लेन ने निर्धनता की स्थिति को बहुत ही संक्षेप में व्यक्त किया है: निर्धनता भूख है। निर्धनता बीमार होना है और डॉक्टर से न दिखा पाने की विवशता है। निर्धनता स्कूल में न जा पाने और निरक्षर रह जाने का नाम है। निर्धनता बेरोजगारी है। निर्धनता भविष्य के प्रति भय है, दिन में एक बार भोजन पाना है। निर्धनता अपने बच्चे को उस बीमारी से मरते देखने को कहते हैं जो अस्वच्छ पानी पीने से होती है। निर्धनता शक्ति, प्रतिनिधित्व हीनता और स्वतंत्रता की हीनता का नाम है। आपके क्या विचार हैं?

चार्ट 4.2 चिरकालिक निर्धन, अल्पकालिक निर्धन, गैर-निर्धन



का उपभोग बहुत कम होता है तथा शेष आधे का भोजन भी वयस्कों से आधा ही रहता है। इस प्रकार उन्होंने 3/4 के सूत्र की रचना की। अर्थात्: 1/6 × 0 + 1/6 × 1/2 + 2/3 × 1 = 1/12 + 2/3 = 1+8/12 = 9/12 = 3/4। जनसंख्या के इन तीन खंडों के उपभोग के भारित औसत को औसत निर्धनता रेखा का मान माना गया था। यह जेल के वयस्कों की निर्वाह लागत का 3/4 अंश था।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद से भारत में निर्धन जनानुपात के आकलन के कई प्रयास हुए हैं। योजना आयोग द्वारा इस कार्य के लिए 1962 में एक अध्ययन दल का गठन किया गया था। वर्ष 1979 में एक अन्य दल 'प्रभावी उपभोग माँग और न्यूनतम आवश्यकता अनुमानन कार्य-बल' गठित हुआ। एक 'विशेषज्ञ दल' का गठन इसी कार्य के लिए 1989 में भी किया गया। इन संगठित प्रयासों के अतिरिक्त अनेक अर्थशास्त्रियों ने व्यक्तिगत रूप से भी ऐसी ही प्रक्रियाओं के प्रयास किए। निर्धनता को परिभाषित करने की दृष्टि से हम जनसंख्या को दो वर्गों में बाँट सकते हैं, निर्धन तथा गैर-निर्धन और निर्धनता रेखा इन दोनों वर्गों को अलग करती है। यद्यपि निर्धन कई प्रकार के होते हैं: पूर्णतः निर्धन, बहुत निर्धन और निर्धन। इसी प्रकार गैर-निर्धन वर्ग में भी कई उपवर्ग है: मध्यवर्ग, उच्च मध्यवर्ग, धनी, बहुत धनी और पूर्णतः धनी। इन सभी उप वर्गों को एक निरंतर सरल रेखा पर बहुत निर्धन से लेकर पूर्णतः धनी के रूप में कल्पना करें जिसे निर्धनता रेखा निर्धन और गैर-निर्धन के बीच विभाजित करती है।

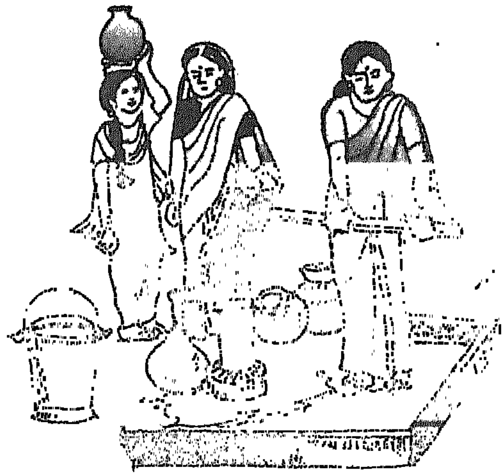
निर्धनता का वर्गीकरण: निर्धनता के वर्गीकरण की भी कई विधियाँ हैं। एक विधि के अनुसार तो हम **सदा निर्धन** और **सामान्यतः निर्धन** व्यक्तियों में भी भेद कर सकते हैं। इस सामान्यतः निर्धन वर्ग में वे व्यक्ति आते हैं जिनके पास कभी-कभी कुछ धन भी आ जाता है (उदाहरणार्थ, अनियत मजदूर)। इन दोनों वर्गों को मिलाकर हम **चिरकालिक निर्धन** वर्ग का नाम देते हैं। एक ऐसा वर्ग भी है जो **निरंतर निर्धन** और गैर-निर्धन वर्गों के बीच झूलता रहता है (उदाहरणार्थ, छोटे किसान और मौसमी मजदूर) तथा **यदाकदा निर्धन** जो अधिकांश समय धनी रहते हैं परंतु कभी-कभी उनका भाग्य साथ नहीं देता। इन्हें **अल्पकालिक निर्धन** कहते हैं। इसके अतिरिक्त वे लोग जो कभी

निर्धन नहीं होते उन्हें **गैर-निर्धन** कहते हैं (देखें चार्ट 4.3)।

निर्धनता रेखा: आइए अब इसका परीक्षण करें कि निर्धनता-रेखा कैसे निर्धारित होती है। निर्धनता मापन की कई विधियाँ होती हैं। एक विधि तो न्यूनतम कैलोरी उपभोग के मौद्रिक मान (प्रति व्यक्ति व्यय) का निर्धारण करने की विधि है। इसके अनुसार ग्रामीण व्यक्ति को 2400 तथा शहरी व्यक्ति को 2100 कैलोरी का न्यूनतम उपभोग मिलना चाहिए। वर्ष 1999–2000 में निर्धनता-रेखा को ग्रामीण क्षेत्रों में 328रु प्रतिव्यक्ति प्रति माह उपभोग के रूप में तथा शहरी क्षेत्रों में 454रु प्रतिव्यक्ति प्रतिमाह के रूप में परिभाषित किया गया।

यद्यपि हमारी सरकार निर्धन परिवारों की पहचान के लिए मासिक प्रतिव्यक्ति उपभोग व्यय (MPCE) को परिवार की आय के द्योतक के रूप में प्रयोग करती है, पर क्या आप इस विधि को देश में निर्धन परिवारों की पहचान का उपयुक्त तरीका मानेंगे?

अनेक विद्वानों का मत है कि इस तंत्र में सबसे बड़ी समस्या यह है कि यह सभी निर्धनों को एक वर्ग में मान लेता है और बहुत निर्धनों और अन्य निर्धनों में कोई अंतर नहीं करता। यह विधि मुख्यत: भोजन और कुछ चुनी हुई वस्तुओं पर उपभोग व्यय को आय का प्रतीक मानती है, पर अर्थशास्त्रियों को इस बात पर भी आपत्ति है। इससे सरकार की सहायता के पात्र व्यक्तियों के समूचे समूह का निर्धारण तो हो जाता है, पर इसकी पहचान नहीं हो पाती कि सबसे अधिक सहायता की आवश्यकता किन निर्धनों को है।



चित्र 4.3 *स्वच्छ पेय जल और अव जल नि:सरण व्यवस्था तो सभी के लिए आवश्यक है*

आय और संपत्ति स्वामित्व के अतिरिक्त भी कई और कारक हैं जो निर्धनता से संबंधित माने जाते हैं, जैसे बुनियादी शिक्षा, स्वास्थ्य सेवा, पेय जल और स्वच्छता आदि की सुलभता। निर्धनता रेखा का निर्धारण करने वाला तंत्र इन सामाजिक कारकों पर भी ध्यान नहीं देता जो निर्धनता को जन्म देकर इसे निरंतर बनाए रखते हैं जैसे, निरक्षता, अस्वस्थता, संसाधनों की अनुपलब्धता, भेदभाव या नागरिक और राजनीतिक स्वतंत्रताओं का अभाव। निर्धनता निवारण योजनाओं का ध्येय तो मानवीय जीवन में सर्वांगीण सुधार होना चाहिए। उसमें ये बातें अवश्य होनी चाहिए कि मनुष्य क्या बन सकता है और क्या कर सकता है, अर्थात् अधिक स्वस्थ, सुपोषित तथा ज्ञान संपन्न हो सामाजिक जीवन में भागीदारी कर सके। इस दृष्टि से विकास का अर्थ होगा व्यक्ति के कर्म पथ की बाधाओं का निवारण– जैसे उसे निरक्षरता, अस्वस्थता, संसाधनहीनता

इन्हें कीजिए

➤ खंड 4.2 तथा 4.3 में आपने पढ़ा है कि निर्धनों की पहचान केवल उनकी कम आय और व्यय ही नहीं है। इसके और कई लक्षण भी हैं: जैसे, भूमि, निवास, शिक्षा, स्वास्थ्य सेवाएँ, स्वच्छता आदि के अभाव। साथ ही भेदभावपूर्ण व्यवहार आदि भी निर्धनता का ही एक लक्षण है। चर्चा करें कि ऐसी वैकल्पिक निर्धनता-रेखा, जो इन सभी कारकों को समाहित कर रही हो, की रचना कैसे की जा सकेगी।

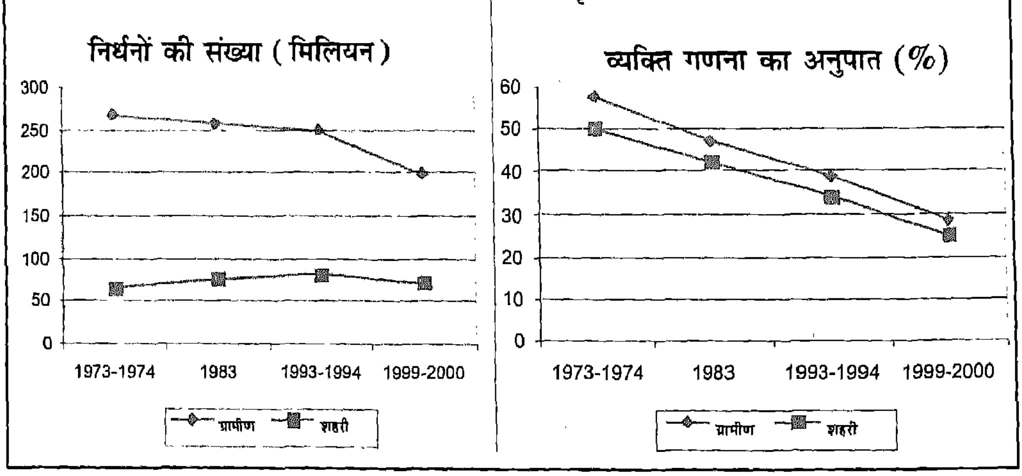
➤ निर्धनता-रेखा की परिभाषा के आधार पर यह जानने का प्रयास करें कि आपके आस-पास के क्षेत्र में घरेलू नौकर, धोबी, अखबार वाले आदि निर्धनता रेखा से ऊपर हैं या नहीं।

नागरिक और राजनीतिक स्वतंत्रता के अभाव आदि से मुक्ति दिलाना।

यद्यपि हमारी सरकार का दावा है कि संवृद्धि की उच्च दर, कृषि उत्पादन में वृद्धि, ग्रामीण क्षेत्रों में रोज़गार और 1990 के दशक के आर्थिक सुधार कार्यक्रमों ने निर्धनता के स्तर में काफी कमी की है, किंतु अनेक अर्थशास्त्रियों को सरकार के इस दावे पर संदेह है। उनका मत है कि जिस प्रकार आँकड़े एकत्र किए जाते हैं, अर्थात् जिन वस्तुओं को उपभोग समूह (टोकरी) में शामिल किया जाता है, निर्धनता रेखा के आकलन की कार्यविधि और निर्धनों की संख्या में भी (भारत में निर्धनों की संख्या कम करके दिखाने के लिए) हेराफेरी की जाती है।

निर्धनता के आकलन की सरकारी विधियों की सीमाओं के कारण अनेक विद्वानों ने वैकल्पिक विधियों का प्रयोग करने के प्रयास किए हैं। इनमें से नॉबेल पुरस्कार से सम्मानित अर्मत्य सेन ने एक सूचकांक का विकास किया जिसे 'सेन-सूचकांक' का नाम दिया जाता है। इसके अतिरिक्त 'निर्धनता अंतराल सूचकांक' और 'वर्गित निर्धनता अंतराल' उपकरणों का भी

चार्ट 4.3 भारत में निर्धनता की प्रवृत्तियाँ 1973-2000



प्रयोग किया गया है। इनके विषय में आप आगे की कक्षाओं में विस्तार से जान पाएँगे।

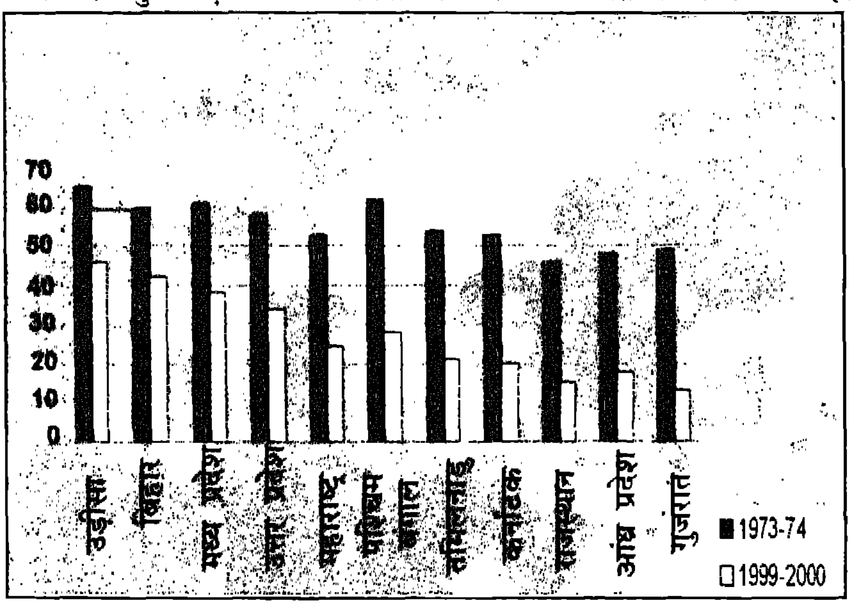
4.4 भारत में निर्धनों की संख्या

जब निर्धनों की संख्या का अनुमान निर्धनता-रेखा से नीचे के जनानुपात द्वारा किया जाता है तो उसे हम 'व्यक्ति गणना अनुपात' विधि कहते हैं।

आप संभवतः, भारत में बसे निर्धनों की कुल संख्या जानना चाहेंगे। वे कहाँ रहते हैं और क्या पिछले कुछ वर्षों में उनकी संख्या या अनुपात में कमी आई है या नहीं। जब इस प्रकार की तुलना सामान्यतः अनुपातों और प्रतिशतों के रूप में करते हैं, तब हमें व्यक्तियों की निर्धनता के विभिन्न स्तरों और विभिन्न प्रांतों में समय-समय पर उनके प्रसार की जानकारी प्राप्त होती है।

निर्धनता विषयक आधिकारिक आँकड़े योजना आयोग उपलब्ध कराता है। ये आँकड़े राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण संगठन द्वारा उपभोग व्यय के आधार पर आकलित किए जाते हैं। चार्ट 4.4 में 1973-2000 की अवधि में भारत में निर्धनों की संख्या तथा जनसंख्या में उनका अनुपात दर्शाया गया है। वर्ष 1973-74 में देश में 321 मिलियन से अधिक व्यक्ति निर्धनता की रेखा से नीचे थे। यह संख्या कम होकर 1999-2000 में 260 मिलियन रह गई। आनुपातिक दृष्टि से 1973-74 में कुल जनसंख्या का 55 प्रतिशत जनसंख्या निर्धनता-रेखा से नीचे था। यह अनुपात 1999-2000 में गिरकर 26 प्रतिशत रह गया है। 1973-74 में 80 प्रतिशत से अधिक निर्धन ग्रामीण क्षेत्रों में बसे थे, जो 1999-2000 में

चार्ट 4.4 कुछ बड़े राज्यों में निर्धनता रेखा से नीचे जनसंख्या 1973-2000 (%)



नोटः उत्तर प्रदेश के साथ उत्तरांचल, बिहार के साथ झारखंड तथा मध्य प्रदेश के साथ छत्तीसगढ़ के आँकड़े भी शामिल हैं।

75 प्रतिशत हो गये। इसका अर्थ है कि तीन-चौथाई से अधिक निर्धन गाँवों में ही बसे हैं। ग्रामीण क्षेत्रों की निर्धनता अब शहरों की ओर भी आ गई है।

1990 के दशक में जहाँ ग्रामीण क्षेत्रों में निर्धनों की निरपेक्ष संख्या में कमी आई है, वहीं शहरी क्षेत्रों में उनकी संख्या में कुछ वृद्धि दिखाई पड़ी है। वैसे शहरी और ग्रामीण, दोनों ही क्षेत्रों में निर्धनों का संख्या-अनुपात निरंतर कम हुआ है। आप देख सकते हैं कि 1973-2000 की अवधि में निर्धनों की संख्या व अनुपात दोनों कम हुए हैं, किंतु इन दोनों परिमाणों की गिरावट का स्वरूप बहुत उत्साहवर्धक नहीं रहा है। देश में निर्धनता की निरपेक्ष संख्या की तुलना में यह अनुपात बहुत धीमी गति से नीचे आ रहा है। यहाँ आप यह भी देखेंगे कि जहाँ शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों में निर्धनता की संख्याओं का अंतर 1990 के दशक के आरंभ तक बिल्कुल कम नहीं हुआ, वहीं अनुपात में अंतर 1999–2000 तक निरंतर पूर्ववत् बना रहा।

चार्ट 4.4 में निर्धनता की राज्य स्तरीय प्रवृत्तियाँ दिखाई गई हैं। इससे स्पष्ट होता है कि भारत के 70 प्रतिशत निर्धन केवल पाँच राज्यों में सीमित हैं। ये राज्य हैं, उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्य प्रदेश, पश्चिम बंगाल और उड़ीसा। यह भी ध्यान देने योग्य है कि 1973-74 में तो इन राज्यों की आधी से अधिक आबादी निर्धनता-रेखा से नीचे ही थी। पर 1999-2000 में केवल बिहार और उड़ीसा ही उस स्तर के नीचे रह गए थे। यद्यपि इन राज्यों में भी निर्धनता का अनुपात कम हुआ है, पर अन्य राज्यों की अपेक्षा उनकी सफलता न के बराबर है। यदि गुजरात को देखें तो वहां 1973–2000 के बीच निर्धनता-रेखा से नीचे का अनुपात 48 प्रतिशत से कम होकर 15 प्रतिशत रह गया है। इसी अवधि (1973-2000) में पश्चिम बंगाल की सफलता भी महत्त्वपूर्ण रही है- यहाँ भी इस अनुपात को दो तिहाई कम करने अर्थात् 63 से घटाकर 27 प्रतिशत करने में सफलता मिली है।

4.5 निर्धनता क्यों होती है?

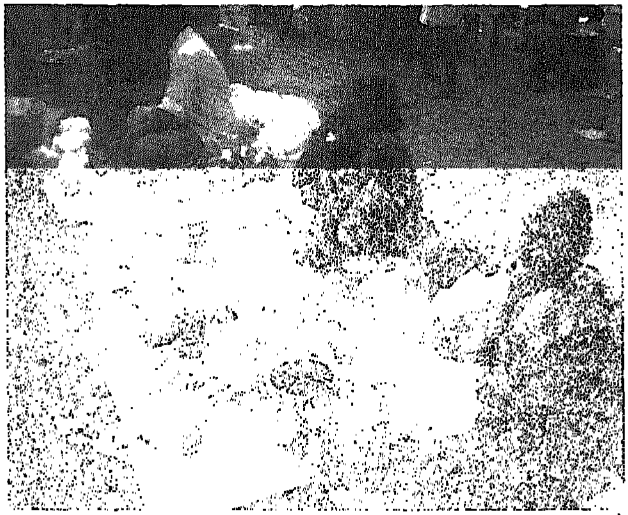
निर्धनता की व्याख्या व्यक्तिगत परिस्थितियों तथा निर्धन व्यक्तियों की कुछ विशेषताओं के आधार पर हो सकती है। कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं: (क) शिक्षा और योग्यता के निम्न स्तर (ख) अयोग्यता और अस्वस्थता (ग) भेदभाव। इनके कारण इस प्रकार हो सकते हैं: (क) सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक असमानता (ख) सामाजिक बहिष्कार (ग) बेरोजगारी (घ) ऋणग्रस्तता और (ङ) धन के वितरण की असमानता।

समग्र निर्धनता वैयक्तिक निर्धनता का योग ही है। निर्धनता की व्याख्या अर्थव्यवस्था में व्याप्त इन समस्याओं के कारण भी हो सकती है: (क) निम्न पूँजी निर्माण (ख) आधारिक संरचनाओं का अभाव (ग) माँग का अभाव (घ) जनसंख्या का दबाव और (ङ) सामाजिक/कल्याण व्यवस्था का अभाव।

आपने पहले अध्याय में भारत में ब्रिटिश शासन के बारे में पढ़ा। वैसे तो उस शासन व्यवस्था के प्रभावों के विषय में अभी भी विवाद चल रहा है-पर भारत की अर्थव्यवस्था और जन सामान्य के जीवन स्तर पर उसके बहुत नकारात्मक प्रभाव पड़े। अंग्रेजी राज के समय बड़े स्तर पर वि-औद्योगीकरण हुआ था।

इंग्लैंड में लंकाशायर विनिर्मित सूती कपड़े के आयात ने काफी मात्रा में स्थानीय उत्पादन को विस्थापित कर दिया और भारत कपड़े के स्थान पर सूती धागों का निर्यातक होकर रह गया।

अंग्रेज़ी राज की अवधि के दौरान 70 प्रतिशत से अधिक भारतीय कृषि पर आश्रित थे, अतः उस क्षेत्रक में जीवन-निर्वाह पर, अन्य बातों की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ा। अंग्रेजी नीतियों ने ग्रामीण करों के भार को बहुत अधिक कर दिया था जिससे व्यापारी और महाजनों को बड़े भू-स्वामी बनने में सहायता मिली। ब्रिटिश राज में भारत ने खाद्यान्नों का निर्यात आरंभ कर दिया, जिसके परिणामस्वरूप 1875 से 1900 की अवधि के अकालों के दौरान 260 लाख व्यक्तियों की मृत्यु हो गई।



चित्र 4.4 *स्वरोजगार की गुणवत्ता का निम्न स्तर निर्धनता का पोषक है*

भारत में अंग्रेज़ी राज का मुख्य उद्देश्य तो यही था कि उन्हें भारत में अपने निर्यात का बाज़ार मिल जाए, भारत अंग्रेज़ों के ऋणों के भुगतान करता रहे तथा अंग्रेज़ी साम्राज्यवादी सेनाओं के लिए मानव-शक्ति प्रदान करता रहे।

ब्रिटिशराज ने करोड़ों भारतीयों को निर्धन बना दिया। हमारे प्राकृतिक संसाधनों को लूटा गया, उद्योगों को सस्ते दामों पर अपना उत्पादन अंग्रेज़ों के हाथों बेचना पड़ा और हमारे खाद्यान्नों का भी निर्यात कर दिया गया। कितने ही लोग अकाल और भूख के के कारण मर गए। 1857-58 में स्थानीय नेताओं को हटाने, किसानों पर भारी कर थोपने तथा और अन्य आक्रोशों ने सिपाहियों द्वारा अंग्रेज़ी शासन के खिलाफ विद्रोह का रूप ले लिया।

आज भी कृषि ही ग्रामीण जनता की जीविका का मुख्य आधार है तथा भूमि ही उनकी प्राथमिक परिसंपत्ति है, भू-स्वामित्व को ही भौतिक संपन्नता का प्रमुख निर्धारक माना जाता है और कहा जाता है कि जिसके पास जमीन है, वही जीवन स्तर सुधारने में समर्थ हो सकता है।

स्वतंत्रता के बाद से सरकार ने भूमि के पुनर्वितरण के प्रयास किए हैं। जिनके पास अधिक भूमि थी, उनसे भूमि ले कर उसे भूमिहीनों के बीच बाँटा गया जो अपनी ही भूमि पर मजदूरों के रूप में कार्य करते थे। किंतु इन प्रयासों को सीमित सफलता ही मिल पायी है, क्योंकि अधिकांश किसानों के पास जो खेत थे वे बहुत छोटे थे। उनके पास भूमि को उपजाऊ बनाने के लिए धन और योग्यता का अभाव था और जोतों का आकार व्यावहारिक रूप से बहुत छोटा था। ग्रामीण भारत में बसे निर्धन अधिकांशतः



चित्र 4.5 *उच्च गुणवत्ता युक्त रोजगार अभी भी निर्धनों के लिए एक स्वप्न बना हुआ है*

बहुत छोटे किसान ही हैं। उनकी भूमि आमतौर पर कम उपजाऊ और वर्षा पर निर्भर होती है। उनकी जीविका निर्वाह-फसलों पर और कभी-कभी पशुधन पर निर्भर होती है। जनसंख्या की तीव्र वृद्धि और रोजगार के वैकल्पिक स्रोतों के अभाव में कृषि के लिए प्रति व्यक्ति भूमि की उपलब्धता धीरे-धीरे घट रही है, जिससे जोतों का विखंडन हो रहा है। इन छोटी-छोटी जोतों से प्राप्त आय से परिवार की मूलभूत आवश्यकताएँ भी पूरी नहीं हो पाती। आपने सुना होगा कि कृषि और अन्य घरेलू आवश्यकताओं हेतु लिए गए ऋणों का भुगतान न कर पाने के कारण किसान आत्महत्या कर रहे हैं क्योंकि उनकी फसलें सूखे या प्राकृतिक आपदाओं के कारण नष्ट हो गई हैं (देखें बॉक्स 4.3)।

अनुसूचित जातियाँ और अनुसूचित जनजातियाँ उभरते हुए रोजगार के अवसरों में इसलिए भागीदारी नहीं कर पा रही हैं क्योंकि उनके पास इसके लिए आवश्यक ज्ञान और कौशल की कमी है। भारत में अधिकांश शहरी निर्धन वे हैं जिन्होंने रोजगार और जीविकोपार्जन की तलाश में शहरी क्षेत्रों में प्रवसन किया है। औद्योगीकरण इन सबों को काम दे पाने में विफल रहा है। अधिकांश शहरी निर्धन या तो

इन्हें कीजिए

- बाज़ारों, धर्मस्थलों और ऐतिहासिक स्थानों पर आपने प्रायः महिलाओं को बच्चे उठाए भीख माँगते देखा होगा। कभी उनसे बात करें। यह जानने का प्रयास करें कि वे यह काम क्यों कर रही हैं। वे अपने परिवार के साथ कहाँ रहती हैं, दिन में कितनी बार उन्हें खाना मिल पाता है, उनकी भौतिक संपत्ति क्या है और वे नौकरी क्यों नहीं कर पातीं। इस तरह एकत्र जानकारी पर कक्षा में चर्चा करें।
- आपको ऊपर बताए गए कई परिवार अपने घर के आस-पास मिल जाएँगे। दो या तीन ऐसे परिवारों को चुनकर उनके व्यवसाय, साक्षरता स्तर, परिसंपत्ति धारण और अन्य सूचनाएँ संग्रहित करें। इस पर भी कक्षा में चर्चा करें।
- ग्रामीण और शहरी लोगों के कार्यों की अलग-अलग सूचियाँ बनाइए। आप गैर-निर्धन वर्गों के सदस्यों की गतिविधियों की भी सूचियाँ बना सकते हैं। अपनी कक्षा में उन सूचियों की तुलना कर यह जानने का प्रयास करें कि निर्धन लोग गैर-निर्धन लोगों द्वारा किए जाने वाले कार्य क्यों नहीं कर पाते?

बॉक्स 4.3 कपास किसानों की आपदा

अनेक छोटे भूस्वामी किसान परिवार और बुनकर वैश्वीकरण से जुड़े आहतों के कारण ऋणपाश में फँसते जा रहे हैं। भारत के अपेक्षाकृत प्रगतिशील प्रांतों में भी आय उपार्जन के अवसरों का प्रायः अभाव ही है। यदि परिवार अपनी परिसंपत्ति बेचने, उधार लेने या अन्य रोजगारों के सहारे आय सृजन करने में सफल रहे तो कदाचित उनकी समस्याएँ भी अस्थाई सिद्ध हो जाएँ। किंतु यदि किसी के पास बेचने को कुछ नहीं बचा हो, कहीं उधार पा सकने की संभावना भी नहीं हो – या फिर कोई बहुत ही उच्च दर के ब्याज पर उधार लेकर ऋण पाश में फँस चुका हो, तो ये परिवार को निर्धनता की रेखा से नीचे धकेल देते हैं। इसी संकट का गंभीरतम आयाम किसानों की बड़े स्तर पर आत्महत्याएँ हैं। केवल आंध्रप्रदेश में ही 3000 से अधिक किसान प्राण दे चुके हैं और अभी यह संख्या बढ़ रही है। दिसंबर 2005 में ही महाराष्ट्र सरकार ने स्वीकार किया कि 2001 से उस प्रांत में भी 1000 से अधिक किसानों ने अपने जीवन का अंत किया है।



शांताबाई जो नीलकांथ सीताराम खोके की पत्नी हैं, जिन्होंने, यामाता महाराष्ट्र में आत्महत्या की थी।

भारत विश्व का सबसे बड़ा कपास उत्पादक क्षेत्र है, जहाँ वर्ष 2002-2003 में 8300 हेक्टेयर भूमि पर खेती होती थी। किंतु यहाँ कपास की पैदावार मात्र 300 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर है। इस नाते भारत विश्व के कपास उत्पादकों की गणना में तीसरे क्रम पर आता है। उच्च उत्पादन लागतें, निम्न एवं अस्थिर उत्पादकता, विश्व कीमतों में गिरावट, संयुक्त राज्य अमेरिका तथा अन्य देशों द्वारा अपने कपास उत्पादकों को दी जाने वाली सहायिकी के कारण विश्व उत्पादन में गिरावट, वैश्वीकरण के कारण घरेलू बाजार के खुलने के कारण आंध्र प्रदेश और महाराष्ट्र के कपास उत्पादक किसानों को कृषि के क्षेत्र में निराशा और आत्महत्या की विवशता की ओर ले गई। यहाँ प्रश्न लाभ कमाने या उच्च प्रतिफल का नहीं है। ये तो कृषि पर आधारित लाखों छोटे और सीमांत किसानों के लिए आजीविका कमाने और जीवित रह पाने की समस्या बन गई है।

विद्वानों ने किसानों की आत्महत्या के लिए विवश करने वाले अनेक कारकों की व्याख्या की है। ये कारक हैं (क) परंपरागत कृषि से हटकर उच्च उत्पादकता व्यावसायिक खेती की ओर उस समय अग्रसर होना जब कि पर्याप्त तकनीकी सुविधाओं का नितांत अभाव है और सरकार भी अपनी तकनीक प्रसार योजनाओं के माध्यम से किसानों की सहायता के कार्यक्रमों को समाप्त कर चुकी है, (ख) पिछले दो दशकों में कृषि में सार्वजनिक निवेश में निरंतर गिरावट, (ग) अंतर्राष्ट्रीय कंपनियों के बीजों में प्रस्फुटन की निम्न दर और निजी दलालों द्वारा नकली बीजों व कीटानाशकों की पूर्ति, (घ) कीट संक्रमण, अकाल और फसल का विनाश, (ङ) महाजनों से 36 से लेकर 120 प्रतिशत ब्याज की ऊँची दरों पर लिए गए ऋण, (च) सस्ते आयात के कारण कीमत और लाभों में गिरावट तथा (छ) सिंचाई की सुविधाओं का अभाव जिसने किसानों को बहुत गहरे से पानी निकालने वाले पंप लगाने के लिए (जो असफल रहा) अति उच्च ब्याज पर उधार लेने को विवश किया है।

स्रोतः *ए. के. मेहता, सौरभ घोष, 'रितु एलावड़ी के सहयोग से किए गए अध्ययन' वैश्वीकरण, आजीविका की हानि और निर्धनता के पाश में फँसना; ऑल्टरनेटिव इक्नॉमिक सर्वे, भारत 2004-05, ऑल्टरनेटिव सर्वे ग्रुप, दानिश बुक्स, दिल्ली तथा पी साईनाथ; स्वैलींग रजिस्टर ऑफ डेथ्स, द हिन्दू, 29 दिसंबर, 2005।*

बेरोजगार हैं या अनियत मजदूर हैं, जिन्हें कभी-कभी रोजगार मिलता है। ये अनियत मजदूर समाज के बहुत ही दयनीय सदस्य हैं क्योंकि इनके पास रोजगार सुरक्षा, परिसंपत्तियाँ, वांछित कार्य कौशल, पर्याप्त अवसर तथा निर्वाह के लिए अधिशेष नहीं होते हैं।

अत: निर्धनता का संबंध व्यक्ति के रोजगार के स्वरूप से भी रहता है। बेरोजगारी, अल्परोजगार, कभी-कभी काम मिलना आदि। शहरी व ग्रामीण मजदूरों को ऋण लेने को विवश कर देते हैं उससे उनकी निर्धनता और बढ़ जाती है। ऋण-ग्रस्तता निर्धनता का एक महत्वपूर्ण कारक है।

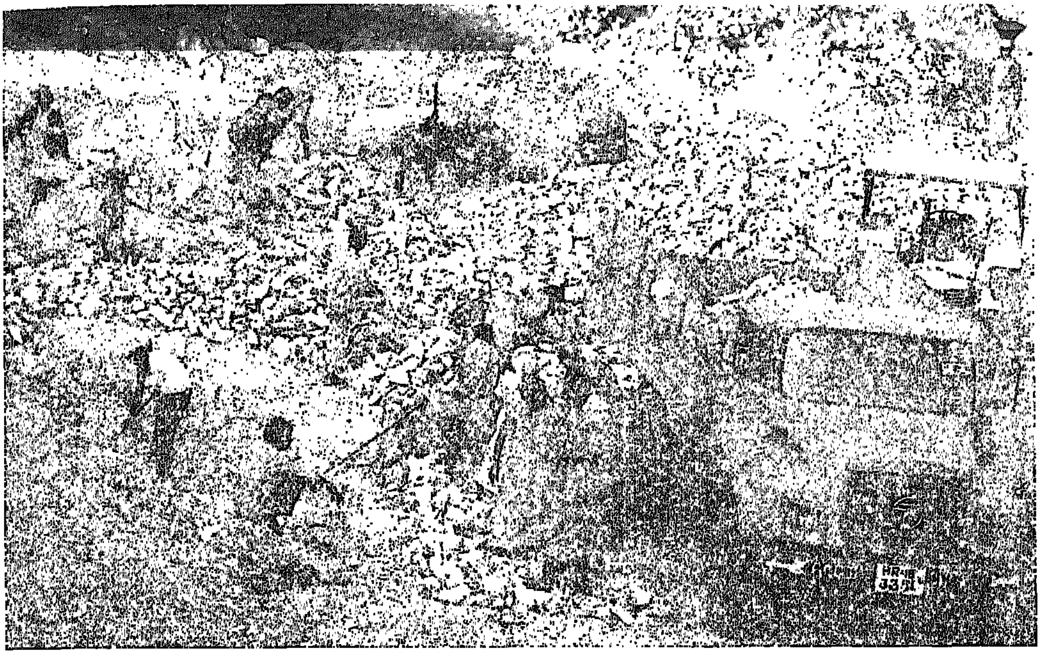
खाद्य पदार्थों और आवश्यक वस्तुओं के दाम विलासिता की वस्तुओं से कहीं अधिक तेजी से बढ़ रहे हैं। इससे भी निम्न आय वर्गों की कठिनाइयाँ और अभाव और बढ़ जाते हैं। आय और परिसंपत्तियों के वितरण की विषमताएँ भी निर्धनता की समस्या को बनाए रखने में अपना योगदान दे रही हैं।

इन सभी कारकों ने कुल मिलाकर समाज को दो वर्गों में विभाजित कर दिया है: वे जो उत्पादक संसाधनों के स्वामी हैं और बहुत अच्छी आय कमाते हैं तथा वे जिनके पास जीवित रहने के लिए केवल अपना श्रम है। भारत में निर्धन-धनी के बीच की खाई निरंतर विस्तृत होती जा रही है। निर्धनता देश के समक्ष एक ऐसी बहुआयामी चुनौती है, जिसका युद्ध स्तर पर सामना करने की आवश्यकता है।

4.6 निर्धनता निवारण के लिए नीतियाँ और कार्यक्रम

भारतीय संविधान और पंचवर्षीय योजनाओं ने सामाजिक न्याय को सरकार की विकास रण-नीतियों का प्राथमिक उद्देश्य माना है। पहली पंचवर्षीय योजना (1951–56) के अनुसार वर्तमान परिस्थितियों में आर्थिक और सामाजिक परिवर्तन की अंत: प्रेरणा का उदय तो निर्धनता और आय, संपत्ति तथा अवसरों की असमानताओं से होता है। दूसरी योजना (1956-61) में भी कहा गया है, ''आर्थिक विकास के अधिकाधिक लाभ समाज के अपेक्षाकृत कम भाग्यशाली वर्गों तक पहुँचने चाहिए''। प्राय: सभी नीति विषयक दस्तावेजों में निर्धनता निवारण और इस दिशा में सरकार द्वारा अपनाई जाने वाली रण-नीतियों की चर्चा हुई है।

सरकार ने निर्धनता निवारण के लिए त्रि-आयामी नीति अपनाई। पहली संवृद्धि आधारित रण-नीति है। यह इस आशा पर आधारित है कि आर्थिक संवृद्धि के (अर्थात् सकल घरेलू उत्पाद और प्रतिव्यक्ति आय में तीव्र वृद्धि के) प्रभाव समाज के सभी वर्गों तक पहुँच जाएँगे – ये समाज के निर्धनतम वर्गों तक भी धीरे-धीरे पहुँच पायेंगे। 1950 से 1960 के दशक के पूर्वार्द्ध में हमारी योजनाओं का मुख्य उद्देश्य यही था। यह माना जा रहा था कि तीव्र दर से औद्योगिक विकास और चुने हुए क्षेत्रों में हरित क्रांति के माध्यम से कृषि का पूर्ण काया-कल्प निश्चय ही समाज के अधिक पिछड़े वर्गों को लाभान्वित



चित्र 4.6 *'काम के बदले अनाज' कार्यक्रम के अंतर्गत रोजगार*

करेगा। आपने अध्याय 2 तथा 3 में पढ़ा था कि संवृद्धि और कृषि तथा उद्योग क्षेत्रों में सर्वांगीण वृद्धि अधिक प्रभावशाली नहीं रही हैं। जनसंख्या वृद्धि के परिणामस्वरूप प्रतिव्यक्ति आय में बहुत कमी हुई इन्हीं कारणों से धनी और निर्धन के बीच की खाई और भी बढ़ गई। हरित क्रांति ने विभिन्न भौगोलिक क्षेत्रों के बीच तथा छोटे और बड़े किसानों के बीच का फासला बहुत बढ़ा दिया है। भूमि के पुनर्वितरण की इच्छा तथा योग्यता का अभाव था। अर्थशास्त्रियों के कथनानुसार आर्थिक संवृद्धि के लाभ निर्धनों तक नहीं पहुँच पाए। निर्धनों के विकास के लिए विकल्पों की खोज के क्रम में नीति निर्धारकों को ऐसा लगा कि वर्धनशील परिसंपत्तियों और कार्य-सृजन के साधनों द्वारा निर्धनों के लिए आय और रोजगार को बढ़ाया जा सकता है। ऐसा विशेष निर्धनता निवारण कार्यक्रमों के माध्यम से ही हो पाएगा। इस दूसरी नीति को तीसरी पंचवर्षीय योजना (1961-66) से आरंभ किया गया और तब से धीरे-धीरे बढ़ाया गया। इसी क्रम में 1970 के दशक में चलाया गया 'काम के बदले अनाज' एक महत्वपूर्ण कार्यक्रम रहा।

आजकल इस दिशा में चल रहे कार्यक्रम दसवीं पंच वर्षीय योजना (2002-2007) की विकास दृष्टि पर आधारित हैं। अब स्वरोजगार तथा मजदूरी पर आधारित रोजगार कार्यक्रमों को निर्धनता निवारण का मुख्य माध्यम माना जा रहा है। स्वरोजगार कार्यक्रमों के उदाहरण हैं, ग्रामीण रोजगार सृजन कार्यक्रम (REGP),

प्रधानमंत्री की रोजगार योजना (PMRY) तथा स्वर्णजयंती शहरी रोजगार योजना (SJSRY)। पहले कार्यक्रम का उद्देश्य गाँवों और छोटे कस्बों में स्वरोजगार के अवसरों का सृजन है। इसे खादी ग्रामोद्योग आयोग के माध्यम से क्रियान्वित किया जा रहा है। इसके अंतर्गत छोटे उद्योग लगाने के लिए बैंक ऋणों के माध्यम से वित्तीय सहयोग उपलब्ध कराया जाता है। प्रधानमंत्री रोजगार योजना के अंतर्गत ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में निम्न आय वर्ग परिवारों के शिक्षित बेरोजगार किसी भी प्रकार के उद्यम को शुरू करने के लिए वित्तीय सहायता प्राप्त कर सकते हैं। स्वर्ण जयंती शहरी रोजगार योजना का ध्येय शहरी क्षेत्रों में स्वरोजगार तथा मजदूरी पर रोजगार के अधिक अवसरों का सृजन है।

पहले के स्वरोजगार कार्यक्रमों के अंतर्गत परिवारों और व्यक्तियों को वित्तीय सहायता प्रदान की जाती थी। पर 1990 के दशक से इस नीति में बदलाव आया है। अब इन कार्यक्रमों का लाभ चाहने वालों को स्वयं सहायता समूहों का गठन करने के लिए प्रेरित किया जाता है। प्रारंभ में उन्हें अपनी ही बचतों को एकत्र कर परस्पर उधार देने को प्रोत्साहित किया जाता है। बाद में सरकार बैंकों के माध्यम से उन स्वयं-सहायता समूहों को आंशिक वित्तीय सहायता उपलब्ध कराती है। ये समूह इसका निश्चय करते हैं कि स्वरोजगार कार्यक्रम के लिए किसे ऋण दिया जाय। स्वर्णजयंती ग्राम स्वरोजगार योजना ऐसा ही एक कार्यक्रम है।

ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाले अकुशल निर्धन लोगों के लिए मजदूरी पर रोजगार के सृजन के लिए भी सरकार के पास अनेक कार्यक्रम हैं। इनमें से प्रमुख हैं, राष्ट्रीय काम के बदले अनाज कार्यक्रम तथा संपूर्ण ग्रामीण रोजगार योजना। अगस्त, 2005 में संसद में एक विधेयक पारित कर प्रत्येक ग्रामीण परिवार के एक इच्छुक वयस्क को वर्ष में 100 दिनों तक के लिए अकुशल शारीरिक श्रम कार्य उपलब्ध कराने की गारंटी देने का निर्णय किया गया है। इसे राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम 2005 का नाम दिया गया है। इस अधिनियम के अंतर्गत जो भी निर्धन निर्धारित न्यूनतम मजदूरी पर काम करने को तैयार हो, वह जहाँ यह कार्यक्रम चलाया जा रहा हो, वहाँ रिपोर्ट कर सकता है।

निर्धनता निवारण की दिशा में तीसरा आयाम लोगों को न्यूनतम आधारभूत सुविधाएँ उपलब्ध कराना है। भारत विश्व के उन प्रथम देशों में से एक है जहाँ ऐसा सोचा गया। सस्ता अनाज, शिक्षा, स्वास्थ्य, जल पूर्ति और स्वच्छता आदि सामाजिक उपयोग आवश्यकताओं पर सार्वजनिक व्यय लोगों के जीवन स्तर को सुधार सकता है। इस विधि के अंतर्गत निर्धनों के उपभोग, रोजगार अवसरों का सृजन तथा स्वास्थ्य और शिक्षा में सुधार की संपूर्ति की जायेगी। यह विधि पाँचवीं पंचवर्षीय योजना में अपनाई गई है। उस योजना के दस्तावेज में कहा गया है ''रोजगार के अवसरों में विस्तार के बाद भी निर्धन व्यक्ति अपने लिए सभी आवश्यक वस्तुओं और सेवाओं को नहीं खरीद पाएँगे। एक निश्चित सामाजिक न्यूनतम स्तर तक उनके उपभोग और निवेश को समर्थन देना निम्नलिखित रूपों में अनिवार्य रहेगा—अनिवार्य खाद्यान्न, पेय-जल, शिक्षा, पोषण-स्वास्थ्य सेवाएँ, संचार और विद्युत पूर्ति।''

इन्हें कीजिए

- तटीय, रेगिस्तानी, पहाड़ी जनजातीय क्षेत्रों और जनजातीय क्षेत्रों में संभव तीन प्रकार के ऐसे रोजगार अवसरों पर चर्चा कर उन्हें सूचीबद्ध करें जो (क) काम के बदले अनाज; (ख) स्वरोजगार कार्यक्रम के अंतर्गत आ सकते हों।
- योजना आयोग की वेबसाइट (www.pl anningcomission.nic.in) पर अनेक नीति दस्तावेज, पंचवर्षीय योजनाएँ, आर्थिक सर्वेक्षण आदि उपलब्ध हैं। इनमें से कुछ आपके स्कूल के पुस्तकालय या आस-पास किसी सार्वजनिक पुस्तकालय में भी मिल सकते हैं। इन दस्तावेजों में सरकार द्वारा चलाए गए कार्यक्रम और उनकी समीक्षाएँ सुलभ हैं। उनमें से कुछ को पढ़कर उनपर कक्षा में चर्चा करें।
- आपको अपने क्षेत्र में या आस-पास सड़क निर्माण, किसी सरकारी अस्पताल या स्कूल आदि के भवन का निर्माण होता अवश्य दिख जाएगा। ऐसे निर्माण स्थलों पर जाकर वहाँ चल रहे काम, उन कामों में लगाए गए श्रमिकों की संख्या, उन्हें दी जा रही मजदूरी आदि के बारे में दो-तीन पृष्ठों की रिपोर्ट तैयार करें।
- अपने आस-पास ही आप सरकार से सामाजिक सुरक्षा सहायता पाने वाली निर्धन महिलाओं, विधवाओं, बेसहारा वृद्धों को भी देखेंगे। ऐसे कुछ व्यक्तियों के विषय में सूचनाएँ एकत्र करें। इसमें उनके विषय में कुछ व्यक्तिगत सूचनाएँ भी दर्ज कर लें और लिख लें कि उन्हें सहायता कैसे मिल पायी, सहायता की प्रकृति क्या है? क्या ये पर्याप्त हैं अथवा नहीं तथा वे किस प्रकार के काम आदि करते हैं?

निर्धनों के खाद्य उपभोग और पोषण स्तर को प्रभावित करने वाले तीन प्रमुख कार्यक्रम ये हैं: सार्वजनिक वितरण व्यवस्था, एकीकृत बाल विकास योजना तथा मध्यावकाश भोजन योजना। प्रधानमंत्री ग्राम सड़क योजना, प्रधानमंत्री ग्रामोदय योजना और वाल्मीकि अंबेडकर आवास योजना भी इसी दिशा में किए जा रहे प्रयास हैं। अब हम संक्षेप में यह तो कह ही सकते हैं कि भारत में अनेक दिशाओं में संतोषजनक प्रगति हुई है।

सरकार के पास विशेष समूहों की सहायता के लिए कुछ अन्य सामाजिक सुरक्षा कार्यक्रम भी हैं। केंद्र सरकार इसी शृंखला में राष्ट्रीय सामाजिक सहायता कार्यक्रम चला रही है। इसके अंतर्गत निराश्रित वृद्धजनों को निर्वाह के लिए पेंशन दी जाती है। अति निर्धन महिलाएँ और अकेली विधवाएँ भी इसी योजना के अंतर्गत आती हैं।

4.7 निर्धनता निवारण कार्यक्रम - एक समीक्षा

स्वतंत्रता के बाद निर्धनता निवारण के प्रयासों के परिणाम तब सामने आए, जब कुछ राज्यों में निर्धनों की निरपेक्ष संख्या तथा उनका प्रतिशत निर्धनता के राष्ट्रीय औसत के काफी नीचे आ गए। निर्धनता, भूख, कुपोषण, निरक्षरता और बुनियादी सुविधाओं के अभाव को दूर करने के अनेक कार्यक्रमों को चलाने के बाद भी देश के कई भाग में ये अभी भी पाए जाते हैं। यद्यपि निर्धनता निवारण नीतियों का पिछले साढ़े पाँच

बॉक्स 4.4 रामदास कोड़वा की मंजिल विहीन सड़क

रचकेठा गांव के रामदास कोड़वा को शायद ही यह जान कर खुशी हुई हो कि सरकार के लिए उसका मूल्य 17.44 लाख रुपये था। वर्ष 1993 के अंत में आदिवासी विकास के नाम पर सरकार ने रचकेठा गाँव तक 3 किलोमीटर लंबी सड़क का निर्माण 17.44 लाख रुपयों की लागत से करने का निश्चय किया।

भारत के एक निर्धनतम जनपद सरगुजा में 55 प्रतिशत आबादी जनजातीय वर्गों की ही है। पहाड़ी कोड़वा वर्ग को तो सरकार ने आदिम जनजाति माना हुआ है और ये निर्धनों के भी सबसे नीचे वाले 5 प्रतिशत अंश में आते हैं। उनके विकास के लिए विशेष प्रयास चल रहे हैं और उनके नाम पर बड़ी–बड़ी धन राशियों का प्रावधान किया जा रहा है। पहाड़ी कोड़वा नामक एक केंद्र प्रायोजित योजना पर ही पाँच वर्षों में 42 करोड़ की धनराशि व्यय की जा रही है। देश मे पहाड़ी कोड़वा जनजाति की संख्या लगभग 15,000 है, जिसका सबसे बड़ा समुदाय सरगुजा में बसा है। किंतु किन्हीं राजनीतिक कारणों से इस पहाड़ी कोड़वा विकास प्रकल्प का आधार रायगढ़ जिले में बनाया गया है। रचकेठा गाँव में पहाड़ी कोड़वा मार्ग के निर्माण में बस एक ही छोटी सी समस्या थी – वहाँ कोई भी पहाड़ी कोड़वा नहीं रहता था। रामदास का परिवार ही एक मात्र अपवाद है।

एक गैर–सरकारी संगठन के कार्यकर्ता का कहना है कि इस बात का कोई मतलब नहीं है कि पहाड़ी कोड़वों को किसी काम से कोई लाभ होता है या नहीं। यहाँ तो बंगलों और तरण तालों का निर्माण भी जनजाति विकास के नाम पर होगा। रामदास के पुत्र रामावतार कोड़वा का कहना है कि किसी ने ये जानने की कोशिश ही नहीं की कि इस गाँव में कितने परिवार पहाड़ी कोड़वा हैं-एक कच्ची सड़क तो पहले ही यहाँ मौजूद थी। उन्होंने उसी कच्ची सड़क पर कुछ लाल मिट्टी और डाल दी, बस। आज भी वह सड़क कच्ची ही है-पक्की नहीं बनी है। हाँ, 17.44 लाख रुपये अवश्य खर्च हो गए हैं।

रामदास की माँग तो बहुत ही साधारण सी है। उसे तो बस थोड़ा–सा पानी चाहिए। हम पानी के बिना खेती कैसे करें? बार–बार जोर डालने पर उसने बस यही कहा कि उस सड़क पर 17.44 लाख रुपये खर्च करने के स्थान पर मेरी जमीन के पास के जीर्ण अवस्था में पड़े कुएँ का कुछ हजार रुपये लगाकर उद्धार कर दिया जाता, तो कहीं अधिक अच्छा रहता। जमीन की दशा में भी सुधार की जरूरत है, पर अगर वे कुछ पानी देने से ही शुरुआत कर दें, तो भी बहुत है।

रामदास की समस्याओं पर ध्यान देने की किसे फुरसत थी। सरकार को तो अपना एक लक्ष्य पूरा करना था। यदि सारी धन राशि को एक बैंक में सावधि जमा खाते में डाल दिया जाए तो इन पहाड़ी कोड़वा व्यक्तियों को कभी जीविका के लिए काम करने की जरूरत नहीं रहे, ब्याज से ही इनका सरगुजा के स्तर पर गुजर बसर हो जाएगा। किसी सरकारी अफसर ने मजाक में ऐसा कहा।

किसी ने रामदास से नहीं पूछा कि उसकी समस्या क्या थी, उसकी जरूरत क्या थी। न ही किसी ने उसे उन समस्याओं के समाधान में शामिल करना आवश्यक माना। बस उसके नाम पर 17.44 लाख रुपये की एक सड़क बना दी, जिस पर वह कभी पाँव भी नहीं रखता। जैसे ही हमने उस कहीं भी न पहुंचाने वाली सड़क पर चलने के लिए पाँव उठाए, वह गिड़गिड़ाता हुआ कहने लगा, साहब हमारी पानी की समस्या के लिए कुछ कीजिए ना।

स्रोत *पी साईनाथ : एवरीबॉडी लव्ज ए गुड ड्राउट स्टोरीज, फ्रॉम इंडियाज पुअरेस्ट डिस्ट्रिक्ट्स, पेंग्विन बुक्स, नई दिल्ली से संकलित।*



चित्र 4.7 *रोजगार कार्यक्रमों का कुप्रबंधन ही लोगों को ऐसे कम आमदनी वाले काम करने को बाध्य करता है*

दशकों से निरंतर विकास होता रहा है, फिर भी इसमें कुल मिला कर कोई क्रांतिकारी परिवर्तन नहीं आया है। कार्यक्रमों के नाम बदलते रहे हैं-कहीं कई कार्यक्रमों को मिलाकर एक बना दिया गया तो कहीं अलग-अलग कार्यक्रम रहे। किंतु किसी भी कार्यक्रम से न तो उत्पादन परिसंपत्तियों के स्वामित्व में कोई परिवर्तन आया, न उत्पादन प्रक्रिया में और न ही जरूरतमंदों की बुनियादी सुविधाओं की उपलब्धि में ही सुधार आ पाया। इन कार्यक्रमों की समीक्षा कर रहे विद्वानों ने इनके सफल क्रियान्वयन से जुड़े तीन बड़े पक्षों को स्पष्ट किया है, जो इन को सफलतापूर्वक लागू करने में बाधा डालते हैं। भूमि और अन्य परिसंपत्तियों के वितरण की विषमताओं के कारण प्रत्यक्ष निर्धनता निवारण कार्यक्रमों का लाभ प्रायः गैर निर्धन वर्ग के लोग ही उठा पाए। निर्धनता की गहनता की तुलना में इन कार्यक्रमों के लिए आबंटित संसाधन नितांत ही अपर्याप्त रहे हैं। यही नहीं, ये कार्यक्रम सरकार और बैंक अधिकारियों के सहारे ही चलाए जाते हैं। इन अधिकारियों में उपयुक्त चेतना के अभाव, अपर्याप्त प्रशिक्षण और भ्रष्टाचार के साथ-साथ स्थानीय सशक्त वर्गों के अनेक प्रकार के दबावों के कारण प्रायः संसाधनों का दुरुपयोग और बर्बादी ही होती है। इन कार्यक्रमों के क्रियान्वयन में स्थानीय स्तर की संस्थाओं की भागीदारी भी शून्य होती है।

सरकारी नीतियों ने दयनीय दशा से ग्रस्त उस विशाल जन समुदाय की सुध भी नहीं ली है जो निर्धनता-रेखा या उससे जरा सा ही ऊपर रह रहे हैं। इससे यह भी स्पष्ट है कि केवल उच्च संवृद्धि ही निर्धनता कम करने में पर्याप्त नहीं होती। निर्धनों की सक्रिय भागीदारी के बिना किसी भी कार्यक्रम का सफल क्रियांवयन असंभव है। निर्धनता का वास्तविक अंत तो तभी होगा जब निर्धन भी अपनी सक्रिय भागीदारी के माध्यम से आर्थिक संवृद्धि में योगदान देना आरंभ करेंगे। ऐसा सामाजिक संघटन के माध्यम से निर्धनों द्वारा विकास प्रक्रियाओं में उनकी भागीदारी सुनिश्चित करने से और उनके सशक्त होने से ही संभव हो पाएगा। इससे रोजगार के अवसरों की रचना होगी, जिससे आय के स्तर में सुधार होगा, कौशल का विकास होगा, तथा स्वास्थ्य और साक्षरता के स्तर ऊँचे उठेंगे। साथ ही निर्धनता ग्रस्त क्षेत्रों की सही पहचान कर वहाँ

स्कूल, सड़कें, विद्युत, संचार, सूचना, प्रौद्योगिकी सेवाएँ तथा प्रशिक्षण संस्थानों जैसी आधारिक संरचनाएँ उपलब्ध कराना भी आवश्यक है।

4.8 निष्कर्ष

हम स्वतंत्रता के बाद से लगभग 6 दशकों की यात्रा कर चुके हैं। हमारी सभी नीतियों का ध्येय समता और सामाजिक न्याय सहित तीव्र और संतुलित आर्थिक विकास बताया गया है। चाहे जो भी सरकार सत्ता में रही हो, सभी ने निर्धनता निवारण को ही भारत के सामने सबसे बड़ी चुनौती माना है। देश में निर्धनों की निरपेक्ष संख्या में कमी आई है और कुछ राज्यों में राष्ट्रीय औसत से निर्धनों का अनुपात कम है। यद्यपि इस काम के लिए बहुत विशाल धन राशियाँ आबंटित और खर्च की जा चुकी हैं किंतु फिर भी हम लक्ष्य से बहुत दूर हैं। प्रति व्यक्ति आय और औसत जीवन स्तर में सुधार हुए हैं, बुनियादी आवश्यकताओं की पूर्ति की दिशा में भी कुछ प्रगति अवश्य हुई है। किंतु अन्य देशों की तुलना में हमारी यह प्रगति प्रभावहीन प्रतीत होती है। यही नहीं, विकास के लाभ हमारी जनता के सभी वर्गों तक नहीं पहुँच पाए हैं। वैसे सामाजिक और आर्थिक विकास की कसौटियों पर हमारे देश के कुछ क्षेत्रक, अर्थव्यवस्था के कुछ वर्ग और समाज के कुछ अंश तो अनेक विकसित देशों से भी स्पर्धा कर सकते हैं, फिर भी ऐसा बहुत बड़ा समुदाय है जो अभी निर्धनता के दुष्चक्र से मुक्ति नहीं पा सका है।

पुनरावर्तन

- भारत की विकासात्मक रण-नीतियों का एक प्रमुख उद्देश्य निर्धनता को कम करना है।
- न्यूनतम गैर-खाद्य व्यय के साथ औसत प्रति व्यक्ति दैनिक आवश्यकता को पूरा करने लायक प्रति व्यक्ति उपभोग व्यय स्तर ग्रामीण क्षेत्रों में 2400 कैलोरी और शहरी क्षेत्रों में 2100 कैलोरी को ही निर्धनता रेखा या निरपेक्ष निर्धनता कहते हैं।
- जब निर्धनों की संख्या और उनके अनुपात की तुलना की जाती है, तो हमें विभिन्न राज्यों में और विभिन्न समयों पर लोगों की निर्धनता के विभिन्न स्तरों के बारे में पता चलता है।
- भारत में निर्धनों की संख्या और कुल जनसंख्या में उनका अनुपात पर्याप्त मात्रा में कम हुआ है। 1990 के दशक में पहली बार निर्धनों की निरपेक्ष संख्या में कमी आई है।
- अधिकतर निर्धन ग्रामीण क्षेत्रों में रहते हैं और अनियत और अकुशल कार्यों में लगे होते हैं।
- आय तथा व्यय आधारित विधि निर्धन लोगों के अन्य गुणों पर विचार नहीं करती।
- कई वर्षों से सरकार निर्धनता कम करने के लिए तीन विधियों का प्रयोग कर रही है: संवृद्धि-उन्मुख विकास, विशेष निर्धनता निवारण कार्यक्रम और निर्धनों की न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्ति।
- परिसंपत्तियों के स्वामित्व, उत्पादन की प्रक्रियाएँ तथा निर्धनों की आधारभूत सुविधाओं में अभी भी सरकार द्वारा पहले किया जाना बाकी है।



अभ्यास

1. निर्धनता की परिभाषा दें।
2. 'काम के बदले अनाज' कार्यक्रम का क्या अर्थ है?
3. ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में स्वरोजगार का एक एक उदाहरण दें।
4. आय अर्जित करने वाली परिसंपत्तियों के सृजन से निर्धनता की समस्या का समाधान किस प्रकार हो सकता है?
5. भारत सरकार द्वारा निर्धनता पर त्रि-आयामी प्रहार की संक्षेप में व्याख्या करें।
6. सरकार ने बुजुर्गों, निर्धनों और असहाय महिलाओं के सहायतार्थ कौन से कार्यक्रम अपनाए हैं?
7. क्या निर्धनता और बेरोजगारी के बीच कोई संबंध हैं? समझाइए?
8. सापेक्ष और निरपेक्ष निर्धनता में क्या अंतर है?
9. मान लीजिए कि आप एक निर्धन परिवार से हैं और छोटी सी दुकान खोलने के लिए सरकारी सहायता पाना चाहते हैं। आप किस योजना के अंतर्गत आवेदन देंगे और क्यों?
10. ग्रामीण और शहरी बेरोजगारी में अंतर स्पष्ट करें। क्या यह कहना सही होगा कि निर्धनता गाँवों से शहरों में आ गई है? अपने उत्तर के पक्ष में निर्धनता अनुपात प्रवृत्ति का प्रयोग करें।
11. भारत के कुछ राज्यों में निर्धनता रेखा के नीचे की जनसंख्या का प्रयोग कर सापेक्ष निर्धनता की अवधारणा की व्याख्या करें।
12. मान लीजिए कि आप किसी गाँव के निवासी हैं। अपने गाँव से निर्धनता निवारण के कुछ सुझाव दीजिए।

अतिरिक्त गतिविधियाँ

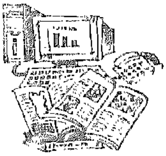
1. अपने आस-पास के तीस व्यक्तियों से विभिन्न वस्तुओं के दैनिक उपभोग के आँकड़े एकत्र करें। सापेक्ष निर्धनता के मान को निर्धारित करने के लिए उन व्यक्तियों को सापेक्ष रूप से बेहतर और बदतर के अनुसार क्रमबद्ध करें।
2. चार परिवारों द्वारा विभिन्न वस्तुओं पर किए गए व्यय से संबंधित आंकड़े एकत्रित करें और निम्न सारणी की पूर्ति करें। इस अनुसंधान का विश्लेषण करें और पता करें कि कौन-सा परिवार अन्य परिवारों की तुलना में अधिक निर्धन है। यदि निर्धनता-रेखा का स्तर 500 रुपये प्रतिव्यक्ति हो तो कौन-सा परिवार पूर्ण रूप से निर्धन होगा?

वस्तुएँ	परिवार क	परिवार ख	परिवार ग	परिवार घ
गेहूँ / चावल				
वनस्पति तेल				
चीनी				
बिजली/प्रकाश				
घी				
कपड़े				
मकान का किराया				

3. निम्न सारणी भारत में तथा दिल्ली की झुग्गी-झोंपड़ियों में उपभोग पर प्रतिव्यक्ति प्रतिमाह व्यय को प्रतिशत के रूप में व्यक्त करती है। ग्रामीण क्षेत्रों में 25 प्रतिशत चावल और गेहूँ का अर्थ है प्रति सौ रुपये के व्यय पर, 25 रुपये केवल चावल और गेहूँ पर खर्च हो जाते हैं। ये आँकड़े कुल व्यय में उन पदार्थों के प्रतिशत अंश को दिखाते हैं। इस सारणी को पढ़कर इस पर आधारित प्रश्नों के उत्तर दें:

मदें	ग्रामीण	शहरी	दिल्ली की झुग्गी झोपडियाँ
चावल और गेहूँ	25.0	35.4	28.7
दाल और दाल उत्पाद	5.7	6.1	9.9
दूध और दूध उत्पाद	17.4	14.1	10.3
फल सब्जियाँ	15.1	12.7	19.6
माँस, मछली, अंडे	6.3	5.3	13.1
चीनी	3.3	3.8	4.0
नमक और मसाले	10.8	10.8	8.1
अन्य खाद्य वस्तुएँ	16.5	11.3	6.4
कुल खाद्य पदार्थ	100	100	100
संकल व्यय में खाद्य पदार्थों का अंश	62.9	72.2	72.8

- विभिन्न वर्गों के खाद्य पदार्थों पर व्यय के अनुपात और उनकी प्राथमिकताओं की तुलना करें।
- क्या आप ऐसा सोचते हैं कि झुग्गी-झोंपड़ियों के परिवार अनाजों और दालों पर अधिक निर्भर हैं?
- विभिन्न क्षेत्रों में रहने वाले लोग किस मद पर सबसे कम खर्च करते हैं? उनमें तुलना करें।
- क्या आप ऐसा सोचते हैं कि झुग्गी-झोंपड़ियों में रहने वाले माँस, मछलियों और अंडों को अधिक महत्व देते हैं।



संदर्भ

पुस्तकें

दांडेकर वी. एम. एंड नीलकांथ रथ 1971. पावर्टी इन इंडिया, इंडियन स्कूल ऑफ पोलिटिकल अकॉनामी, पुणे।

ड्रेज़ जीन, अमर्त्य सेन एंड अख्तर हुसैन (ए.ड.) 1995. दी पोलिटिकल इकॉनामी ऑफ हंगर, कैलेंडान प्रेस, ऑक्सफोर्ड।

नौरोजी दादाभाई 1996. पावर्टी एंड अनब्रिटिश रूल इन इंडिया, पब्लिकेशन डिविज़न मिनिस्ट्री ऑफ इनफॉरमेशन एंड ब्रॉडकास्टिंग, गवर्न्मेंट ऑफ इंडिया, सेकेंड एडीशन।

साईंनाथ पी. 1996. एवरीबॉडी लव्ज ए गुड ड्रॉट: स्टोरीज़ फ्रॉम इंडियाज़ पूअरेस्ट डिस्ट्रिक्ट्स, पेंग्विन बुक्स, नई दिल्ली।

सेन अमर्त्य 1999. पावर्टी एंड फेमींस, एन. एसे. ऑन एनटाइटलमेंट एंड डिप्राइवेशन, ऑक्सफॉर्ड युनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली।

सुब्रमणियम, एस. (ऐड) 2001, इंडियन डेवेलपमेंट एक्सपीरिएंस सिलेक्टिड राइटिंग्स ऑफ एस गुहा. ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, दिल्ली।

निबंध

नवीन कुमार एंड एस. सी. अग्रवाल (2003), पैटर्न ऑफ कंसेंप्शन एंड पावर्टी इन दिल्ली स्लम्स, इकॉनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली, दिसंबर 13, पृष्ठ 5294–5300.

बी. एस. मिनहाल, एल. आर. जैन एंड एड. डी. तेंदुलकर (1991), डिक्लाइनिंग इंसिडेंस ऑफ पावर्टी इन दी 1980, एविडेंस बर्सस आर्ट्रीफैक्ट्स, इकॉनामिक एंड पोलिटिकल वीकली, जुलाई 6–13.

सरकारी रिपोर्ट आदि

1. योजना आयोग (1993), निर्धन लोगों की संख्या और अनुपात के अनुमान पर विशेषज्ञ दल की रिपोर्ट, पर्सपेक्टिव प्लानिंग डिवीजन, भारत सरकार।
2. एस. सुब्रह्मण्यम (सं) 2001, इंडियन डेवेलपमेंट एक्सपीरियंस सिलेक्टिड राइटिंग्स ऑफ एस. गुहान, ऑक्सफोर्ड यूनि. प्रेस, नई दिल्ली।
3. इक्नोमिक सर्वे (2004-05) वित्त मंत्रालय, भारत सरकार।
4. दसवीं पंचवर्षीय योजना (2002-07) खंड दो , क्षेत्रीय नीतियां और कार्यक्रम, योजना आयोग, भारत सरकार, नई दिल्ली।

5

भारत में मानव पूँजी का निर्माण

इस अध्याय को पढ़ने के बाद आप

- मानव संसाधन, मानव पूँजी निर्माण और मानव विकास की अवधारणाओं को समझ सकेंगे;
- मानव पूँजी में निवेश, आर्थिक संवृद्धि और मानव विकास के परस्पर संबंधों को जानेंगे।
- शिक्षा और स्वास्थ्य पर सरकारी व्यय की आवश्यकता को समझ पाएँगे और
- भारत की शैक्षिक उपलब्धियों की जानकारी प्राप्त करेंगे।

> *शिक्षा पर निजी और सार्वजनिक निधि के व्यय की सार्थकता का मूल्यांकन केवल उसके प्रत्यक्ष परिणामों के माध्यम से नहीं हो। इसमें निवेश-मात्र ही लोगों को उससे अधिक अवसर उपलब्ध कराने में पर्याप्त होगा, जितना कि वे स्वयं ही प्राप्त कर सकते थे। इनके माध्यम से कितने ही ऐसे व्यक्तियों की अंतर्निहित योग्यताएँ उजागर हो पाती हैं, जो अन्यथा बिना पहचान के ही मर जाते।*
>
> **-अल्फ्रेड मार्शल**

5.1 परिचय

मानव जाति के विकास को बहुत अधिक प्रभावित करने वाले कारकों पर विचार करें। ये शायद मनुष्य के ज्ञान-संग्रह करने की और उसका प्रसारण करने की क्षमताएँ ही हैं, जो मनुष्य बातचीत, लोकगीत और बड़े-बड़े व्याख्यानों के माध्यम से करता आ रहा है। मनुष्य ने यह शीघ्र जान लिया कि हमें कार्यों को कुशलतापूर्वक करने के लिए अच्छे प्रशिक्षण तथा कौशल की आवश्यकता है। हम जानते हैं कि किसी शिक्षित व्यक्ति के श्रम-कौशल अशिक्षित व्यक्ति से अधिक होते हैं। इसी कारण से पहला, दूसरे की अपेक्षा, अधिक आय का सृजन करता है और आर्थिक समृद्धि में उसका योगदान क्रमशः अधिक होता है। शिक्षा पाने का प्रयास केवल उपार्जन क्षमता बढ़ाने के लिए नहीं किया जाता बल्कि उसके और भी अधिक मूल्यवान लाभ हैं। शिक्षा लोगों को उच्चतम सामाजिक स्थिति और गौरव प्रदान करती है। यह किसी व्यक्ति को अपने जीवन में बेहतर विकल्पों का चयन कर पाने के योग्य बनाता है, व्यक्ति को समाज में चल रहे परिवर्तनों की बेहतर समझ प्रदान करता है और नव परिवर्तनों को बढ़ावा देता है। शिक्षित श्रम शक्ति की उपलब्धता नयी प्रौद्योगिकी को अपनाने में भी सहायक होती है। देश शिक्षा के अवसरों



चित्र 5.1 *किसानों को समुचित शिक्षा तथा प्रशिक्षण ही खेतों की उत्पादकता में वृद्धि कर सकती है*

के विस्तार की आवश्यकता पर बल देते हैं, क्योंकि यह विकास प्रक्रिया को तेज करती है।

5.2 मानव पूँजी क्या है?

जिस प्रकार एक देश अपने भूमि जैसे भौतिक संसाधनों को कारखानों जैसी भौतिक पूँजी में परिवर्तित कर सकता है, उसी प्रकार वह अपने छात्र रूपी मानव संसाधनों को अभियंता और डॉक्टर जैसी मानव पूँजी में भी परिवर्तित कर सकता है। समाज को सबसे पहले पर्याप्त मात्रा में मानव पूँजी की ज़रूरत है, जो ऐसे योग्य व्यक्तियों के रूप में अधिक होती है जो पहले स्वयं प्रशिक्षित हो चुके हों और प्रोफ़ेसरों आदि के रूप में कार्य करने योग्य हों। दूसरे शब्दों में, हमें अन्य मानव पूँजी जैसे डॉक्टर, इंजीनियर आदि को तैयार करने के लिए शिक्षकों, प्रशिक्षकों के रूप में बेहतर मानव पूँजी की आवश्यकता होती है। इसका अर्थ है कि हमें मानव संसाधनों को मानव पूँजी के रूप में परिवर्तित करने के लिए मानव पूँजी निवेश करने की भी आवश्यकता है।

आइए, इन प्रश्नों के माध्यम से मानव पूँजी के अर्थ को कुछ अधिक स्पष्ट रूप से जानने का प्रयास करें:

(क) मानव पूँजी के स्रोत क्या हैं?

(ख) क्या किसी देश की आर्थिक संवृद्धि और वहाँ की मानव पूँजी में कोई संबंध होता है?

(ग) क्या मानव पूँजी के निर्माण का संबंध मनुष्य के सर्वांगीण विकास से है जिसे आमतौर पर मानव विकास के रूप में जाना जाता है?

(घ) भारत में मानव पूँजी के निर्माण में सरकार की क्या भूमिका हो सकती है?

5.3 मानव पूँजी के स्रोत

शिक्षा में निवेश को मानव पूँजी का एक प्रमुख स्रोत माना जाता है। इसके अतिरिक्त स्वास्थ्य में निवेश, कार्य के दौरान प्रशिक्षण, प्रबंधन तथा सूचना आदि मानव पूँजी के निर्माण के अन्य स्रोत हैं।

इन्हें कीजिए

- समाज के अलग-अलग वर्गों से तीन परिवारों का चयन करें (क) अति निर्धन (ख) मध्यमवर्गीय तथा (ग)संपन्न। इन परिवारों के लड़के तथा लड़कियों की शिक्षा पर व्यय की प्रवृत्ति का आकलन करें।

आपके माता-पिता आपकी शिक्षा पर व्यय क्यों कर रहे हैं? व्यक्तियों द्वारा शिक्षा पर व्यय कुछ उसी प्रकार का खर्च है जैसा कि कंपनियाँ निश्चित अवधि में अपने दीर्घकालिक निश्चित लाभ को सुधारने के लिए पूँजीगत वस्तुओं पर करती हैं। इसी प्रकार व्यक्ति अपनी भविष्य की आय को बढ़ाने के लिए शिक्षा पर निवेश करता है।

शिक्षा की भाँति ही स्वास्थ्य को भी किसी व्यक्ति के साथ-साथ देश के विकास के लिए एक महत्वपूर्ण आगत माना जाता है।

किसी भी कार्य को अच्छी तरह से कौन कर सकता है– एक बीमार व्यक्ति या एक स्वस्थ व्यक्ति? चिकित्सा सुविधाओं के सुलभ नहीं होने पर एक बीमार श्रमिक कार्य से विमुख रहेगा। इससे उत्पादकता में कमी आएगी। अत:

इस प्रकार से स्वास्थ्य पर व्यय मानव पूँजी के निर्माण का एक महत्वपूर्ण स्रोत है।

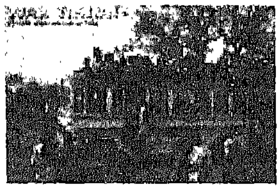
प्रतिषेधी आयुर्विज्ञान (टीकाकरण), चिकित्सीय आयुर्विज्ञान (बीमारियों के क्रम में उसकी चिकित्सा) तथा सामाजिक आयुर्विज्ञान (स्वास्थ्य संबंधी साक्षरता या ज्ञान का प्रसार) और इनके साथ-साथ स्वच्छ पेय जल का प्रावधान आदि स्वास्थ्य व्यय के विभिन्न रूप हैं। स्वास्थ्य पर किया गया व्यय स्वस्थ श्रमबल की पूर्ति को प्रत्यक्ष रूप से बढ़ाता है और इसी कारण यह मानव पूँजी निर्माण का एक स्रोत है।



फर्में अपने कर्मचारियों के कार्य-स्थल पर प्रशिक्षण में व्यय करती हैं। इसके कई तरीके हो सकते हैं। फर्म के अपने कार्य स्थान पर ही पहले से काम को जानने वाले कुशलकर्मी कर्मचारियों को काम सिखा सकते हैं। दूसरे, कर्मचारियों को किसी अन्य स्थान/संस्थान में प्रशिक्षण पाने के लिए भेजा जा सकता है। दोनों ही विधियों में फर्म अपने कर्मचारियों के प्रशिक्षण का कुछ व्यय वहन करती है। इसी कारण से फर्म इस बात पर बल देगी कि प्रशिक्षण के बाद वे कर्मचारी एक निश्चित अवधि तक अवश्य फर्म के पास ही कार्य करें। इस प्रकार फर्म उनके प्रशिक्षण पर किये गये व्यय की उगाही अधिक उत्पादकता से हुए लाभ के रूप में कर पाने में सफल रहती है। कार्य के दौरान प्रशिक्षण पर किया गया व्यय भी इस दृष्टि से मानव पूँजी का स्रोत बन जाता है। ऐसे खर्च की तुलना में श्रम उत्पादकता में वृद्धि से हुए लाभ कहीं अधिक होते हैं।



व्यक्ति अपने मूल स्थान की आय से अधिक आय वाले रोजगार की तलाश में प्रवसन/पलायन करते हैं। भारत में ग्रामीण क्षेत्रों से शहरों की ओर प्रवसन मुख्यतः गाँवों में बेराजगारी के कारण ही होता है। तकनीकी शिक्षा संपन्न अभियंता, डॉक्टर आदि भी अच्छे वेतनमानों की अपेक्षा में दूसरे देशों में चले जाते हैं। प्रवसनों की दोनों ही स्थितियों में परिवहन की लागत और उच्चतर निर्वाह लागत के साथ एक अनजाने सामाजिक सांस्कृतिक परिवेश में रहने की मानसिक लागतें भी प्रवासी श्रमिकों को सहन करनी पड़ती हैं। किंतु नये स्थान पर उनकी कमाई प्रवास से जुड़ी सभी लागतों से कहीं अधिक होती है। अतः प्रवसन पर व्यय भी मानवीय पूँजी निर्माण का स्रोत है।



व्यक्ति श्रम बाज़ार तथा दूसरे बाज़ार जैसे, शिक्षा और स्वास्थ्य से संबंधित सूचनाओं को प्राप्त करने के लिए व्यय करते हैं। वे यह जानना चाहते हैं, कि विभिन्न प्रकार के कार्यों में वेतनमान क्या हैं या फिर क्या शैक्षिक संस्थाएँ सही प्रकार के कौशल में प्रशिक्षण दे रही हैं और किस लागत पर? यह जानकारी मानव पूँजी में निवेश करने से प्राप्त मानव पूँजी के भंडार

बॉक्स 5.1 भौतिक और मानव पूँजी

दोनों ही प्रकार का पूँजी निर्माण सुविचारित निवेश निर्णयों का परिणाम होता है। भौतिक पूँजी में निवेश का निर्णय अपने ज्ञान के आधार पर लिया जाता है। इस संबंध में उद्यमी के पास अनेक प्रकार के निवेश विकल्पों की आंतरिक प्रतिफल दर का आकलन कर पाने का ज्ञान होता है। इन गणनाओं के बाद ही वह अपना विवेक आधारित निवेश करता है। भौतिक पूँजी का स्वामित्व उस व्यक्ति के सुविचारित निर्णय का परिणाम होता है-भौतिक पूँजी निर्माण मुख्यत: एक आर्थिक और तकनीकी प्रक्रिया है।

मानव पूँजी के निर्माण का महत्वपूर्ण भाग व्यक्ति के जीवन की उस अवधि में होता है, जब वह यह निर्णय लेने में असमर्थ होता है कि क्या वह अपनी आमदनी को अधिकतम कर पायेगा या नहीं। बच्चों की शिक्षा और स्वास्थ्य सुविधाओं से संबंधित निर्णय उनके अभिभावक तथा समाज ही करते हैं। उनके समकक्षी शिक्षाविद् और समाज उच्चतर स्तरों (महाविद्यालय/विश्वविद्यालय) पर मानव पूँजी में निवेश संबंधी निर्णय को प्रभावित करते हैं। फिर भी इस स्तर पर मानव पूँजी निर्माण, विद्यालय स्तर पर मानव पूँजी निर्माण, पर निर्भर करता है। मानव पूँजी निर्माण आंशिक रूप से एक सामाजिक प्रक्रिया है और अंशत: मानव पूँजी को धारण करने वालों के सुविचारित निर्णय का प्रतिफल है।

आप जानते ही हैं कि बस जैसी भौतिक पूँजी के स्वामी को सदैव वहाँ उपस्थित नहीं रहना होता, जहाँ वह बस यात्रियों/सामान के परिवहन में प्रयुक्त हो। किंतु उस वाहन को चलाने के ज्ञान से संपन्न चालक को वाहन के साथ ही रहना पड़ता है। भौतिक पूँजी किसी भी अन्य वस्तु की भाँति दृश्य होती है। उसे किसी भी वस्तु की तरह बाज़ार में बेचा जा सकता है। मानव पूँजी अदृश्य होती है-यह धारक के शरीर और मस्तिष्क में रची-बसी होती है। बाज़ार में मानव पूँजी को बेचा नहीं जा सकता, केवल उसकी सेवाओं की बिक्री की जा सकती है इसलिए मानव पूँजी के स्वामी को उसके उत्पादन के स्थान पर उपस्थित होना आवश्यक होता है। भौतिक पूँजी को उसके स्वामी से पृथक किया जा सकता है, किंतु मानव पूँजी का स्वामी से पृथक्करण संभव नहीं होता।

दोनों प्रकार की पूँजियों में उनके स्थानों की गतिशिलता के आधार पर अंतर होता है। प्राय: कुछ कृत्रिम अपवादों को छोड़ भौतिक पूँजी का विश्व भर में निर्बाध आवागमन चलता रहता है। किंतु मानव पूँजी का प्रवाह इतना निर्बाध नहीं होता, इसके मार्ग में राष्ट्रीयता और संस्कृति की ऊँची बाधाएँ आ जाती हैं। अत: भौतिक पूँजी का निर्माण तो आयात के सहारे भी हो जाता है, किंतु मानवीय पूँजी की रचना तो समाज तथा अर्थव्यवस्था की अंतर्भूत विशेषताओं के अनुरूप सुविचारित नीति निर्धारण संबंधी निर्णयों तथा सरकार और व्यक्तिगत व्यय के आधार पर होती है। समय के साथ-साथ दोनों ही प्रकार की पूँजियों में मूल्य ह्रास होता है। किसी मशीन के निरंतर प्रयोग से वह घिस जाती है और प्रौद्योगिकीय परिवर्तन उसे पुराना घोषित कर देते हैं। मानव पूँजी में आयु के अनुसार कुछ 'ह्रास' आता है। किंतु शिक्षण और स्वास्थ्य सेवाओं में निरंतर निवेश से उस 'ह्रास' का काफी सीमा तक निराकरण हो सकता है। यह निवेश मानव पूँजी को प्रौद्योगिकीय परिवर्तनों का सामना करने योग्य भी बना देता है-किंतु भौतिक पूँजी में किसी भी प्रकार से प्रौद्योगिकीय परिवर्तन का सामना करने की क्षमता नहीं आ पाती।

मानव पूँजी द्वारा सृजित हितलाभ के प्रवाह का स्वरूप भी भौतिक पूँजी से अलग होता है। मानव पूँजी से केवल उसका स्वामी ही नहीं वरन् सारा समाज लाभांवित होता है। इसे एक बाह्य हित लाभ कहा जा सकता है। एक सुशिक्षित व्यक्ति लोकतांत्रिक प्रक्रिया में प्रभावपूर्ण भागीदारी के माध्यम से राष्ट्र की सामाजिक, आर्थिक प्रगति में योगदान करता है। एक स्वस्थ व्यक्ति अपने वैयक्तिक स्तर पर तथा आस-पास में सफाई आदि के माध्यम से रोगों का संक्रमण रोक उन्हें महामारियों का रूप धारण नहीं करने देता। मानवीय पूँजी से व्यक्तिगत के साथ-साथ सामाजिक हितलाभों का भी सृजन होता है। किंतु भौतिक पूँजी तो प्राय: निजी लाभ को ही जन्म दे पाती है। पूँजीगत पदार्थों के लाभ उन्हीं को मिल पाते हैं जो उनके द्वारा उत्पादित वस्तुओं और सेवाओं की कीमत चुका सकें।

का सदुपयोग करने की दृष्टि से बहुत उपयोगी होती है। इसीलिए श्रम बाज़ार तथा अन्य बाज़ारों के विषय में जानकारी प्राप्त करने पर किया गया व्यय भी मानव पूँजी निर्माण का स्रोत है।

भौतिक पूँजी की अवधारणा के आधार पर ही मानव पूँजी के वैचारिक आधार की रचना की गयी है। दोनों प्रकार की पूँजी के बीच कुछ समरूपताएँ तथा कुछ प्रभावशाली असमानताएँ हैं (देखें बॉक्स 5.1)।

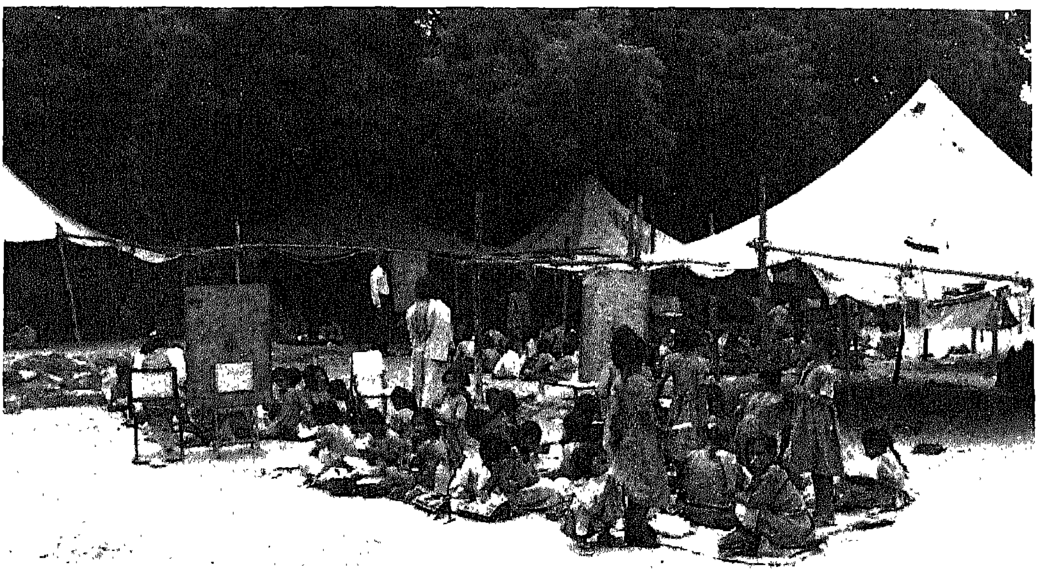
मानव पूँजी और आर्थिक संवृद्धि

राष्ट्रीय आय में किसका योगदान अधिक होता है? किसी कारखाने के कर्मचारी का या 'सॉफ्टवेयर विशेषज्ञ' का? हम जानते ही हैं कि एक शिक्षित व्यक्ति का श्रम-कौशल अशिक्षित की अपेक्षा अधिक होता है। इसी कारण वह अपेक्षाकृत अधिक आय अर्जित कर पाता है। आर्थिक संवृद्धि का अर्थ देश की वास्तविक राष्ट्रीय आय में वृद्धि से होता है तो फिर स्वाभाविक ही है कि किसी शिक्षित व्यक्ति का योगदान अशिक्षित की तुलना में कहीं अधिक होगा। एक स्वस्थ व्यक्ति अधिक समय तक व्यवधानरहित श्रम की पूर्ति कर सकता है।

इन्हें कीजिए

- एक शिक्षित व्यक्ति का आय प्रवाह में योगदान भी अधिक होता है। इनके द्वारा कमाए गये मासिक वेतन की जानकारी संग्रहित करें:

–एक राज (शिल्पी) मिस्त्री
–आपके आवास/स्कूल के चौकीदार
–घरेलू नौकर/धोबी
–शिक्षक/किसी दफ्तर में लिपिक
–प्रोफ़ेसर
–डॉक्टर/इंजीनियर/प्रबंधक

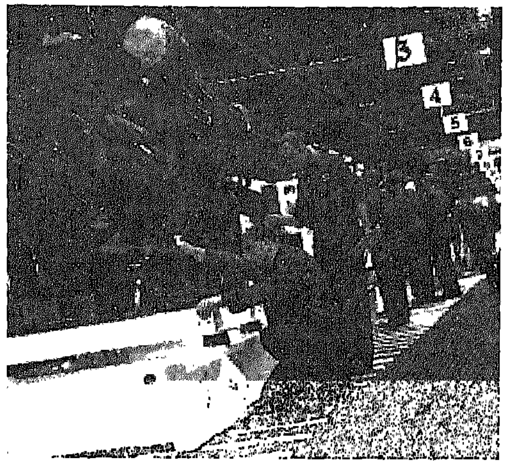


चित्र 5.2 *मानव पूँजी निर्माण: गाँव में अस्थाई रूप से चल रहा एक विद्यालय*

इसीलिए स्वास्थ्य भी आर्थिक संवृद्धि का एक महत्वपूर्ण कारक बन जाता है। अतः कार्य के दौरान प्रशिक्षण, श्रम बाज़ार की जानकारी, प्रवसन आदि के साथ-साथ शिक्षा और स्वास्थ्य व्यक्ति की उपार्जन क्षमता का संवर्धन करती है।

मानव की संवर्धित उत्पादकता या मानव पूँजी न केवल श्रम की उत्पादकता को बढ़ाती है बल्कि यह साथ ही साथ परिवर्तन को प्रोत्साहित कर नवीन प्रौद्योगिकी को आत्मसात् करने की क्षमता भी विकसित करती है। शिक्षा समाज में परिवर्तनों और वैज्ञानिक प्रगति को समझ पाने की क्षमता प्रदान करती है- जिससे आविष्कारों और नव परिवर्तनों में सहायता मिलती है। इसीलिए शिक्षित श्रम शक्ति की उपलब्धता नवीन प्रौद्योगिकी को अपनाने में सहायक होती है।

मानव पूँजी की वृद्धि के कारण आर्थिक संवृद्धि होती है। इसे सिद्ध करने के लिए व्यावहारिक साक्ष्य अभी स्पष्ट नहीं हैं। इसका कारण मापन की समस्यायें हो सकती हैं। उदाहरण के लिए, स्कूली वर्षों की गणना, शिक्षक-शिक्षार्थी अनुपात और नामांकन दर आदि के आधार पर शिक्षा का मापन उसकी गुणवत्ता को आर्थिक रूप से व्यक्त नहीं कर पाता। इसी प्रकार स्वास्थ्य सेवाओं पर मौद्रिक व्यय, जीवन प्रत्याशा तथा मृत्यु दरों आदि से देश की जनसंख्या के वास्तविक स्वास्थ्य स्तर का सही ज्ञान नहीं होता। यदि इन सूचकों का प्रयोग कर विकसित तथा विकासशील देशों में शिक्षा व स्वास्थ्य स्तरों और प्रतिव्यक्ति आय में सुधारों की तुलना करें तो हमें मानव पूँजी के परिवर्तनों में साहचर्य दिखायी पड़ता है, किंतु प्रतिव्यक्ति वास्तविक आय में ऐसी कोई प्रवृत्ति स्पष्ट नहीं होती। दूसरे शब्दों में, विकासशील देशों में मानव पूँजी की संवृद्धि तो बहुत तेजी से हो रही है, किंतु उनकी प्रतिव्यक्ति वास्तविक आय की वृद्धि उतनी तीव्र नहीं है। यह मानना तर्कसंगत है कि मानव पूँजी और आर्थिक संवृद्धि परस्पर एक दूसरे को प्रभावित करते हैं। अर्थात् एक ओर जहाँ प्रवाहित उच्च आय उच्च स्तर पर मानव पूँजी के सृजन का कारण बन सकती है तो दूसरी ओर उच्च स्तर पर मानव पूँजी निर्माण से आय की संवृद्धि में सहायता मिल सकती है।



चित्र 5.3 *वैज्ञानिक और तकनीकी जन-शक्ति: मानव पूँजी का एक मुख्य घटक है*

भारत ने तो बहुत पहले आर्थिक संवृद्धि में मानव पूँजी के महत्व को समझ लिया था। सातवीं पंचवर्षीय योजना में कहा गया है- "एक विशाल जनसंख्या वाले देश में तो विशेष रूप से मानव संसाधनों (मानव पूँजी) के विकास को आर्थिक विकास की युक्ति में बहुत महत्वपूर्ण स्थान देना ही होगा। उचित शिक्षण प्रशिक्षण पा कर एक विशाल जनसंख्या अपने आप में आर्थिक संवृद्धि को बढ़ाने वाली परिसंपत्ति बन

सारणी 5.1

शिक्षा और स्वास्थ्य क्षेत्रकों में विकास के चुने हुए सूचक

विवरण		1951	1981	1991	2001
वास्तविक प्रति व्यक्ति आय। (रु में)		3,687	5,353	7,321	10,306
अशोधित मृत्यु दर (प्रति हजार जनसंख्या में।)		25.1	12.1	9.8	8.1
शिशु मृत्यु दर		146	110	80	63
जन्म के समय जीवन प्रत्याशा (वर्षों में)	पुरुष	37.2	54.2	59.7	63.9
	महिला	36.2	54.7	60.9	66.9
साक्षरता दर (%)		16.67	43.57	52.21	65.20

जायेगी। साथ ही यह वांछित दिशा में सामाजिक परिवर्तन भी सुनिश्चित कर देगी।"

मानव पूँजी (शिक्षा और स्वास्थ्य) तथा आर्थिक संवृद्धि के बीच कारण-प्रभाव संबंध का स्पष्ट निरूपण कठिन होता है किंतु सारणी 5.1 में देख सकते हैं कि ये दोनों क्षेत्र में साथ-साथ संवृद्ध हुए हैं। संभवत: प्रत्येक क्षेत्र की संवृद्धि ने दूसरे क्षेत्र का संवृद्धि को सहारा दिया है।

हाल ही में भारतीय अर्थव्यवस्था पर दो स्वतंत्र अध्ययनों ने इस बात पर बल दिया है कि भारत अपनी मानव पूँजी निर्माण क्षमता के कारण बहुत तेजी से संवृद्धिशील हो पाएगा। ड्यूश नामक जर्मनी के बैंक ने अपनी 'विश्व स्तरीय संवृद्धि केंद्र'(Global Growth Centre) नामक रिपोर्ट (प्रकाशन 01.07.05) में कहा है कि भारत 2020 तक विश्व के चार प्रमुख विकास केंद्रों में से एक बन कर उभरेगा। उसी में आगे कहा गया, "हमारा व्यावहारिक अन्वेषण इस मत का पक्षधर है कि आज की अर्थव्यवस्थाओं में मानव पूँजी उत्पादन का सबसे महत्वपूर्ण कारक है। सकल घरेलू उत्पाद की वृद्धि में मानव पूँजी की वृद्धि का निर्णायक योगदान रहता है। भारत के संदर्भ में इसी रिपोर्ट में आगे कहा गया है। ''हमारी आशा है कि 2005-2020 की अवधि में भारत में 7 वर्ष से ऊपर शिक्षा के औसत वर्षों में 40 प्रतिशत की वृद्धि की संभावित है....।"



चित्र 5.4 *आगे का काम: भारत को ज्ञान अर्थव्यवस्था में परिवर्तित करना*

विश्व बैंक ने अपनी एक ताजा रिपोर्ट 'भारत और ज्ञान अर्थव्यवस्था-शक्तियों और अवसरों

बॉक्स 5.2 ज्ञानाधारित अर्थव्यवस्था के रूप में भारत

भारत में पिछले दशक से सॉफ्टवेयर उद्योग ने बहुत प्रगति का उत्साहजनक प्रदर्शन किया है। अब तो उद्यमी, नौकरशाह और राजनेता सभी इस बारे में अपने विचार अभिव्यक्त कर रहे हैं कि सूचना प्रौद्योगिकी का प्रयोग कर भारत किस प्रकार अपने आपको ज्ञानाधारित अर्थव्यवस्था में परिवर्तित कर सकता है। अर्थतंत्र में परिवर्तित कर सकता है। कुछ ग्रामीणों द्वारा ई-मेल (E-Mail) के प्रयोग के उदाहरणों को ऐसे व्यापक परिवर्तन का संकेत माना जा रहा है। इसी प्रकार से ई-प्रशासन को भविष्य के एक मार्ग के रूप में जाना जा रहा है। सूचना प्रौद्योगिकी का सही मूल्यमान तो वर्तमान आर्थिक विकास के स्तर पर निर्भर रहता है। सूचना प्रौद्योगिकी हमारी वर्तमान परिसंपत्तियों और प्रक्रियाओं को प्रभावपूर्ण उत्पादक और कौशलपूर्ण बना सकती है। पर सबसे पहले हमें मूल आधारभूत संरचना का विकास करना होगा।

का सदुपयोग' (India and the Knowledge Economy-Leveraging Strengths and Opportunities) में कहा है कि भारत अपने आपको एक ज्ञानाधारित अर्थव्यवस्था में परिवर्तित कर सकता है, यदि यह भी उतने ज्ञान का प्रयोग करे, जितना आयरलैंड करता है (आयरलैंड को विश्व ज्ञान अर्थव्यवस्था के श्रेष्ठ प्रयोग करने वाला देश माना जाता है।), तो निश्चय ही भारत की प्रतिव्यक्ति आय 2020 में वर्तमान अनुमान 1,000 अमेरिकी डॉलर से बढ़कर 3,000 डॉलर हो सकती है। इस रिपोर्ट में आगे कहा गया है कि भारतीय अर्थव्यवस्था में इस प्रकार के संक्रमण को संभव बनाने वाले सारे मुख्य तत्व जैसे कुशल श्रमिकों का विशाल समूह, सुचारु रूप से कार्य कर रहा लोकतंत्र तथा विस्तृत एवं विविधतापूर्ण वैज्ञानिक और प्रौद्योगिकीय आधारभूत सरंचनाएँ विद्यमान हैं। इस प्रकार इन दोनों ही रिपोर्टों में बताया गया है कि भारत में आगे चलकर मानव पूँजी निर्माण ही इसकी अर्थव्यवस्था को आर्थिक संवृद्धि के उच्च पथ पर ले जायेगा।

5.4 मानव पूँजी और मानव विकास

ये दोनों पारिभाषिक शब्द मिलते-जुलते भले ही प्रतीत होते हैं, पर इनके बीच स्पष्ट अंतर है। मानव पूँजी की अवधारणा शिक्षा और स्वास्थ्य को श्रम की उत्पादकता बढ़ाने का माध्यम मानती है। मानव विकास इस विचार पर आधारित है कि शिक्षा और स्वास्थ्य मानव कल्याण के अभिन्न अंग हैं, क्योंकि जब लोगों में पढ़ने-लिखने तथा सुदीर्घ स्वस्थ जीवन यापन की क्षमता आती है, तभी वह ऐसे अन्य चयन करने में सक्षम हो पाते हैं जिन्हें वे महत्वपूर्ण मानते हैं। मानव पूँजी का विचार मानव को किसी साध्य की प्राप्ति का साधन मानता है। यह साध्य उत्पादकता में वृद्धि का है। इस मतानुसार शिक्षा और स्वास्थ्य पर किया गया निवेश अनुत्पादक है, अगर उससे वस्तुओं और सेवाओं के निर्गत में वृद्धि न हो। मानव विकास के परिप्रेक्ष्य में मानव स्वयं साध्य भी है। भले ही शिक्षा स्वास्थ्य आदि पर निवेश से श्रम की उच्च उत्पादकता में सुधार नहीं हो किंतु इनके माध्यम से मानव कल्याण का संवर्धन तो होना ही चाहिए। अतः श्रम की उत्पादकता में सुधार के पक्ष को अनदेखा करते

हुए भी बुनियादी शिक्षा और बुनियादी स्वास्थ्य सुविधाओं का अपना अलग महत्व हो जाता है। इस दृष्टि से प्रत्येक व्यक्ति का बुनियादी शिक्षा और स्वास्थ्य सुविधाओं पर अधिकार सिद्ध हो जाता है। दूसरे शब्दों में, समाज के प्रत्येक सदस्य को साक्षर तथा स्वस्थ जीवन जीने का अधिकार होता है।

5.5 भारत में मानव पूँजी का निर्माण: अपार संभावनाएँ

इस खंड में हम भारत में मानव पूँजी निर्माण का विश्लेषण करने जा रहे हैं। हम पहले ही पढ़ चुके हैं कि मानव पूँजी निर्माण शिक्षा, स्वास्थ्य, कार्य स्थल प्रशिक्षण, प्रवसन और सूचना निवेश का परिणाम है। इनमें से शिक्षा और स्वास्थ्य मानव पूँजी निर्माण के दो सबसे महत्वपूर्ण स्रोत हैं। हम जानते हैं कि हमारे देश की प्रशासन व्यवस्था संघीय है जिसमें केंद्र, राज्य तथा स्थानीय निकाय (नगर निगम, नगर पालिका, ग्राम पंचायत आदि) हैं। भारत के संविधान ने सभी स्तर के प्रशासकीय निकायों के कार्यों, दायित्वों को भी

इन्हें कीजिए

- यदि एक निर्माण श्रमिक, नौकरानी, धोबी या फिर स्कूल का चपरासी बीमारी के कारण लंबे समय तक काम पर नहीं आ पाया हो तो जानने का प्रयास करें कि इन पर क्या प्रभाव पड़ा है:
  (क) उसके रोज़गार की सुरक्षा
  (ख) उसकी मजदूरी/वेतन
  इन प्रभावों के संभावित कारण क्या होंगे?

बहुत स्पष्ट रूप से निर्धारित किया है। इसी प्रकार शिक्षा और स्वास्थ्य दोनों पर व्यय तीनों ही प्रशासकीय स्तरों पर साथ-साथ वहन किया जाता है। स्वास्थ्य क्षेत्र का विस्तृत विश्लेषण आधारिक सरंचना के अध्याय में किया जा चुका है। अत: यहाँ हम केवल शिक्षा क्षेत्रक का विश्लेषण करेंगे।

क्या आप जानते हैं कि भारत में शिक्षा और स्वास्थ्य व्यवस्था की देख-रेख कौन करता है? भारत में शिक्षा क्षेत्रक के विश्लेषण से पूर्व यहाँ हम शिक्षा और स्वास्थ्य क्षेत्रकों में सरकार के हस्तक्षेप की आवश्यकता पर विचार करेंगे। हम जानते ही हैं कि शिक्षा और स्वास्थ्य की देखभाल निजी तथा सामाजिक लाभों को उत्पन्न करती है। इसी कारण इन सेवाओं के बाज़ार में निजी और सार्वजनिक संस्थाओं का अस्तित्व है। शिक्षा और स्वास्थ्य पर व्यय महत्वपूर्ण दीर्घकालिक प्रभाव डालते हैं और उन्हें आसानी से बदला नहीं जा सकता। इसलिए सरकारी हस्तक्षेप अनिवार्य है। मान लीजिए, जब भी किसी बच्चे को किसी स्कूल या फिर स्वास्थ्य देखभाल केंद्र में भर्ती करा दिया जाता है, जहाँ आवश्यक सुविधाएँ नहीं प्रदान की जा रही हों तो इससे पहले कि बच्चे को किसी अन्य संस्थान में स्थानांतरित किए जाने का निर्णय लिया जाए, पर्याप्त मात्रा में हानि हो चुकी होगी। यही नहीं, इन सेवाओं के व्यक्तिगत उपभोक्ताओं को सेवाओं की गुणवत्ताओं और लागतों के विषय में पूर्ण जानकारी नहीं होती। इन परिस्थितियों में शिक्षा और स्वास्थ्य सुविधाएँ उपलब्ध करा रही संस्थाएँ एकाधिकार प्राप्त

कर लेती हैं और शोषण करने लगती हैं। यहाँ सरकार की भूमिका का एक स्वरूप यह हो सकता है कि वह निजी सेवा प्रदायकों को उचित मानकों के अनुसार सेवाएँ देने तथा उनकी उचित कीमत उगाहने को बाध्य करे।

भारत में शिक्षा क्षेत्रक का नियमन संघ और राज्य स्तर पर शिक्षा मंत्रालय तथा राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद्, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग और अखिल भारतीय तकनीकी शिक्षा परिषद् जैसी संस्थाएँ कर रही हैं। स्वास्थ्य क्षेत्रक का नियमन संघ और राज्य स्तरों पर स्वास्थ्य मंत्रालय और विभिन्न संस्थाओं के स्वास्थ्य विभाग तथा भारतीय चिकित्सा अनुसंधान परिषद् आदि कर रही हैं।

हमारे जैसे विकासशील देश में जहाँ जनसंख्या का एक विशाल वर्ग गरीबी रेखा से नीचे जीवन बिता रहा है, हममें से कई लोग बुनियादी शिक्षा और स्वास्थ्य देखभाल सुविधाओं पर पर्याप्त व्यय नहीं कर सकते। यही नहीं हमारी अधिकांश जनता अति विशिष्ट स्वास्थ्य देखभाल और उच्च शिक्षा का भार वहन नहीं कर पाती। जब बुनियादी शिक्षा और स्वास्थ्य देखभाल सेवाओं को नागरिकों का अधिकार मान लिया जाता है, तो यह अनिवार्य है कि सभी सुपात्र नागरिकों को, विशेषकर सामाजिक दृष्टि से दलित रहे वर्गों को, सरकार ये सुविधाएँ नि:शुल्क प्रदान करे। शत-प्रतिशत साक्षरता और भारतीयों की औसत उपलब्धियों में प्राप्त वृद्धि के लिए केंद्र तथा राज्य दोनों सरकारें पिछले कई वर्षों से अपने शिक्षा क्षेत्रक पर व्यय में वृद्धि करती आ रही हैं।

5.6 शिक्षा पर सार्वजनिक व्यय में वृद्धि

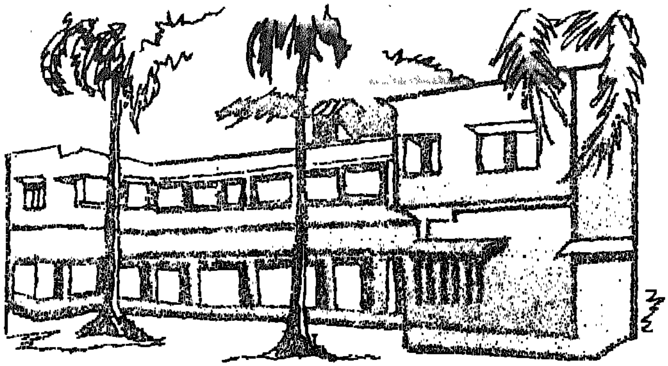
क्या आप जानते हैं कि सरकार शिक्षा पर कितना व्यय करती है? सरकार द्वारा किए गये शिक्षा पर कुल व्यय को अधिक सार्थक रूप से समझने के लिए हम इस व्यय को दो प्रकार से व्यक्त करेंगे–(क)कुल सरकारी व्यय में इसका प्रतिशत तथा (ख)सकल घरेलू उत्पाद में इसका प्रतिशत।

कुल सरकारी व्यय में शिक्षा पर व्यय का प्रतिशत सरकारी योजनाओं में शिक्षा के महत्त्व का सूचक है। सकल घरेलू उत्पाद में शैक्षिक व्यय का प्रतिशत यह व्यक्त करता है कि हमारी आय का कितना भाग देश के शैक्षिक विकास के लिए प्रतिबद्ध है। 1952 से 2002 के बीच

इन्हें कीजिए

➢ राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद्, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, अखिल भारतीय तकनीकी शिक्षा परिषद् और भारतीय आयुर्विज्ञान अनुसंधान परिषद् के उद्देश्यों तथा कार्यों के विषय में जानकारी का संकलन करें।

कुल सरकारी व्यय में शिक्षा पर व्यय 7.92 प्रतिशत से बढ़कर 13.17 प्रतिशत हो गया है। इसी प्रकार सकल घरेलू उत्पाद में इसका प्रतिशत 0.64 से बढ़ कर 4.02 प्रतिशत हो गया है। इस संपूर्ण समयावधि में शैक्षिक व्यय की वृद्धि समान नहीं रही है इसमें अनियमित रूप से उतार-चढ़ाव आते रहे हैं। यदि इस सरकारी व्यय के साथ हम व्यक्तियों के द्वारा किया गया निजी व्यय तथा परोपकारी (धर्मार्थ) संस्थाओं



चित्र 5.5 *शैक्षिक आधारिक सरंचनाओं में निवेश अपरिहार्य*

जैसे-जैसे हम विद्यालय शिक्षा का प्रसार करेंगें तो हमें उच्चतर शैक्षिक संस्थानों से प्रशिक्षित और अधिक शिक्षकों की आवश्यकता होगी। अत: शिक्षा के सभी स्तरों पर व्यय में वृद्धि करना चाहिए।

राज्यों में होने वाले प्रतिव्यक्ति शिक्षा व्यय में काफी अंतर है। जहाँ लक्षद्वीप में इसका उच्च-स्तर 3,440 रु है, वहीं बिहार में यह मात्र 386 रु है। इस प्रकार की विषमताओं के कारण ही विभिन्न राज्यों में शिक्षा के अवसरों और शैक्षिक उपलब्धियों के स्तर में बहुत भारी अंतर हो जाता है।

के शैक्षिक व्यय को शामिल कर लें तो शिक्षा पर कुल व्यय और अधिक होना चाहिए। कुल शिक्षा व्यय का एक बहुत बड़ा हिस्सा प्राथमिक शिक्षा पर खर्च होता है। उच्चतर/तृतीयक शैक्षिक संस्थाओं (उच्च शिक्षा के संस्थानों जैसे- महाविद्यालयों, बहुतकनीकी संस्थानों और विश्वविद्यालयों आदि) पर होने वाला व्यय सबसे कम है। यद्यपि औसत रूप से सरकार उच्चतर शिक्षा पर बहुत कम व्यय करती है, किंतु प्रति विद्यार्थी उच्चतर शिक्षा पर व्यय प्राथमिक शिक्षा की तुलना में अधिक है। इसका, अर्थ यह नहीं है कि वित्तीय संसाधनों को उच्चतर शिक्षा से प्राथमिक शिक्षा की ओर कर दिया जाना चाहिए।

विभिन्न आयोगों के द्वारा शिक्षा व्यय के वांछित स्तर के साथ यदि शिक्षा व्यय की तुलना की जाय तो इसकी अपर्याप्तता समझ में आ सकती है। 40 वर्ष पूर्व (1964-66) नियुक्त शिक्षा आयोग ने सिफारिश की थी कि शैक्षिक उपलब्धियों की संवृद्धि दर में उल्लेखनीय सुधार लाने के लिए सकल घरेलू उत्पाद का कम-से-कम 6 प्रतिशत शिक्षा पर खर्च किया जाना चाहिए। दिसंबर 2002 में भारत सरकार ने

इन्हें कीजिए

- विभिन्न स्तरों पर विद्यालय छोड़ने वाले छात्रों का अध्ययन कीजिए।
  - (क) प्राथमिक स्तर के विद्यालय छोड़ने वाले छात्र।
  - (ख) आठवीं कक्षा के बाद छोड़ने वाले छात्र।
  - (ग) दसवीं कक्षा के बाद छोड़ने वाले छात्र। कारण ज्ञात कीजिए तथा कक्षा में चर्चा कीजिए।
- विद्यालय छोड़ने वाले छात्रों से बाल श्रम को बढ़ावा मिल रहा है। बताएँ कि इससे कैसे मानव-पूँजी की हानि हो रही है?

86वें संविधान संशोधन द्वारा 6-14 आयु वर्ग के बच्चों के लिए नि:शुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा को मौलिक अधिकार घोषित किया है। 1998 में भारत सरकार द्वारा नियुक्त तापस मजूमदार समिति ने अनुमान लगाया था कि देश के 6-14 आयु वर्ग के सभी बच्चों को स्कूली शिक्षा व्यवस्था में शामिल करने के लिए (1998-99 से 2000-07) के दस वर्षों की अवधि में लगभग 1.3 लाख करोड़ रु व्यय करना होगा। सकल घरेलू उत्पाद के 6 प्रतिशत के स्तर की तुलना में वांछित वर्तमान 4 प्रतिशत व्यय का स्तर बहुत कम है। आने वाले वर्षों में 6 प्रतिशत के लक्ष्य तक पहुँचने की आवश्यकता है, जैसा कि सिद्धांत रूप में स्वीकार किया गया है।

संघीय बजट 2004-05 में सभी केंद्रीय करों पर 2 प्रतिशत 'शिक्षा अधिभार' लगाया गया है। सरकार ने 4,000-5,000 करोड़ रु राजस्व प्राप्त करने का अनुमान लगाया है और संपूर्ण राशि को प्राथमिक शिक्षा पर व्यय करने हेतु सुरक्षित रखा है। साथ ही सरकार ने उच्च शिक्षा संवर्धन के लिए भी एक विशाल धन राशि स्वीकृत कराने की बात की है। उच्च शिक्षार्थियों के लिए एक नयी ऋण योजना की भी घोषणा की गयी है।

भारत में शैक्षिक उपलब्धियाँ

सामान्यतया किसी देश की शैक्षिक उपलब्धियों का आकलन वयस्क साक्षरता स्तर, प्राथमिक शिक्षा संपूर्ति दर और युवा साक्षरता दर द्वारा किया जाता है। सारणी 5.2 में भारत की इन दरों के वर्ष 1990 तथा 2000 के आँकड़े दिये गये हैं।

5.7 भविष्य की संभावनाएँ

सब के लिए शिक्षा—अभी भी एक सपना है। यद्यपि वयस्क और युवा साक्षरता दरों में सुधार हो रहा है, किंतु आज भी देश में निरक्षरों की संख्या उतनी ही है जितनी स्वाधीनता के समय भारत की जनसंख्या थी। भारत की संविधान सभा ने 1950 में संविधान को पारित करते समय संविधान के नीति निदेशक तत्वों में स्पष्ट किया था कि सरकार संविधान पारित होने के दस साल के अंदर 14 वर्ष की आयु के बच्चों के लिए नि:शुल्क और अनिवार्य शिक्षा का

सारणी 5.2

भारत में शैक्षिक उपलब्धियाँ

विवरण	1990	2000
1. वयस्क साक्षरता दर (15 वर्ष से अधिक आयुवर्ग में साक्षरों का प्रतिशत)		
1.1 पुरुष	61.9	68.4
1.2 महिलाएँ	37.9	45.4
2. प्राथमिक शिक्षा संपूर्तिदर (संबद्ध वर्ग प्रतिशत)		
2.1 पुरुष	78	85
2.2 महिलाएँ	61	69
3. युवा साक्षरता दर (15 से 24 आयु वर्ग की जनसंख्या का प्रतिशत)		
3.1 पुरुष	76.6	79.7
3.2 महिलाएँ	54.2	64.8

प्रावधान करेगी। इस लक्ष्य को प्राप्त कर लेते तो अब तक शत-प्रतिशत साक्षरता हो गई होती।

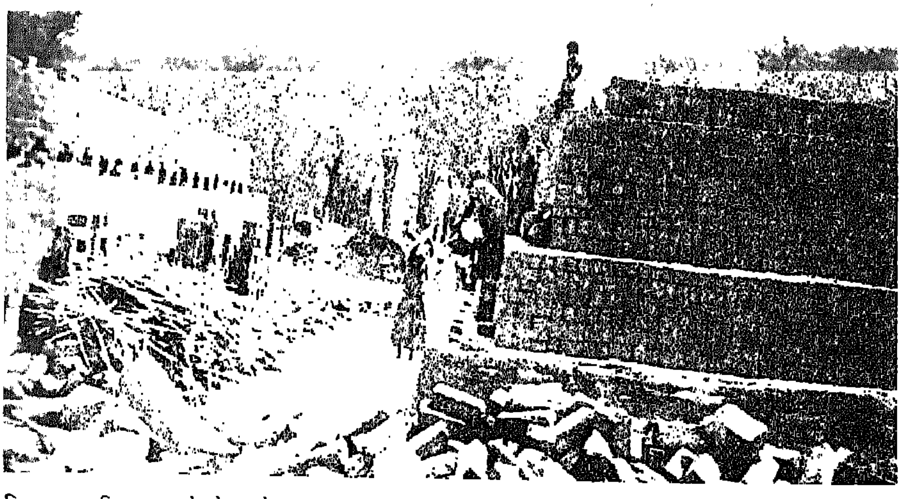
लिंग समता–पहले से बेहतर: अब साक्षरता में पुरुषों और महिलाओं के बीच का अंतर कम हो रहा है जो लिंग-समता की दिशा में एक सकारात्मक विकास है। नारी शिक्षा को भारत में और प्रोत्साहन दिए जाने के कई कारण हैं। जैसे, शिक्षा नारी की आर्थिक स्वतंत्रता और सामाजिक स्तर में सुधार और साथ ही स्त्री शिक्षा, प्रजनन दर और स्त्रियों व बच्चों के स्वास्थ्य देखभाल पर अनुकूल प्रभाव डालती है। अत: हमें साक्षरता स्तर सुधारने के अपने प्रयासों में शिथिलता नहीं आने देनी चाहिए। अभी हमें शत-प्रतिशत वयस्क साक्षरता दर प्राप्त करने के लिए अनेक मंजिलें को पार करनी है।

उच्च शिक्षा–लेने वालों की कमी: भारत में शिक्षा का पिरामिड बहुत ही नुकीला है, जो



चित्र 5.7 *उच्च शिक्षा: कम प्राप्तकर्त्ता*

दर्शाता है कि उच्चतर शिक्षा स्तर तक बहुत कम लोग पहुँच पाते हैं। यही नहीं, शिक्षित युवाओं की बेरोजगारी दर भी उच्चतम है। राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण संगठन के आँकड़ों के अनुसार (माध्यमिक या उससे अधिक) शिक्षा प्राप्त युवाओं में वर्ष 2000 में बेरोजगारी दर 7.1 प्रतिशत थी। जबकि केवल प्राथमिक



चित्र 5.6 *विद्यालय छोड़ने वाले छात्र: बाल श्रम को बढ़ावा देते हैं जिससे मानव पूँजी का क्षय होता है*

शिक्षा प्राप्त वर्ग में बेरोजगारी मात्र 1.2 प्रतिशत पायी गयी। अतः सरकार को उच्च शिक्षा के लिए अधिक धन का आबंटन करना चाहिए तथा उच्च शिक्षा संस्थानों के स्तर में सुधार लाना चाहिए ताकि वहाँ पढ़ रहे छात्र रोजगार योग्य कौशल प्राप्त कर सकें।

5.8 निष्कर्ष

मानव पूँजी निर्माण और मानव विकास के आर्थिक सामाजिक लाभों से तो सभी परिचित हैं। भारत में केंद्र और राज्य सरकारें शिक्षा तथा स्वास्थ्य क्षेत्रकों के विकास के लिए पर्याप्त वित्तीय व्यवस्था का प्रावधान करती आ रही हैं। शिक्षा और स्वास्थ्य सेवाएँ समाज के सभी वर्गों को सुनिश्चित रूप से सुलभ करायी जानी चाहिए, ताकि आर्थिक संवृद्धि के साथ-साथ समता की प्राप्ति भी हो सके। भारत के पास वैज्ञानिक और तकनीकी जन–शक्ति है। समय की माँग है कि गुणात्मकता में सुधार करें तथा इस प्रकार की परिस्थितियों का भी निर्माण करें कि इन्हें अपने ही देश में पर्याप्त रूप से प्रयुक्त किया जा सके।

पुनरावर्तन

- शिक्षा में निवेश मानव को मानव पूँजी में परिवर्तित करता है। इस प्रकार मानव पूँजी बढ़ी हुई उत्पादकता का प्रतिनिधित्व करती है। यह एक अर्जित योग्यता है और समझ बूझकर किए गए निवेशगत निर्णयों का परिणाम है, जो भविष्य में आय के स्रोतों में वृद्धि की अपेक्षा से किए जाते हैं।
- शिक्षा में निवेश, कार्य स्थल प्रशिक्षण, स्वास्थ्य, प्रवसन और सूचना मानव पूँजी निर्माण के स्रोत हैं।
- भौतिक पूँजी की संकल्पना मानव पूँजी की संकल्पना निर्धारण का आधार है। पूँजी निर्माण के दोनों प्रकारों में कुछ समानताएँ और कुछ विषमताएँ हैं।
- मानव पूँजी निर्माण में निवेश को प्रभावपूर्ण तथा संवृद्धि बढ़ाने वाला माना जाता है।
- मानव विकास इस विचार पर आधारित है कि शिक्षा और स्वास्थ्य दोनों मनुष्यों के कल्याण के लिए अभिन्न हैं, क्योंकि जब लोगों के पास पढ़ने और लिखने तथा दीर्घायु तथा स्वस्थ जीवन की योग्यता होगी, तभी वे उन मूल्यों का मापन करने में सक्षम होंगे जिनको वे महत्व देते हैं।
- कुल सरकारी व्यय में शिक्षा पर किये जाने वाले व्यय का प्रतिशत सरकार द्वारा शिक्षा को दिए गए महत्व को दर्शाता है।



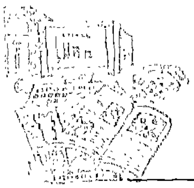
अभ्यास

1. किसी देश में मानवीय पूँजी के दो प्रमुख स्रोत क्या होते हैं?
2. किसी देश की शैक्षिक उपलब्धियों के दो सूचक क्या होंगे?
3. भारत में शैक्षिक उपलब्धियों में क्षेत्रीय विषमताएँ क्यों दिखाई दे रही हैं।
4. मानव पूँजी निर्माण और मानव विकास के भेद को स्पष्ट करें।
5. मानव पूँजी की तुलना में मानव विकास किस प्रकार से अधिक व्यापक है?
6. मानव पूँजी के निर्माण में किन कारकों का योगदान रहता है?
7. शिक्षा और स्वास्थ्य क्षेत्र को नियंत्रित करने वाले दो-दो सरकारी संगठनों के नाम बताइए।
8. शिक्षा को किसी राष्ट्र के विकास में एक महत्वपूर्ण आगत माना जाता है। क्यों?
9. पूँजी निर्माण के निम्नलिखित स्रोतो पर चर्चा कीजिए।

   (क) स्वास्थ्य आधारिक संरचना (ख) प्रवसन पर व्यय
10. मानव संसाधनों के प्रभावी प्रयोग के लिए स्वास्थ्य और शिक्षा पर व्यय संबंधी जानकारी प्राप्त करने की आवश्यकता का निरूपण करें।
11. मानव पूँजी में निवेश आर्थिक संवृद्धि में किस प्रकार सहायक होता है।
12. विश्व भर में औसत शैक्षिक स्तर में सुधार के साथ-साथ विषमताओं में कमी की प्रवृत्ति पायी गयी है। टिप्पणी करें।
13. किसी राष्ट्र के आर्थिक विकास में शिक्षा की भूमिका का विश्लेषण करें।
14. समझाइए कि शिक्षा में निवेश आर्थिक संवृद्धि को किस प्रकार प्रभावित करता है।
15. किसी व्यक्ति के लिए कार्य के दौरान प्रशिक्षण क्यों आवश्यक होता है?
16. मानव पूँजी और आर्थिक संवृद्धि के बीच संबंध स्पष्ट करें।
17. भारत में स्त्री शिक्षा के प्रोत्साहन की आवश्यकता पर चर्चा करें।
18. शिक्षा और स्वास्थ्य क्षेत्रों में सरकार के विविध प्रकार के हस्तक्षेपों के पक्ष में तर्क दीजिए।
19. भारत में मानव पूँजी निर्माण की मुख्य समस्याएँ क्या हैं?
20. क्या आपके विचार में सरकार को शिक्षा और स्वास्थ्य देखभाल संस्थानों में लिए जाने वाले शुल्कों की संरचना निर्धारित करनी चाहिए। यदि हाँ, तो क्यों?

अतिरिक्त गतिविधियाँ

1. पता करें कि मानव विकास सूचक की रचना कैसे की जाती है। मानव विकास सूचक के अनुसार भारत की विश्व में क्या स्थिति है?
2. क्या निकट भविष्य में भारत एक ज्ञानाधारित अर्थव्यवस्था बनने जा रहा है? कक्षा में इस पर चर्चा करें।
3. सारणी 5.2 के आँकड़ों की व्याख्या करें।
4. एक शिक्षित व्यक्ति के रूप में आप शिक्षा प्रसार में क्या योगदान देंगे। (उदाहरणार्थ, एक व्यक्ति एक शिक्षा)
5. शिक्षा, स्वास्थ्य और श्रम संबंधी सूचना देने वाले स्रोतों की सूची बनाइए।
6. मानव संसाधन विकास मंत्रालय की वार्षिक रिपार्टों को पढ़कर उनका सार संक्षेप करें। केंद्रीय 'आर्थिक सर्वेक्षण के सामाजिक क्षेत्रक' अध्याय को पढ़ें।



संदर्भ

पुस्तकें

बेकर, ग्रे एस. 1964. *ह्यूमन कैपिटल 2वॉ एडिशन*, कोलम्बिया यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यू यॉर्क।

फ्रीमेन रिचर्ड, 1976. द *ओवरएजुकेटिड अमेरिकन*, एकेडमिक प्रेस, न्यूयॉर्क।

सरकारी रिपोर्ट

'भारत में शिक्षा' मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार (पिछले कुछ वर्षों की रिपोर्ट देखें)।

भारत में शिक्षा विषयक जानकारी देने वाली कुछ वेबसाइट्स

www.education.nic.in

www.cbse.nic.in

www.ugc.ac.in

www.aicte.ernet.in

www.ncert.nic.in

स्वास्थ्य क्षेत्र विषयक जानकारी के लिए

www.mohfw.nic.in

www.icmv.nic.in

भारतीय अर्थव्यवस्था संबंधित जानकारी के लिए

www.finmin.nic.in

6

ग्रामीण विकास

इस अध्याय को पढ़ने के बाद आप

- ग्रामीण विकास और उससे जुड़े महत्त्वपूर्ण मुद्दों को समझ सकेंगे;
- ग्रामीण क्षेत्रों का विकास भारत के सर्वांगीण विकास की दृष्टि से क्यों महत्वपूर्ण है, यह जानेंगे;
- ग्रामीण विकास में साख और विपणन की महत्त्वपूर्ण भूमिका को समझेंगे;
- आजीविका के स्थायित्व के लिए उत्पादक गतिविधियों में विविधता के महत्व को समझेंगे;
- धारणीय विकास में जैविक कृषि के महत्व को समझेंगे।

मिट्टी की जुताई करने वाले ही अधिकार के साथ जीते हैं, शृंखला के शेष लोग उनके आश्रय की रोटी खाते हैं।

-थिरुवलूवर

6.1 परिचय

अध्याय 4 में हमने पढ़ा कि किस प्रकार निर्धनता भारत के समक्ष एक बहुत बड़ी चुनौती है। हमने यह भी जाना कि हमारे अधिकतर निर्धन देशवासी ग्रामीण क्षेत्रों में रहते हैं और वहाँ उन्हें जीवन की मूलभूत आवश्यकताएँ भी सुलभ नहीं हो पाती हैं।

ग्रामीण क्षेत्रकों में कृषि ही आजीविका का मुख्य साधन है। कभी महात्मा गाँधी ने एक बार कहा था कि भारत की वास्तविक प्रगति का तात्पर्य शहरी औद्योगिक केंद्रों के विकास से नहीं, बल्कि मुख्य रूप से गाँवों के विकास से है। ग्रामीण विकास ही राष्ट्रीय विकास का केंद्र है। यह विचार आज भी उतना ही प्रसंगिक है। ऐसा क्यों है? हम अपने चारों ओर बड़े उद्योगों तथा सूचना-प्रौद्योगिकी केंद्रों से लैस शहरों को प्रगति करते हुए देखते हैं, फिर भी ग्रामीण विकास को ही इतना अधिक महत्व क्यों दिया जाता है? इसका उत्तर है कि आज भी भारत की दो-तिहाई जनसंख्या कृषि पर आश्रित है, जिसकी उत्पादकता इतनी कम है कि उन सबका निर्वाह भी नहीं हो पाता। इसी कारण से देश की एक-तिहाई जनता अभी भी घोर निर्धनता में रहती है। यदि हम भारत की वास्तविक उन्नति चाहते हैं, तो हमें विकसित ग्रामीण भारत का निर्माण करना होगा। ग्रामीण विकास से क्या तात्पर्य है?

6.2 ग्रामीण विकास क्या है?

'ग्रामीण विकास' एक व्यापक शब्द है। यह मूलतः ग्रामीण अर्थव्यवस्था के उन घटकों के विकास पर ध्यान केंद्रित करने पर बल देता है जो ग्रामीण अर्थव्यवस्था के सर्वांगीण विकास में पिछड़ गए हैं। भारत के विकास के लिए जिन क्षेत्रों में नई और सार्थक पहल करने की आवश्यकता बनी हुई है, वे इस प्रकार हैं;

मानव संसाधनों का विकास जिसमें निम्नलिखित सम्मिलित है:

- साक्षरता, विशेषकर नारी साक्षरता, शिक्षा और कौशल का विकास
- स्वास्थ्य, जिसमें स्वच्छता और जन-स्वास्थ्य दोनों शमिल हैं।
- भूमि-सुधार
- प्रत्येक क्षेत्र के उत्पादक संसाधनों का विकास
- आधारिक संरचना का विकास जैसे- बिजली, सिंचाई, साख(ऋण), विपणन, परिवहन सुविधाएँ-ग्रामीण सड़कों के निर्माण सहित राजमार्ग की पोषक सड़कें बनाना, कृषि अनुसंधान विस्तार और सूचना प्रसार की सुविधाएँ।

➢ निर्धनता निवारण और समाज के कमजोर वर्गों की जीवन दशाओं में महत्वपूर्ण सुधार के विशेष उपाय, जिसमें उत्पादक रोजगार के अवसर उपलब्ध कराने पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए।

इसका अर्थ होगा कि अनाजों, फल, सब्जियों के उत्पादन में लगे कृषक समुदायों को उत्पादकता बढ़ाने में विशेष सहायता देनी होगी। गैर-कृषि उत्पादक क्रियाकलापों जैसे, खाद्य-प्रसंस्करण, स्वास्थ्य सुविधाओं की अधिक उपलब्धता, घर और कार्यस्थल पर स्वच्छता संबंधी सुविधाएँ तथा सभी के लिए शिक्षा को सर्वोच्च वरीयता ताकि तीव्र ग्रामीण विकास हो सके।

हमने पिछले अध्याय में यह भी देखा है कि यद्यपि सकल घरेलू उत्पाद में कृषि क्षेत्र का योगदान कम हो रहा है, किंतु कृषि पर आश्रित जनसंख्या अनुपात में कोई महत्वपूर्ण परिवर्तन नहीं हुआ। यही नहीं, नए सुधार कार्यक्रम के क्रियान्वयन के बाद तो 1990 के दशक में कृषि की संवृद्धि दर घट कर 2.3 प्रतिशत ही रह गई, जो पिछले वर्षों से भी कम है। अनेक विद्वान 1991 के बाद से सार्वजनिक निवेश में आई गिरावट को इसका कारण मानते हैं। उनका यह भी विचार है कि अपर्याप्त आधारिक संरचना, उद्योग तथा सेवा क्षेत्रक में वैकल्पिक रोजगार के अवसरों के अभाव और अनियत रोजगार में वृद्धि आदि के कारण भी ग्रामीण विकास में बाधाएँ आ रही हैं। इन सभी परिघटनाओं के प्रभाव की झलक देश के किसानों में बढ़ती हुई दुर्दशा और असहायता के रूप में देखा जा सकता है। इसी परिप्रेक्ष्य में हम ग्रामीण भारत के साख और विपणन व्यवस्था, कृषि गतिविधियों के स्वरूप में विविधता तथा धारणीय विकास को बढ़ावा देने में जैविक कृषि की भूमिका आदि महत्वपूर्ण आयामों पर आलोचनात्मक चर्चा करेंगे।

इन्हें कीजिए

- अपने क्षेत्र के समाचार पत्रों का अध्ययन कर मासिक आधार पर उनमें उठाई गई ग्रामीण समस्याओं से जुड़े प्रश्नों तथा सुझाए गए उपायों की जानकारी संग्रह करें। आप निकट के किसी गाँव में जाकर उस क्षेत्र के जन समुदाय की समस्याओं की पहचान करें।
- सरकार की वेबसाइट Http: www.rural.nic,in से हाल ही में प्रारंभ की गई योजनाओं तथा उनके उद्देश्यों की सूची तैयार करें।

6.3 ग्रामीण क्षेत्रकों में साख और विपणन

साख: कृषि अर्थव्यवस्था की संवृद्धि समय-समय पर कृषि और गैर-कृषि कार्यों में उच्च उत्पादकता प्राप्त करने के लिए मुख्य रूप से पूँजी के प्रयोग पर निर्भर करती है। खेतों में बीजारोपण से फसल पकने के बाद आमदनी होने तक की अवधि बहुत लंबी होती है। इसी कारण किसानों को बीज, उर्वरक, औजार आदि के लिए ऋण लेने पड़ते हैं। यही नहीं, उन्हें अपने पारिवारिक निर्वाह खर्च और शादी, मृत्यु तथा धार्मिक अनुष्ठानों के लिए कर्ज़ का ही आसरा रहता है।

स्वतंत्रता के समय तक महाजन और व्यापारी छोटे/सीमांत किसानों और भूमिहीन मजदूरों से बहुत ऊँची दर से ब्याज वसूलने और ऋण-खाते में हेराफेरी का ऐसा कुचक्र चला रहे थे, कि वे कभी भी ऋणपाश से मुक्त नहीं हो पाते थे। भारत ने 1969 में सामाजिक बैंकिंग आरंभ कर इस व्यवस्था में एक बड़ा बदलाव लाने का प्रयास किया। ग्रामीण साख आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए बहु-संस्था व्यवस्था का

सहारा लिया गया। आगे चल कर 1982 में राष्ट्रीय कृषि और ग्रामीण विकास बैंक [नाबार्ड] की स्थापना की गई। यह बैंक संपूर्ण ग्रामीण वित्त व्यवस्था के समन्वय के लिए एक शीर्ष संस्थान है। हरित क्रांति ने भी ग्रामीण साख व्यवस्था में बहुत बड़े परिवर्तन का सूत्रपात किया है, क्योंकि इसने ग्रामीण विकास के विभिन्न घटकों को उत्पादक ऋणों की ओर उन्मुख कर विविधता प्रदान की।

आज ग्रामीण बैंक की संस्थागत संरचना में अनेक बहु-एजेन्सी संस्थान जैसे, व्यावसायिक बैंक, क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक, (आर.आर.बी.)सहकारी तथा भूमि विकास बैंक सम्मिलित हैं। इस बहुसंस्था व्यवस्था की रचना का ध्येय सस्ती ब्याज दरों पर पर्याप्त ऋण की पूर्ति करना है। हाल ही में औपचारिक साख व्यवस्था में रह गई कमियों को दूर करते हुए स्वयं सहायता समूहों (एस.एच.जी.) का भी ग्रामीण साख व्यवस्था में प्रादुर्भाव हुआ है, क्योंकि औपचारिक साख व्यवस्था न केवल अपर्याप्त थी, बल्कि ग्रामीण सामाजिक तथा सामुदायिक विकास में पूरी तरह समन्वित साबित हुई है। चूँकि इसके लिए ऋणाधार की आवश्यकता थी, अतः बहुसंख्य ग्रामीण परिवारों का एक बड़ा अनुपात इससे अपने आप वंचित रह गए। अपने प्रत्येक सदस्य में न्यूनतम अंशदान द्वारा सदस्यों में कम अनुपात में मितव्ययिता की भावना बढ़ाता है।

बॉक्स 6.1 निर्धन महिलाओं का बैंक

केरल प्रांत में महिलाओं की ओर उन्मुख एक निर्धनता निवारक सामुदायिक कार्यक्रम चलाया जा रहा है। इसका नाम 'कुटुंब श्री' है। 1995 में सरकारी बचत एवं साख सोसाइटी के रूप में गरीब महिलाओं के लिए इस बचत बैंक की स्थापना की गई थी। इस बचत एवं साख सोसाइटी ने छोटी-छोटी बचतों को मिलाकर एक करोड़ रुपये की विशाल राशि एकत्र कर ली। इसे अब सदस्य संख्या और संगठित बचत के आधार पर एशिया का विशालतम अनौपचारिक बैंक माना जाता है।

स्रोत: *www. kudumbashree.com. आप भी इस संस्था की वेबसाइट से इसके द्वारा प्रारंभ उठाए गए अन्य कदमों की जानकारी पा सकते हैं। क्या आप उन प्रयासों की सफलता के लिए उत्तरदायी कारकों की पहचान कर सकते हैं?*

इन्हें कीजिए

- आप अपने आस-पास के क्षेत्र में पायेंगे कि कुछ स्वयंसेवी संस्थाएँ ऋणों का प्रावधान कर रही हैं। इनकी कुछ बैठकों में जाएँ। इस संस्था के कार्यकलापों पर एक विवरण तैयार करें। इस विवरण में आप उल्लेख करें कि संस्था कब आरम्भ हुई थी, इसमें कितने सदस्य हैं, कितनी बचत राशि है, किस तरह के ऋण प्रदान किए जाते हैं और इस ऋण का उपयोग कैसे होता है।
- आप यह भी पायेंगे कि स्वरोजगार के लिए प्रदत्त ऋणों का उपयोग कुछ लोग अन्य कार्यों में कर रहे हैं। ऐसे कुछ कर्जदारों से मिलें और उन्हें इस ऋण द्वारा कोई स्वरोजगार संबंधी क्रियाकलाप आरंभ करने के लिए प्रोत्साहित करें।

इस प्रकार एकत्र राशि में से जरूरतमंद सदस्यों को ऋण दिया जाता है। उस ऋण की राशि छोटी-छोटी (आसान) किश्तों में लौटाई जाती है। ब्याज की दर भी उचित रखी जाती है। मार्च, 2003 के अंत तक लगभग 7 लाख साख प्रदान करने वाले स्वयं सहायता समूह देश के अनेक भागों में कार्य कर रहे थे। इस प्रकार की साख उपलब्धता को **अतिलघु साख कार्यक्रम** भी कहा जाता है। इस प्रकार से स्वयं सहायता समूहों ने महिलाओं के सशक्तीकरण में सहायता की है। किंतु, अभी तक इन ऋण-सुविधाओं का प्रयोग किसी न किसी प्रकार के उपयोग के लिए ही हो रहा है- कृषि कार्यों के लिए बहुत कम राशि ही ली जा रही है।

ग्रामीण बैंकिंग: एक आलोचनात्मक मूल्यांकन: बैंकिंग व्यवस्था के त्वरित प्रसार का ग्रामीण कृषि और गैर कृषि उत्पादन, आय और रोजगार पर सकारात्मक प्रभाव रहा है, विशेष रूप से हरित क्रांति के बाद से किसानों को साख सेवाएँ और सुविधाएँ देने तथा उनकी उत्पादन आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अनेक प्रकार के ऋण देने में इन्होंने सहायता दी है। अब तो अकाल बीते युग की बात हो गई है; हम खाद्य सुरक्षा की उस मंजिल पर पहुँच चुके हैं कि हमारे अपने सुरक्षित भंडार भी बहुत पर्याप्त माने जा रहे हैं। किंतु, अभी भी हमारी बैंकिंग व्यवस्था उचित नहीं बन पाई है। इसका प्रमुख कारण औपचारिक साख संस्थाओं का चिरकालिक निम्न निष्पादन और किसानों द्वारा बड़े पैमाने पर किश्तों को नहीं चुका पाना है।

संभवत: व्यावसायिक बैंकों को छोड़कर अन्य सभी औपचारिक साख संस्थाएँ जमा प्रवाह की संस्कृति को विकसित नहीं कर पायी हैं। न ये सही ऋण चाहने वालों को ऋण दे पाती हैं और न ही इनकी कोई प्रभावपूर्ण ऋण वसूली व्यवस्था बन पाई है। कृषि ऋणों की वसूली नहीं हो पाने की समस्या बहुत गंभीर है। अनेक अध्ययनों से ज्ञात हुआ है कि लगभग 50

इन्हें कीजिए

- यदि आप ग्रामीण क्षेत्रों में रहते हैं, तो संभवत: आपके पास-पड़ोस में भी ऐसी कोई त्रासदी हुई हो -या आप दूरदर्शन या समाचार-पत्रों के माध्यम से किसानों द्वारा पिछले कुछ वर्षों में आत्महत्या किए जाने की घटनाओं से परिचित अवश्य होंगे। इनमें से अधिकांश किसानों ने कृषि और अन्य प्रयोजन के लिए ऋण ले रखे थे। फसल खराब होने, आय अपर्याप्त रहने तथा वैकल्पिक रोजगार का सहारा नहीं होने पर जब वे ऋण चुका पाने में असमर्थ हो गए, तो उन्होंने जीवन को ही समाप्त कर उस ऋण से छुटकारा पाने का प्रयास किया। ऐसे मामलों के बारे में जानकारी एकत्र कर कक्षा में चर्चा करें।
- ग्रामीण क्षेत्रों में कार्य कर रहे बैंकों में जाएँ। ये प्राथमिक कृषि सहकारी बैंक, भूमि विकास बैंक, क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक या जिला सहकारी बैंक हो सकते हैं। इनसे जानकारी एकत्र करें कि कितने ग्रामीण परिवारों ने इनसे ऋण लिया हुआ है। सामान्यत: कितनी राशि उधार ली जाती है, किस प्रकार के लोग ऋण लेते हैं, ब्याज दर कितनी रहती है और अभी तक कुल कितनी राशि बकाया है।
- जिन किसानों ने सहकारी बैंकों से ऋण लिए हैं, यदि वे फसल बर्बाद होने या अन्य कारणों से उन्हें लौटा नहीं पा रहे हों तो उनका ऋण माफ कर देना चाहिए, नहीं तो किसान आत्महत्या जैसा कठोर निर्णय ले सकते हैं। क्या आप इससे सहमत हैं? चर्चा करें।

प्रतिशत व्यतिक्रामी 'इच्छित व्यतिक्रामी' है। ये व्यक्ति ग्रामीण बैंक व्यवस्था के सुचारु संचालन के लिए एक गंभीर खतरा बन चुके हैं, जिसे नियंत्रित करने की आवश्यकता है।

इसलिए, सुधारों के बाद से बैंकिंग क्षेत्रक के प्रसार एवं उन्नति में कमी हुई है। स्थिति में सुधार लाने के लिए बैंकों को अपनी कार्य-प्रणाली में बदलाव लाने की ज़रूरत है, ताकि वे केवल ऋणदाता और ऋण लेने वालों के बीच में एक सेतु का काम करें। उन्हें किसानों को मितव्ययिता के बारे में बताना चाहिए, जिससे कि वे अपने वित्तीय स्रोतों का कुशलतम प्रयोग कर सकें।

6.4 कृषि विपणन व्यवस्था

कभी आपने सोचा है, कि हम जो अनाज, फल सब्जियाँ आदि रोज खाते हैं वे देश के अलग-अलग क्षेत्रों से किस प्रकार नियमित रूप से हम तक पहुँचाये जाते हैं? इन्हें हम तक पहुँचाने का माध्यम बाज़ार व्यवस्था है। कृषि विपणन वह प्रक्रिया है जिससे देश भर में उत्पादित कृषि पदार्थों का संग्रह, भंडारण, प्रसंस्करण, परिवहन, पैकिंग, वर्गीकरण और वितरण आदि किया जाता है।

स्वतंत्रतापूर्व व्यापारियों को अपना उत्पादन बेचते समय किसानों को तोल में हेरा फेरी तथा खातों में गड़बड़ी का सामना करना पड़ता था। प्राय: किसानों को बाज़ार में प्रचलित भावों का पता नहीं होता था और उन्हें अपना माल बहुत कम कीमत पर बेचना पड़ता था। उनके पास अपना माल रखने के लिए अच्छी भंडारण सुविधाएँ नहीं होती थीं, अत: वे अच्छे दाम मिलने तक माल की बिक्री को स्थगित नहीं रख पाते थे। क्या आप जानते हैं कि आज भी 10 प्रतिशत से अधिक कृषि उत्पादन भंडारण सुविधाओं के अभाव के कारण क्षतिग्रस्त हो रहा है? इसीलिए सरकार को निजी व्यापारियों को नियंत्रित करने के लिए बाज़ार में हस्तक्षेप करने को बाध्य होना पड़ा है।

आइए, हम कृषि विपणन के विभिन्न पहलुओं को सुधारने के लिए किए गए चार प्रमुख उपायों को विस्तारपूर्वक समझने का प्रयास करें। पहला कदम व्यवस्थित एवं पारदर्शी विपणन की दशाओं का निर्माण करने के लिए बाज़ार का नियमन



चित्र 6.1 *नियमित अनाज मंडियाँ किसानों और उपभोक्ताओं को लाभ पहुँचाती हैं*

इन्हें कीजिए

- अपने आस-पास की फल-सब्जी मंडी में जाएँ। उस मंडी की विशेषताओं को ध्यान से देखें और पहचानें। कम से कम दस अलग-अलग फलों व सब्जियों के मूल उत्पादन क्षेत्र तथा वहाँ से मंडी तक की दूरी की जानकारी प्राप्त करें। यह भी जानने का प्रयास करें कि वे चीजें किस प्रकार के परिवहन साधनों द्वारा आप तक पहुँचती हैं और इन परिवहन की लागतों का उनकी कीमतों पर क्या प्रभाव पड़ता है?
- प्राय: सभी छोटे कस्बों में नियमित मंडी परिसर होते हैं। किसान वहाँ जाकर अपनी उपज बेच सकते हैं। वे कुछ समय तक उस परिसर में अपनी उपज रख भी सकते हैं। किसी ऐसी एक मंडी में जाएँ और उसकी कार्यप्रणाली का अध्ययन कर यह जानने का प्रयास करें कि वहाँ किस प्रकार की चीजें बिक्री के लिए आती हैं और उनके कीमतों का निर्धारण किस तरह किया जाता है।

करना था। इस नीति से बहुत दूर तक कृषक और उपभोक्ता, दोनों ही वर्ग लाभांवित हुए हैं। हालाँकि, लगभग 27,000 ग्रामीण क्षेत्रों में अनियत मंडियों को विकसित किए जाने की आवश्यकता है, ताकि ग्राम्य क्षेत्रों की मंडियों की वास्तविक क्षमताओं का लाभ उठा पाना संभव हो। दूसरा महत्वपूर्ण उपाय सड़कों, रेलमार्गों, भंडारगृहों गोदामों, शीतगृहों और प्रसंस्करण इकाइयों के रूप में भौतिक आधारिक सरंचनाओं का प्रावधान किया जाना है। किंतु, अभी तक वर्तमान आधारिक सुविधाएँ बढ़ते माँग को देखते हुए नितांत अपर्याप्त सिद्ध हुई है, जिन्हें सुधारने की आवश्यकता है। सरकार के तीसरे उपाय में सरकारी विपणन द्वारा किसानों को अपने उत्पादों का उचित मूल्य सुलभ कराना है। गुजरात तथा देश के अन्य कई भागों में दुग्ध उत्पादक सहकारी समितियों ने ग्रामीण अंचलों के सामाजिक तथा आर्थिक परिदृश्य का कायाकल्प कर दिया है। किंतु, अभी भी कुछ स्थानों पर सहकारिता आंदोलन में कुछ कमियाँ दिखाई देती हैं। इनके कारण हैं: सभी कृषकों को सहकारिताओं में शामिल नहीं कर पाना, विपणन और प्रसंस्करण सहकारी समितियों के बीच संबंध सूत्रों का नहीं होना और अकुशल वित्तीय प्रबंधन। चौथे उपाय के अंतर्गत नीतिगत साधन हैं- जैसे: (क) 24 कृषि उत्पादों के लिए न्यूनतम समर्थन कीमत सुनिश्चित करना; (ख) भारतीय खाद्य निगम द्वारा गेहूँ और चावल के सुरक्षित भंडार की रख रखाव और (ग) सार्वजनिक वितरण प्रणाली (राशन व्यवस्था) के माध्यम से खाद्यान्नों और चीनी का वितरण। इन साधनों का ध्येय क्रमश: किसानों को उपज के उचित दाम दिलाना तथा गरीबों को सहायिकी युक्त (subsidised) कीमत पर वस्तुएँ उपलब्ध कराना रहा है। यद्यपि सरकार के इन सभी प्रयासों के बाद भी आज तक कृषि मंडियों पर निजी व्यापारियों, (साहूकारों, ग्रामीण राजनीतिज्ञ सामंतों, बड़े व्यापारियों तथा अमीर किसानों) का वर्चस्व बना हुआ है। सरकारी संस्थाएँ और सहकारिताएँ सकल कृषि उत्पादन के मात्र 10 प्रतिशत अंश के आदान-प्रदान में सफल हो पा रही हैं- शेष अभी भी निजी व्यापारियों के हाथों में ही है।

सरकार की मध्यस्थता ने कृषि विपणन व्यवस्था को अनेक रूपों में प्रभावित किया है। वैश्वीकरण के इस युग में कृषि के त्वरित व्यावसायीकरण की अपार संभावनाओं का लाभ उठाया जा सकता है, किंतु ये सुअवसर तभी हाथ में आएंगे जब हम खाद्य प्रसंस्करण द्वारा

कृषि आधारित उत्पादों में मूल्य वृद्धि का मार्ग अपना लें और इसके लिए हमें कृषकों को ज्ञान व प्रशिक्षण प्रदान करने के अलावा उनकी बाज़ार में कार्य करने की क्षमता को भी बढ़ावा देना होगा।

इन्हें कीजिए

➢ अपने आस-पास स्थित किसानों द्वारा प्रयोग की जा रही किसी वैकल्पिक विपणन प्रणाली को देखें। यह नियमित मंडी परिसर से किस प्रकार भिन्न है? क्या उन्हें सरकारी समर्थन और प्रोत्साहन मिलना चाहिए? यह क्यों होना चाहिए तथा कैसे दिया जाना चाहिए? चर्चा कीजिए।

वैकल्पिक क्रय-विक्रय माध्यमों का प्रादुर्भाव: अब यह बात सभी अनुभव कर रहे हैं कि यदि किसान स्वयं ही उपभोक्ता को अपना उत्पादन बेच सकें तो उसे उपभोक्ता द्वारा चुकाई गई कीमत का अपेक्षाकृत अधिक अंश प्राप्त होगा। पंजाब, हरियाणा और राजस्थान में अपनी मंडी, पुणे की हाड़पसार मंडी, आंध्र प्रदेश की रायथूबाज नामक फल सब्जी मंडियाँ तथा तमिलनाडु की उझावरमंडी के कृषक बाज़ार, इस प्रकार से विकसित हो रहे वैकल्पिक क्रय विक्रय माध्यम के कुछ उदाहरण हैं। ये सब कुछ वैकल्पिक विपणन संरचनाओं के उदाहरण हैं। यही नहीं, अनेक राष्ट्रीय/बहुराष्ट्रीय त्वरित खाद्य पदार्थ (फास्ट फूड)बनाने वाली कंपनियाँ भी अब किसानों के साथ कृषि-उत्पाद की खेती (फल-सब्जियों) के लिए उत्पादकों से अनुबंध कर रही हैं। ये किसानों को उचित बीज तथा अन्य आगत तो उपलब्ध कराती ही हैं; उन्हें पूर्व-निर्धारित कीमतों पर माल खरीदने का आश्वासन भी देती हैं। ऐसी व्यवस्थाएँ किसानों की कीमत विषयक आशंकाओं और जोखिमों का निवारण करेंगी। साथ ही इनसे कृषि पदार्थों के बाज़ारों का भी विस्तार होगा।

6.5 उत्पादक गतिविधियों का विविधीकरण

विविधीकरण के दो पहलू हैं: एक पहलू तो फसलों के उत्पादन के विविधीकरण से संबंधित है। दूसरा पहलू श्रम शक्ति को खेती से हटाकर अन्य संबंधित कार्यों (जैसे पशुपालन, मुर्गी और मत्स्य पालन आदि) तथा गैर-कृषि क्षेत्रक में लगाना है। इस विविधीकरण की आवश्यकता इसलिए उत्पन्न हो रही है, क्योंकि सिर्फ खेती के आधार पर आजीविका कमाने में जोखिम बहुत अधिक हो जाता है। अत: विविधीकरण द्वारा हम न केवल खेती से जोखिम को कम करने में सफल होंगे बल्कि ग्रामीण जन समुदाय को उत्पादक और वैकल्पिक धारणीय आजीविका के अवसर भी उपलब्ध हो पाएँगे। देश में अधिकांश



चित्र 6.2 *गुड़ निर्माण कृषि क्षेत्रक का एक संबद्ध क्रियाकलाप है*

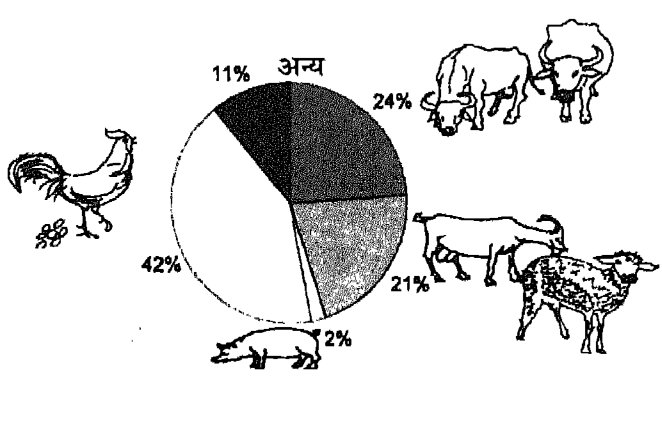
बॉक्स 6.2 (TANWA) तमिलनाडु में कृषि कार्यों में लगी महिलाएँ

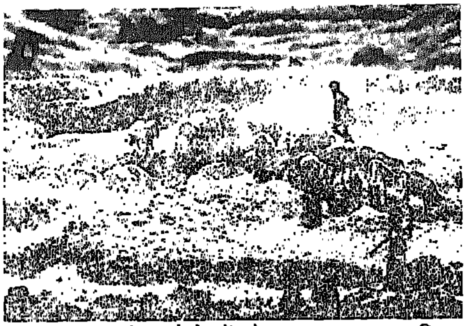
तमिलनाडु में महिलाओं को नवीनतम कृषि तकनीकों का प्रशिक्षण देने के लिए तनवा नामक परियोजना प्रारंभ की गई है। यह महिलाओं को कृषि उत्पादकता और पारिवारिक आय की वृद्धि के लिए सक्रिय रूप से भाग लेने के लिए प्रोत्साहित करती हैं। थिरूचिरापल्ली में एंथोनीअम्मल द्वारा संचालित प्रशिक्षित महिला समूह कृमिखाद बनाकर बेच रहा है और इस कार्य से आय कमा रहा है। अनेक कृषक महिला समूह अतिलघु साख व्यवस्था का सहारा लेकर अपने सदस्यों की बचतों को बढ़ावा देने में सक्रिय हैं। इस प्रकार संचित बचत का प्रयोग कर वे पारिवारिक कुटीर उद्योग गतिविधियाँ जैसे मशरूम की खेती, साबुन तथा गुड़िया बनाने आदि अनेक प्रकार के आय बढ़ाने वाले कार्यों को प्रोत्साहित कर रही हैं।

कृषि रोजगार खरीफ की फसल से जुड़ा रहता है, किंतु रबी की फसल के मौसम में तो जहाँ पर्याप्त सिंचाई सुविधाएँ नहीं हैं, उन क्षेत्रों में लाभप्रद रोजगार दुर्लभ हो जाता है। अत: अन्य प्रकार की उत्पादक और लाभप्रद गतिविधियों में प्रसार के माध्यम से ही हम ग्रामीण जनसमुदाय को अधिक आय कमाकर गरीबी तथा अन्य विषम परिस्थितियों का सामना करने में समर्थ बना पाएँगे। यहाँ हमारा आग्रह सबद्ध गतिविधियों, गैर कृषि रोजगार तथा नये वैकल्पिक आजीविका स्रोतों के विकास पर है। वैसे अब ग्रामीण क्षेत्रों में अनेक नए धारणीय आजीविका विकल्पों का विकास हो रहा है।

कृषि क्षेत्र पर तो पहले ही से बहुत बोझ है। अत: बढ़ती हुई श्रम शक्ति के लिए अन्य गैर-कृषि कार्यों में वैकल्पिक रोजगार के अवसरों की आवश्यकता है। गैर-कृषि अर्थतंत्र में अनेक घटक होते हैं। कुछ घटकों में पर्याप्त गतिशील अंतर्संबंध होते हैं और उनमें 'स्वस्थ' संवृद्धि की संभावनाएँ रहती हैं, किंतु अनेक घटक तो निम्न उत्पादकता वाले निर्वाह मात्र की व्यवस्था कर पाते हैं। गतिशील उपघटकों में **कृषि-प्रसंस्करण उद्योग**, खाद्य प्रसंस्करण उद्योग, चर्म उद्योग तथा पर्यटन आदि सम्मिलित हैं। कुछ ऐसे क्षेत्रक भी हैं जिनमें संभावनाएँ तो विद्यमान हैं, पर जिनके लिए संरचनात्मक सुविधाएँ तथा अन्य सहायक कार्यों का नितांत अभाव है। इस वर्ग में हम परंपरागत कुटीर उद्योगों को रख सकते हैं जैसे, मिट्टी के

चार्ट 6.1 भारत में पशुधन का संघटन, 1997





चित्र 6.3 *ग्रामीण क्षेत्रों में भेड़ पालन आय वृद्धि का महत्वपूर्ण स्रोत है*

बर्तन बनाना, शिल्प कलाएँ, हथकरघा आदि। यद्यपि, अधिकांश ग्रामीण महिलाएँ कृषि में रोजगार प्राप्त करती हैं, जबकि पुरुष गैर-कृषि रोजगार की तलाश में है। किंतु, हाल के वर्षों में ग्रामीण महिलाएँ भी गैर कृषि कार्यों की ओर अग्रसर होने लगी हैं (देखें बॉक्स 6.2)।

पशुपालन: भारत के किसान समुदाय प्रायः मिश्रित कृषि पशु धन व्यवस्था का अनुसरण करते हैं। इसमे गाय-भैंस, बकरियाँ और मुर्गी-बत्तख आदि बहुतायत में पाई जाने वाली प्रजातियाँ हैं। मवेशियों के पालन से परिवार की आय में अधिक स्थिरता आती है। साथ ही खाद्य सुरक्षा, परिवहन, ईंधन, पोषण आदि की व्यवस्था भी परिवार की अन्य खाद्य उत्पादक (कृषक) गतिविधियों में अवरोध के बिना प्राप्त हो जाती हैं। आज पशुपालन क्षेत्रक देश के 7 करोड़ छोटे व सीमांत किसानों और भूमिहीन श्रमिकों को आजीविका कमाने के वैकल्पिक साधन सुलभ करा रहे हैं। इस क्षेत्रक में महिलाएँ भी बहुत बड़ी संख्या में रोजगार पा रही हैं। चार्ट 6.1 में भारत में पशुधन का वितरण दिखाया गया है। इसमें सबसे बड़ा अंश 42 प्रतिशत तो मुर्गी पालन का है। अन्य पशुओं में ऊँट, गधे, घोड़े आते हैं। सबसे निम्न स्तर खच्चरों तथा टट्टुओं का है। 1997 में भारत में 28.7 करोड़ मवेशी थे, उनमें से 9 करोड़ भैंसें थी। पिछले तीन दशकों में भारत के डेयरी उद्योग ने बहुत शानदार प्रगति दिखाई है, 1960-2002 की अवधि में देश में दुग्ध उत्पादन चार गुना से अधिक बढ़ गया है। इसका मुख्य श्रेय 1966 में आरंभ किए गए 'ऑपरेशन फ्लड' (दूध की बाढ़) को दिया जाता है। इसके अंतर्गत सभी किसान अपना विक्रय योग्य दूध एकत्रित कर, उसकी गुणवत्ता के अनुसार प्रसंस्करण करते हैं और फिर उसे शहरी केंद्रों में सहकारिताओं के माध्यम से बेचा जाता है। गुजरात प्रदेश ने दुग्ध सहकारिताओं का एक विलक्षण प्रतिमान विकसित किया है- देश के अन्य अनेक प्रांतों में उसी का अनुकरण किया जा रहा है। अब मांस, अंडे तथा ऊन आदि भी उत्पादन क्षेत्र के विविधीकरण की दृष्टि से महत्वपूर्ण सह-उत्पाद सिद्ध हो रहे हैं।

मत्स्य पालन: मछुआरों के समुदाय तो प्रत्येक जलागार को 'माँ' या 'दाता' मानते हैं। सागर-महासागर, सरिताएँ, झीलें, प्राकृतिक तालाब, प्रवाह आदि सभी जलागार मछुआरों के समाज के लिए निश्चित जीवन दीपक स्त्रोत बन जाते हैं। भारत में बजटीय प्रावधानों में वृद्धि और मत्स्य पालन एवं जल कृषिकी में नवीन प्रौद्यागिकी के प्रवेश के बाद से मत्स्य उद्योग ने विकास की नई मंजिलें तय की हैं। आजकल देश के समस्त मत्स्य उत्पादन का 49 प्रतिशत अंतर्वर्ती क्षेत्रों से तथा 51 प्रतिशत महासागरीय क्षेत्रों से प्राप्त हो रहा है। यह मत्स्य उत्पादन सकल घरेलू उत्पाद का 1.4 प्रतिशत है। सागरीय उत्पादकों में प्रमुख राज्य केरल, गुजरात, महाराष्ट्र

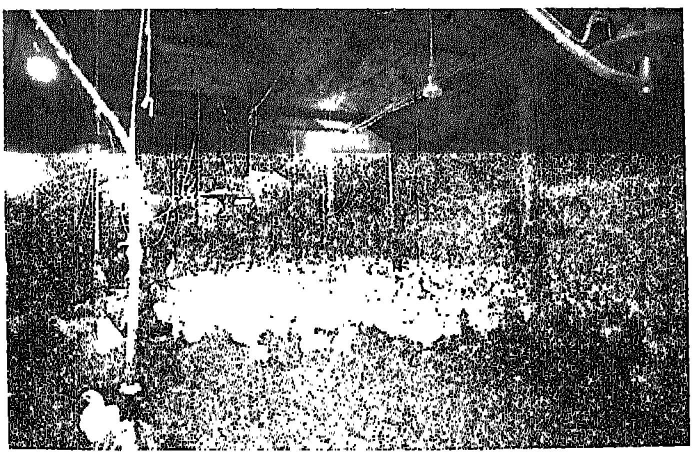
और तमिलनाडु हैं। वैसे हमारे देश के पिछड़े वर्गों में भी मछुआरों का सामाजिक आर्थिक स्तर नीचा ही माना जाता है। इस वर्ग में व्याप्त निम्न रोजगार, निम्न प्रतिव्यक्ति आय, अन्य कार्यों की ओर श्रम के प्रवाह का अभाव, उच्च निरक्षरता दर तथा गंभीर ऋण-ग्रस्तता इन (मछुआरा) समुदायों की अन्य प्रमुख समस्याएँ हैं। यद्यपि महिलाएँ मछलियाँ पकड़ने के काम में नहीं लगी हैं, पर 60 प्रतिशत निर्यात और 40 प्रतिशत आंतरिक मत्स्य व्यापार का संचालन उन्हीं के हाथों में है। विपणन के लिए आवश्यक पूँजी जुटाने में मछुआरा समुदाय की महिलाओं की सहायता के लिए सहकारिताओं और स्वयं सहायता समूहों के माध्यम से साख सुविधाओं का विस्तार किए जाने की आवश्यकता अब अनुभव हो रही है।

उद्यान विज्ञान (बागवानी): प्रकृति ने भारत को ऋतुओं और मृदा की विविधता से संपन्न किया है। उसी के आधार पर भारत ने अनेक प्रकार के बागान उत्पादों को अपना लिया है।



चित्र 6.5 *ग्रामीण परिवार में महिलाएँ मधुमक्खी पालन को एक उद्यम क्रिया के रूप में ले सकती हैं*

इनमें प्रमुख हैं– फल-सब्जियाँ, रेशेदार फसलें, औषधीय तथा सुगंधित पौधे, मसाले, चाय, कॉफी इत्यादि। ये सभी फसलें रोजगार के साथ-साथ भोजन और पोषण उपलब्ध कराने में भी बड़ा योगदान दे रही हैं। हम 1991-2003 की अवधि को 'स्वर्णिम क्रांति' के प्रारंभ का काल मानते हैं। इसी दौरान बागवानी में सुनियोजित निवेश बहुत ही उत्पादक सिद्ध हुआ और इस क्षेत्रक ने एक धारणीय वैकल्पिक रोजगार का रूप धारण किया। भारत आम, केला, नारियल, काजू जैसे फलों और अनेक मसालों के उत्पादन में तो आज विश्व का अग्रणी देश माना जाता है। कुल मिलाकर फल-सब्जियों के उत्पादन में हमारा विश्व में दूसरा स्थान है। बागवानी में लगे कितने ही कृषकों की आर्थिक दशा में बहुत सुधार हुआ है। ये उद्योग



चित्र 6.4 *भारत में मुर्गी पालन का पशुधन में सबसे अधिक भाग है*

अब अनेक वंचित वर्गों के लिए भी आजीविका को बेहतर बनाने में सहायक हो गए हैं। पुष्परोपण, पौधशाला की देखभाल, संकर बीजों का उत्पादन, ऊतक -संवर्धन, फल फूलों का संवर्धन और खाद्य प्रसंस्करण ग्रामीण महिलाओं के लिए अब अधिक आय वाले रोजगार बन गए हैं। अनुमानतः इस समय देश की 19 प्रतिशत श्रम-शक्ति को इन्हीं कार्यों से रोजगार मिल रहा है।

यद्यपि संख्याबल की दृष्टि से तो हमारा पशुधन बहुत ही प्रभावशाली दिखाई देता है, पर अन्य देशों की तुलना में उसके उत्पादक का स्तर बहुत ही न्यून है। यहाँ भी पशुओं की नस्ल सुधारने तथा उत्पादकता वृद्धि के लिए नई उन्नत प्रौद्योगिकी का प्रयोग किया जाना चाहिए। छोटे व सीमांत किसानों और भूमिहीन श्रमिकों को बेहतर पशुधन उत्पादन के माध्यम से भी धारणीय रोजगार विकल्प का स्वरूप प्रदान किया जा सकता है। मछली पालन में पहले से ही पर्याप्त वृद्धि हो चुकी है तथापि मछली पालन के अधिक्य से संबंधित प्रदूषण की समस्या को नियमित और नियंत्रित करना आवश्यक है। मछुआरा समुदाय के कल्याण कार्यों की इस प्रकार पुनर्रचना करनी होगी कि उनके लाभ दीर्घकालिक हों और उनकी आजीविका का साधन बन सकें। बागवानी एक धारणीय रोजगार विकल्प के रूप में उभरा है और इसे महत्वपूर्ण प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए। इसे और बढ़ावा देने के लिए बिजली, शीतगृह व्यवस्था, विपणन माध्यमों के विकास, लघु स्तरीय प्रसंस्करण इकाइयों की स्थापना और प्रौद्योगिकी के उन्नयन और प्रसार के लिए आधारिक सरंचनाओं में निवेश की आवश्यकता है।

अन्य रोजगार/आजीविका विकल्पः हम जानते हैं कि सूचना प्रौद्योगिकी ने भारतीय अर्थव्यवस्था के अनेक क्षेत्रकों में क्रांतिकारी परिवर्तन ला दिया है। अब 21वीं शताब्दी में देश में खाद्य सुरक्षा और धारणीय विकास में सूचना प्रौद्योगिकी के निर्णायक योगदान के विषय में सर्व सहमति बन चुकी है। इस सहमति का कारण है कि अब सूचनाओं और उपयुक्त सॉफ्टवेयर का प्रयोग कर सरकार सहज ही खाद्य असुरक्षा की आशंका वाले क्षेत्रों का समय रहते पूर्वानुमान लगा सकती है। इस तरह से, समाज ऐसी विपत्तियों की संभावनाओं को कम या पूरी तरह से समाप्त करने में भी सफल हो सकता है। कृषि क्षेत्र में तो इसके विशेष योगदान

बॉक्स 6.3 प्रत्येक गाँव- एक ज्ञान केंद्र

तमिलनाडु में चैन्नई स्थित एम.एस.स्वामीनाथन शोध प्रतिष्ठान ने श्रीरतन टाटा न्यास, मुंबई के सहयोग से जमशेद जी टाटा नेशनल वरचुअल एकेडमी फॉर रूरल प्रास्पेरिटी की स्थापना की है। यह अकादमी दस लाख बुनियादी ज्ञान संपन्न कार्यकर्ताओं की पहचान कर उन्हें अपना अध्येता घोषित करेगी। इस कार्यक्रम के अंतर्गत उन्हें एक सूचना मंडप उपलब्ध कराया जाएगा जिसमें एक कंप्यूटर, इंटरनेट तथा वीडियो संगोष्ठी सुविधाएँ, स्कैनर, फोटोकॉपी मशीन आदि की सुविधाएँ उपलब्ध होंगी। ये सब बहुत कम कीमत पर दी जाएँगी- साथ ही उन्हें इन सुविधाओं के प्रयोग का प्रशिक्षण दिला इस योग्य बनाया जाएगा कि वे इनके माध्यम से अपनी आजीविका चला सकें। भारत सरकार भी इस प्रयास में 100 करोड़ रुपये का सहयोग देकर सहभागिता करने का निर्णय कर चुकी है।

बॉक्स 6.4 जैविक भोजन

विश्व में जैविक भोजन की लोकप्रियता बढ़ रही है। अनेक देश अब तक खाद्य उत्पाद व्यवस्था का 10 प्रतिशत जैविक कृषि द्वारा उत्पन्न करते हैं। अनेक खुदरा व्यापार शृंखलाएँ और सुपर बाज़ार अब जैविक खाद्य पदार्थों की बिक्री के आधार पर **'हरित स्थिति'** प्रमाण चिन्हों से अलंकृत हो चुके हैं। साथ ही, जैविक खाद्य पदार्थों की कीमत परंपरागत पदार्थों की तुलना में 10-100 प्रतिशत तक अधिक होती है।

हो सकते हैं। इस प्रौद्योगिकी द्वारा उदीयमान तकनीकों, कीमतों, मौसम तथा विभिन्न फसलों के लिए मृदा की दशाओं की उपयुक्तता की जानकारी का प्रसारण हो सकता है। सबसे महत्वपूर्ण तो यह बात है कि सूचना प्रौद्योगिकी ने एक ज्ञान आधारित अर्थतंत्र का सूत्रपात कर दिया है-जो औद्योगिक क्रांति से हजार गुणा अधिक शक्तिशाली है। अपने आप में सूचना प्रौद्योगिकी कुछ भी नहीं बदल सकती, किंतु यह जानमानस में बसी सृजनात्मक संभाव्यता और उनके ज्ञान संचय के यंत्र के रूप में कार्य कर सकती है। इसमें ग्रामीण क्षेत्रों में बड़े स्तर पर रोजगार के अवसरों को उत्पन्न करने की संभाव्यता भी है। भारत के अनेक भागों में सूचना प्रोद्योगिकी का प्रयोग ग्रामीण विकास के लिए हो रहा है (देखें बॉक्स 6.3)।

6.6 धारणीय विकास और जैविक कृषि

कुछ वर्षों से रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों के हमारे स्वास्थ्य पर हो रहे हानिकारक प्रभावों के विषय में जागरूकता का प्रसार हुआ है। भारत में परंपरागत कृषि पूरी तरह से रासायनिक उर्वरकों और विषजन्य कीटनाशकों पर आधारित है। ये विषाक्त तत्व हमारी खाद्य पूर्ति व जल स्रोतों में नि:सरित हो जाते हैं और हमारे पशुधन को हानि पहुँचाते हैं। साथ ही इनके कारण मृदा की उर्वरता क्षीण हो जाती है और हमारे प्राकृतिक पर्यावरण का विनाश हो जाता है। अत: विकास की धारणीयता के लिए पर्यावरण-मित्र प्रौद्योगिकीय विकास के प्रयास अनिवार्य हो गए हैं। ऐसी ही एक प्रौद्योगिकी को 'जैविक कृषि' कहा जाता है। संक्षेप में जैविक कृषि, खेती करने की वह

बॉक्स 6.5 महाराष्ट्र में जैविक विधि से उत्पादित कपास

जब 1995 में 'प्रकृति' नामक गैर-सरकारी संगठन के किशन मेहता ने यह सुझाव दिया कि रासायनिक कीट का सर्वाधिक प्रयोग करने वाली कपास की खेती भी जैविक विधि से हो सकती है, तो नागपुर के केंद्रीय कपास शोध संस्थान के निर्देशक ने अपनी अति प्रसिद्ध टिप्पणी की थी: ''क्या आप सारे भारत को वस्त्र-विहीन कर देना चाहते हैं?'' इस समय तक के 130 किसान 1200 हेक्टेयर भूमि पर अंतर्राष्ट्रीय जैविक कृषि आंदोलन संघ के मानकों के अनुरूप जैविक विधि से कपास उगाने को प्रतिबद्ध हो चुके हैं। इनके उत्पादन को जर्मनी द्वारा मान्यता प्राप्त संस्था एग्रेको ने परीक्षण के बाद उच्च कोटि का पाया है। किशन मेहता का कहना है कि भारत के 78 प्रतिशत किसान 0.8 हेक्टेयर से छोटे खेतों के स्वामी सीमांत किसान ही हैं। इनकी समस्त भूमि देश के कृषि क्षेत्र का 20 प्रतिशत है। अत: दीर्घकाल में मौद्रिक तथा मृदा संरक्षण की दृष्टि से जैविक कृषि ही अधिक लाभकारी सिद्ध होगी।

स्रोत: *फ्रंटलाइन जुलाई 29, 2005 में प्रकाशित लॉयला बाबदम लेख :* ***'ए ग्रीन आल्टरनेटिव'*** *से उद्धृत*

पद्धति है जो पर्यावरणीय संतुलन को पुनः स्थापित करके उसका संरक्षण और संवर्धन करती है। विश्व भर में सुरक्षित आहार की पूर्ति बढ़ाने के लिए जैविक विधा से उत्पादित खाद्य पदार्थों की माँग में वृद्धि हो रही है।

जैविक कृषि के लाभः जैविक कृषि महँगे आगतों (संकर बीजों, रासायनिक उर्वरकों, कीटनाशकों) के स्थान पर स्थानीय रूप से बने जैविक आगतों के प्रयोग पर निर्भर होती है। ये आगत सस्ते रहते हैं और इसी कारण इन पर निवेश से प्रतिफल अधिक मिलता है। विश्व बाज़ारों में जैविक कृषि उत्पादों की बढ़ती हुई माँग के कारण इनके निर्यात से भी अच्छी आय हो सकती है। अनके देशों में हुए अध्ययनों से सिद्ध हुआ है, रासायनिक आगतों से उत्पादित खाद्य की तुलना में जैविक विधि से उत्पादित भोज्य पदार्थों में पोषक तत्व भी अधिक होते हैं। अतः जैविक कृषि हमें अधिक स्वास्थ्यकर भोजन उपलब्ध कराती है। चूँकि जैविक कृषि में श्रम आगतों का प्रयोग परंपरागत कृषि की अपेक्षा अधिक होता है- अतः, भारत जैसे देश में यह अधिक आकर्षक होगा। अंततः ये उत्पाद विषाक्त रसायनों से मुक्त तथा पर्यावरण की दृष्टि से धारणीय विधियों द्वारा उत्पादित होते हैं (देखें बॉक्स 6.5)।

जैविक कृषि की लोकप्रियता के लिए नई विधियों का प्रयोग करने में किसानों की इच्छाशक्ति और जागरूकता आवश्यक है। जैविक कृषि संवर्धन के लिए उपयुक्त नीतियों के अभाव के साथ-साथ उनके विपणन की समस्या पर भी ध्यान देने की आवश्यकता है। ये समस्याएँ इस विधि को प्रोत्साहन देने में बाधक है। यह देखा गया है कि प्रारंभिक वर्षों में जैविक कृषि की उत्पादकता रासायनिक कृषि से कम रहती है। अतः बहुत बड़े स्तर पर छोटे और सीमांत किसानों के लिए इसे अपनाना कठिन होगा। यही नहीं, जैविक उत्पादों के रासायनिक उत्पादों की अपेक्षा शीघ्र खराब होने की भी संभावना रहती है। बे-मौसमी फसलों का जैविक कृषि में उत्पादन बहुत सीमित होता है। फिर भी जैविक कृषि धारणीय कृषि के विकास में सहायक है और भारत तो निश्चय ही घरेलू और अंतर्राष्ट्रीय बाज़ारों के लिए इनका उत्पादन कर लाभांवित हो सकता है।

इन्हें कीजिए

- भारत में जैविक विधि से उत्पादित पाँच लोकप्रिय वस्तुओं की सूची बनाइए।
- अपने आस-पास किसी सुपर बाज़ार, सब्जियों की दुकान या विभागीय भंडार में जाएँ। जैविक और रासायनिक विधि से उत्पादित कुछ वस्तुओं की क़ीमतों की जानकारी के साथ-साथ यह जानकारी भी प्राप्त करें कि वे कितने समय तक खराब हुए बिना रह सकती हैं और उन्हें लोकप्रिय बनाने के लिए किस प्रकार से उनका प्रचार किया जाता है।
- अपने आस-पास की बस्ती में किसी बागवानी फार्म पर जाएँ। वहाँ उत्पादित वस्तुओं की सूची बनाएँ। क्या उन्होंने कुछ समय पहले ही अपने कृषि स्वरूप का विविधीकरण किया है? उनसे विविधीकरण की लाभ और हानियों पर चर्चा करें।

6.7 निष्कर्ष

एक बात तो स्पष्ट हो चुकी है कि जब तक काई चमत्कारी परिवर्तन नहीं होगा, ग्रामीण क्षेत्रक में पिछड़ापन बना रहेगा। आज ग्रामीण क्षेत्रों को अनेक प्रकार के उत्पादक कार्यों की ओर उन्मुख कर वहाँ एक नए उत्साह और स्फूर्ति का संचार करना आवश्यक हो गया है। ये कार्य हो सकते हैं: डेरी उद्योग, मुर्गी पालन, मत्स्य पालन, फल सब्जी उत्पादन और ग्रामीण उत्पादन केंद्रों व शहरी बाज़ारों (विदेशी निर्यात बाज़ारों सहित) के बीच संपर्क सूत्रों की रचना। इस प्रकार, कृषि उत्पादन में लगे निवेश पर अधिक प्रतिलाभ अर्जित करना संभव हो पाएगा। यही नहीं, आधारिक संरचना जैसे, साख एवं विपणन, कृषक-हित-नीतियाँ तथा कृषक समुदायों एवं राज्य कृषि विभागों के बीच निरंतर संवाद और समीक्षा इस क्षेत्रक की पूर्ण क्षमता को प्राप्त करने में सहायक है।

आज हम पर्यावरण और ग्रामीण विकास को दो पृथक-पृथक विषय मान कर व्यवहार नहीं कर सकते। नई पर्यावरण-मित्र प्रौद्योगिकी विकल्पों के अविष्कार या प्राप्ति की भी आवश्यकता है, ताकि विभिन्न परिस्थितियों का सामना होने पर भी हम धारणीय विकास की ओर अग्रसर हो पाएँ। इन विकल्पों में से प्रत्येक ग्राम्य समुदाय अपनी स्थानीय परिस्थितियों के अनुरूप चयन कर सकता है। अत: हमारा पहला काम तो सभी उपलब्ध विधियों में से सर्वश्रेष्ठ की पहचान कर उसे चुनना ही होगा (तात्पर्य ग्रामीण विकास के प्रयोग की उन सफल कहानियों से है, जो देश में विभिन्न क्षेत्रों में हो चुकी हैं), ताकि इस 'व्यावहारिक प्रशिक्षण' प्रक्रिया को और गति प्रदान की जा सके।

पुनरावर्तन

- ग्रामीण विकास अपने आप में एक बहुत विस्तृत शब्द है। पर मूल रूप से इसे सामाजिक आर्थिक विकास में पिछड़ रहे क्षेत्रों के विकास की एक सुनियोजित कार्यविधि माना जा सकता है।
- ग्रामीण क्षेत्रों की वास्तविक संभाव्यता को पाने के लिए बैंकिंग, विपणन, भंडारण, परिवहन, संचार आदि की आधारिक संरचना के परिमाण और गुणवत्ता को सुधारना होगा।
- पशुपालन, मत्स्य-पालन और अनेक गैर-कृषि कार्यों को अपनाया जाना चाहिए। इस विविधीकरण से न केवल कृषि के जोखिम कम होंगे बल्कि साथ ही हमारे विशाल ग्रामीण जनसमुदाय को उत्पादक धारणीय आजीविका के नए विकल्प भी सुलभ हो पाएँगे।
- पर्यावरणीय दृष्टि से धारणीय उत्पादन प्रक्रिया के रूप में आज जैविक कृषि का महत्व निरंतर बढ़ रहा है - इसे और प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।



अभ्यास

1. ग्रामीण विकास का क्या अर्थ है? ग्रामीण विकास से जुड़े मुख्य प्रश्नों को स्पष्ट करें।
2. ग्रामीण विकास में साख के महत्व पर चर्चा करें।
3. गरीबों की ऋण आवश्यकताएं पूरी करने में अतिलघु साख व्यवस्था की भूमिका की व्याख्या करें।
4. सरकार द्वारा ग्रामीण बाज़ारों के विकास के लिए किए गए प्रयासों की व्याख्या करें।
5. आजीविका को धारणीय बनाने के लिए कृषि का विविधीकरण क्यों आवश्यक है?
6. भारत के ग्रामीण विकास में ग्रामीण बैंकिंग व्यवस्था की भूमिका का आलोचनात्मक मूल्यांकन करें।
7. कृषि विपणन से आपका क्या अभिप्राय है?
8. कृषि विपणन प्रक्रिया की कुछ बाधाएँ बताइए।
9. कृषि विपणन की कुछ उपलब्ध वैकल्पिक माध्यमों की उदाहरण सहित चर्चा करें।
10. 'स्वर्णिम क्रांति' की व्याख्या करें।
11. सरकार द्वारा कृषि विपणन सुधार के लिए अपनाए गए चार उपायों की व्याख्या करें।
12. ग्रामीण विविधीकरण में गैर-कृषि रोजगार का महत्व समझाइए।
13. विविधीकरण के स्रोत के रूप में पशुपालन, मत्स्यपालन और बागवानी के महत्व पर टिप्पणी करें।
14. 'सूचना प्रौद्योगिकी, धारणीय विकास तथा खाद्य सुरक्षा की प्राप्ति में बड़ा महत्वपूर्ण योगदान करती है।' टिप्पणी करें।
15. जैविक कृषि क्या है? यह धारणीय विकास को किस प्रकार बढ़ावा देती है?
16. जैविक कृषि के लाभ और सीमाएँ स्पष्ट करें।
17. जैविक कृषि का प्रयोग करने वाले किसानों को प्रारंभिक वर्षों में किन समस्याओं का सामना करना पड़ता है?

संदर्भ

आचार्य एस.एस., 2004. *एग्रीकल्चरल मार्किटिंग, स्टेट ऑफ इंडियन फार्मर,* ए मिलेनियम स्टडी, एकेडमिक फाउंडेशन नई दिल्ली।

अलघ वाई के 2004. *स्टेट ऑफ दी इंडियन फारमर,* ए मिलेनियम स्टडी- एन ओवर व्यू, एकेडमिक फाउंडेशन नई दिल्ली।

चावला एन.के. एम.पी.जी. क्रय एंड विजय पोल शर्मा 2004. *एनीमल हसबैंडरी, स्टेट ऑफ दी इंडियन फार्मर,* ए मिलेनियम स्टडी, एकेडमिक फाउंडेशन, नई दिल्ली।

देहा पी.वी धरै, एंड, वाई.एस.यादव 2004. *फिशरीज डेवलपमेंट, स्टेट ऑफ दी इंडियन फारमर्स,* ए मिलेनियम स्टडी, एकेडमिक फाउंडेशन नई दिल्ली।

जलान विमल (ईडी.) 1992. *दि इंडियन इकोनोमी, प्रोबलम्ब एंड प्रोस्पेक्ट्स पिजियन पब्लिकेशन,* नई दिल्ली।

नारायण एस. 2005. *ऑरगैनिक फारमिंग इन इंडिया, नाबार्ड ओकेजनल पेपर नंबर: 38, डिवेलपमेंट ऑफ एग्रीकल्चर एंड रूरल डेवलपमेंट,* मुंबई।

सिंह एच.पी. एंड प्रेमनाथ, पी. दत्ता, एम. सुधा 2004. *हार्टीकल्चर डेवलपमेंट, स्टेट ऑफ दी इंडियन फार्मर, ए मिलेनियम स्टडी,* एकेडमिक फाउंडेशन नई दिल्ली।

सिंह सुरजीत एंड विद्यासागर 2004. *एग्रीकल्चरल क्रेडिट इन इंडिया स्टेट ऑफ दी इंडियन फार्मर,* ए मिलेनियम स्टडी, एकेडमिक फाउंडेशन, नई दिल्ली।

सिन्हा वी. के, 1998. *चैलेंजेज इन रूरल डवलपमेंट, डिसकवरी पब्लिशिंग हाउस,* नई दिल्ली।

टोडासे मिकाइल पी. 1987. *इकोनोमिक डेवलपमेंट इन् दी थर्ड वर्ल्ड,* ओरियेंट लोंगमैन लिमिटेड हैदराबाद।

ईटोप्पो 2004. आरगेनिक वैजीटेबिल गार्डनिंग; *ग्रो योर ओन वैजीटेबिल्स यूटिन फॉर लेबर स्टडीज,* टाटा इंसटीट्यूट ऑफ सोसल साइंसेस, मुम्बई।

सरकारी रिपोर्ट

प्लानिंग कमीशन 2002. सक्सेस फुल गवर्नेस इमिसियोटिक्स एंड बैस्ट फैक्टीसिसि, एक्सपीरियेसिंस फ्रॉम इंडियन स्टेट्स, गवर्नमेंट ऑफ इंडिया इन कार्डिनेशन विद ह्यूमन रिसोर्स डवलपमेंट सेंटर एंड यूएनडीपी, दिल्ली।

7

रोजगार–संवृद्धि, अनौपचारीकरण एवं अन्य मुद्दे

इस अध्याय को पढ़ने के बाद आप

- रोजगार विषयक मूल अवधारणाओं को समझेंगे। जो आर्थिक गतिविधियों, मजदूर, श्रमशक्ति और बेरोजगारी से संबंधित हैं;
- विभिन्न क्षेत्रकों की आर्थिक गतिविधियों में पुरुषों और महिलाओं की भागीदारी के स्वरूप से परिचत होंगे;
- बेरोजगारी के स्वरूप और विस्तार को जान पाएँगे और
- देश के विभिन्न भागों और क्षेत्रकों में रोजगार के अवसरों का सृजन करने के लिए सरकार द्वारा उठाए गए कदमों का मूल्यांकन करने योग्य हो पायेंगे।

मेरी आपत्ति मशीन से नहीं, मशीन के प्रति सनक को लेकर है। इसी सनक का नाम श्रम का बचत करने वाली मशीनें हैं। हम उस सीमा तक श्रम की बचत करते जाएँगे, जब तक कि हजारों लोग बेरोजगार होकर भूखों मरने के लिए सड़कों पर नहीं फेंक दिए जाते।

–महात्मा गाँधी

7.1 परिचय

लोग तरह–तरह के काम करते हैं। कुछ लोग खेतों, कारखानों, बैंकों, दुकानों आदि अनेक प्रकार के कार्यस्थलों पर काम करते हैं। कुछ व्यक्ति घर पर भी अन्य काम करते हैं। घर पर होने वाले काम अब बुनाई, फीते बनाना या हस्तकलाओं जैसे पारंपरिक कामों तक सीमित नहीं रह गए हैं, बल्कि इनमें सूचना–प्रौद्योगिकी उद्योग के प्रोग्राम बनाने जैसे आधुनिक काम भी शामिल हो चुके हैं। पहले कारखाने में काम करने का अर्थ किसी शहर में स्थित कर्मशाला में काम करना होता था, किंतु अब तो प्रौद्योगिकीय परिवर्तनों ने गाँव के घर में ही औद्योगिक उत्पादन संभव बना दिया है।



चित्र 7.1 *बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ भारत के जालंधर शहर के एक घर में निर्मित फुटबाल की बिक्री करती हैं*

व्यक्ति कार्य क्यों करते हैं? कार्य की हमारे व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका है। लोग आजीविका के लिए कार्य करते हैं। कुछ लोगों को उत्तराधिकार के माध्यम से, कार्य किए बिना भी, धन मिल जाता है। किंतु, ऐसे धन से किसी को पूर्ण संतोष नहीं होता। किसी कार्य से जुड़ा रहना, हमें अपनी सार्थकता की अनुभूति प्रदान करता है – इसी के माध्यम से हम अन्य व्यक्तियों से सही अर्थों में संपर्क स्थापित करते हैं। प्रत्येक कार्यरत व्यक्ति सक्रिय रूप से राष्ट्रीय आय में योगदान करता है। इसी के माध्यम से वह विभिन्न आर्थिक क्रियाओं में भाग लेकर देश के आर्थिक विकास में हिस्सेदार बनता है। यही सही अर्थों में आजीविका उपार्जन है। हम केवल अपने लिए काम नहीं करते; अपने ऊपर निर्भर व्यक्तियों की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए कार्य करके भी उपलब्धि का अनुभव करते हैं। कार्य के इसी महत्त्व को समझ कर महात्मा गाँधी ने शिक्षा और हस्तकलाओं सहित विभिन्न प्रकार के कामों के माध्यम से प्रशिक्षण पर बल दिया था।

कार्य कर रहे व्यक्तियों के अध्ययन से हमें देश में रोजगार की प्रकृति और गुणवत्ता के विषय में एक गहरी अंतर्दृष्टि प्राप्त होती है। इससे हमें अपने मानवीय संसाधनों को जानने और उनके उपयुक्त प्रयोग की योजनाएँ बनाने में भी सहायता मिलती है। इससे विभिन्न उद्योगों तथा क्षेत्रकों के राष्ट्रीय आय में योगदान का विश्लेषण करने में भी सहायता मिलती है। ये

समाज के सीमांत-वर्गों, बाल-श्रमिकों आदि के शोषण की समस्याओं का निदान करने में भी सहायक सिद्ध होते हैं।

7.2 श्रमिक और रोजगार

रोजगार क्या है? श्रमिक कौन होता है? जब एक किसान खेतों में काम करता है तो वह खाद्यान्न और उद्योगों के लिए कच्चे माल का उत्पादन करता है। कपास ही कपड़े के कारखानों और विद्युतकरघों में कपड़े का रूप धारण कर लेता है। गाड़ियाँ सामान को एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुँचाती हैं। हम जानते हैं कि किसी देश में एक वर्ष में उत्पादित सभी वस्तुओं और सेवाओं का कुल मौद्रिक मूल्य इसका 'सकल घरेलू उत्पाद' कहलाता है। जब इस पर विचार करते हैं कि हमें निर्यात के लिए मूल्य प्राप्त होता है और आयात का मूल्य चुकाना पड़ता है, तो हम देखते हैं कि देश का निवल अर्जन धनात्मक हो सकता है (यदि निर्यात का मूल्य आयात की अपेक्षा अधिक रहे) या ऋणात्मक हो सकता है (यदि आयात का मूल्य निर्यात की अपेक्षा अधिक रहे) या शून्य हो सकता है (यदि आयात और निर्यात के मूल्य समान हों)। जब हम विदेशी लेन-देन से प्राप्त अर्जनों का योग करते हैं (+ या −) तो हमें उस वर्ष के लिए देश का सकल घरेलू उत्पाद प्राप्त होता है।

सकल राष्ट्रीय उत्पाद में योगदान देने वाले सभी क्रियाकलापों को हम आर्थिक क्रियाएँ कहते हैं। वे सभी व्यक्ति जो आर्थिक क्रियाओं से संलग्न होते हैं, श्रमिक कहलाते हैं, चाहे वे उच्च या निम्न किसी भी स्तर पर कार्य कर रहे हैं। यदि इनमें से कुछ लोग बीमारी, ज़ख्म होने आदि शारीरिक कष्टों, खराब मौसम, त्यौहार या सामाजिक-धार्मिक उत्सवों के कारण अस्थायी रूप से काम पर नहीं आ पाते, तो भी उन्हें श्रमिक ही माना जाता है। इन कामों में लगे मुख्य श्रमिकों की सहायता करने वालों को भी हम श्रमिक ही मानते हैं। आमतौर हम ऐसा सोचते हैं कि जिन्हें काम के बदले नियोक्ता द्वारा कुछ भुगतान किया जाता है, उन्हें श्रमिक कहा जाता है। पर ऐसा नहीं है। जो व्यक्ति स्व-नियोजित होते हैं, वे भी श्रमिक ही होते हैं।

भारत में रोजगार की प्रकृति बहुमुखी है। कुछ लोगों को वर्ष भर रोजगार प्राप्त होता है, तो कुछ लोग वर्ष में कुछ महीने ही रोजगार पाते हैं। अधिकांश मजदूरों को अपने कार्य की उचित मजदूरी नहीं मिल पाती। वैसे श्रमिकों की संख्या

इन्हें कीजिए

- आपके घर और पास-पड़ोस में कितनी ही महिलाएँ ऐसी होंगी, जिनके पास तकनीकी डिग्री तथा डिप्लोमा है। उनके पास काम करने के लिए समय भी है, पर वे कुछ नहीं करतीं। उनसे पूछकर देखें कि वे काम क्यों नहीं कर रहीं। उन सभी कारणों की सूची बनाएँ और कक्षा में चर्चा करें कि क्या उन्हें काम पर जाना चाहिए। क्यों और कैसे उन्हें काम पर भेजा जा सकता है। कुछ समाजशास्त्रियों का तो आग्रह है कि घर सँभालने वाली गृहणियों का भी राष्ट्रीय आय में योगदान होता है, वे भी आर्थिक क्रियाओं में संलग्न रही हैं। भले ही उन्हें इसके लिए वेतन नहीं मिल रहा हो। अतः उन्हें भी श्रमबल का अंग माना जाना चाहिए। क्या आप इससे सहमत हैं?

का अनुमान लगाते समय जितने भी व्यक्ति आर्थिक कार्यों में लगे होते हैं, उन सबको रोजगार में लगे लोगों की श्रेणी में शामिल किया जाता है। आप विभिन्न आर्थिक क्रियाओं में लगे व्यक्तियों की संख्याएँ जानने को उत्सुक होंगे। वर्ष 1999-2000 में भारत की कुल श्रम-शक्ति का आकार लगभग 40 करोड़ आँका गया था। क्योंकि देश के अधिकांश लोग ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करते हैं, इसीलिए ग्रामीण श्रमबल का अनुपात भी शहरी श्रमबल से कहीं अधिक है। इन 40 करोड़ श्रमिकों में तीन-चौथाई श्रमिक ग्रामीण हैं। भारत में श्रमशक्ति में पुरुषों की बहुलता है। श्रमबल में लगभग 70 प्रतिशत पुरुष तथा शेष (इसमें महिला तथा पुरुष बाल श्रमिकों को भी शामिल किया गया है) महिलाएँ हैं। ग्रामीण क्षेत्र में महिला श्रमिक कुल श्रमबल का एक तिहाई हैं, तो शहरों में केवल 20 प्रतिशत महिलाएँ ही श्रमबल में भागीदार पाई गई हैं। महिलाएँ खाना बनाने, पानी लाने, ईंधन बीनने के साथ-साथ खेतों में भी काम करती हैं। उन्हें नकद या अनाज के रूप में मजदूरी नहीं मिलती-कितने ही मामलों में तो कुछ भी भुगतान नहीं किया जाता। इसी कारण इन महिलाओं को श्रमिक वर्ग में भी शामिल नहीं किया जाता। अर्थशास्त्रियों का आग्रह है कि इन महिलाओं को भी श्रमिक ही माना जाना चाहिए।

7.3 लोगों की रोजगार में भागीदारी

श्रमिक जनंसख्या अनुपात जिसका प्रयोग देश में रोजगार की स्थिति के विश्लेषण के लिए सूचक के रूप में किया जाता है, यह जानने में सहायक है कि जनसंख्या का कितना अनुपात वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन में सक्रिय रूप से योगदान दे रहा है। यदि यह अनुपात अधिक है, तो इसका तात्पर्य है जनता की काम में भागीदारी अधिक होगी। यदि यह अनुपात मध्यम या कम हो, तो इसका अर्थ होगा कि देश की जनंसख्या का बहुत अधिक अनुपात प्रत्यक्ष रूप से आर्थिक क्रियाओं में संलग्न नहीं है।

सारणी 7.1

भारत में श्रमिक जनसंख्या अनुपात, 1999-2000

लिंग	श्रमिक जनसंख्या अनुपात		
	कुल	**ग्रामीण**	**शहरी**
पुरुष	52.7	53.1	51.8
स्त्री	25.4	29.9	13.9
योग	39.5	41.7	33.7

आपने 'जनसंख्या' शब्द का अर्थ तो पिछली कक्षाओं में पढ़ लिया होगा। जनसंख्या शब्द का अभिप्राय किसी क्षेत्र विशेष में किसी समय विशेष पर रह रहे व्यक्तियों की कुल संख्या से है। यदि भारत के श्रमिक जनसंख्या अनुपात का आकलन करना चाहें, तो हमें भारत में कार्य कर रहे सभी श्रमिकों की संख्या को देश की जनसंख्या से भाग कर उसे 100 से गुणा करना होगा। इस प्रकार, हमें श्रमिक जनसंख्या अनुपात ज्ञात हो जायेगा (7.1सारणी देखें)।

सारणी 7.1 भारत में विभिन्न आर्थिक क्रियाओं में लोगों की भागीदारी के विभिन्न स्तरों को स्पष्ट कर रही है। भारत में प्रत्येक 100 व्यक्तियों में से लगभग 40 श्रमिक हैं। 39.5 को पूर्ण करते हुए, शहरी क्षेत्रों में यह अनुपात 34 है, जबकि ग्रामीण भारत में यह अनुपात लगभग 42 है। ऐसा अंतर क्यों है? ग्रामीण क्षेत्रों में उच्च आय के अवसर सीमित हैं, इसी कारण रोजगार बाज़ार में उनकी भागीदारी अधिक है। अधिकांश व्यक्ति स्कूल; महाविद्यालय या किसी प्रशिक्षण संस्थान में नहीं जा पाते। यदि कुछ जाते भी हैं तो वे



इन्हें कीजिए

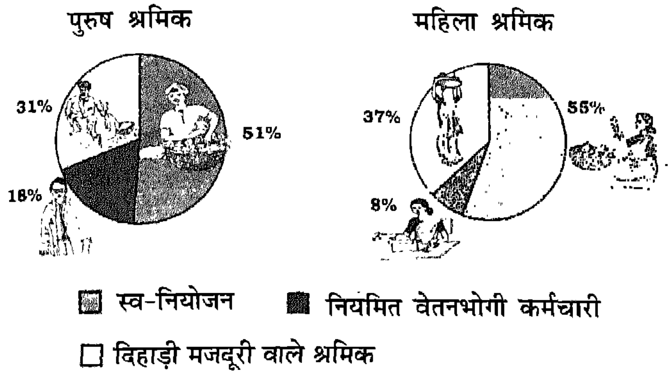
- ➤ रोजगार संबंधी कोई भी अध्ययन श्रमिक जनसंख्या अनुपात से ही आरंभ होना चाहिए। क्यों?
- ➤ आपने शायद देखा होगा कि कुछ समुदायों में यदि पुरुषों की आय पर्याप्त नहीं हो, तो भी वे अपने घर की महिलाओं को बाहर काम करने के लिए नहीं भेजते। ऐसा क्यों होता है?

बीच में ही छोड़कर श्रमशक्ति में शामिल हो जाते हैं। शहरी क्षेत्रों में एक बड़ा भाग विभिन्न शैक्षिक संस्थाओं में अध्ययन कर सकने में सक्षम है। शहरी जनसमुदाय को रोजगार के भी विविधतापूर्ण अवसर सुलभ हो जाते हैं। वे अपनी शिक्षा और योग्यता के अनुरूप रोजगार की तलाश में रहते हैं। किंतु ग्रामीण क्षेत्र के लोग घर पर नहीं बैठ सकते, क्योंकि उनकी आर्थिक दशा उन्हें ऐसा नहीं करने देती।

शहरी और ग्रामीण, दोनों ही वर्गों में पुरुषों की श्रमशक्ति भागीदारी महिलाओं की तुलना में अधिक है। शहरी क्षेत्रों में तो पुरुष और महिला भागीदारी का अंतर बहुत ही बड़ा है-केवल 14 प्रतिशत शहरी महिलाएँ ही किसी आर्थिक कार्य में व्यस्त दिखाई दे रही है। किंतु, ग्रामीण क्षेत्रों की महिलाओं की रोजगार बाज़ार में भागीदारी 30 प्रतिशत आँकी गई। महिलाएँ सामान्य और विशेष रूप से शहरों में काम क्यों नहीं कर रही हैं? यह बात देखने में आई है कि जहाँ कहीं भी पुरुष पर्याप्त रूप से उच्च आय अर्जित करने में सफल रहते हैं, परिवार की महिलाओं को घर से बाहर रोजगार प्राप्त करने से प्राय: निरुत्साहित किया जाता है।

हमने पहले भी कहा है कि महिलाओं द्वारा परिवार के लिए किए गए अनेक कार्यों को आर्थिक या उत्पादन कार्य ही नहीं माना जाता। कार्य या रोजगार की यह संकीर्ण परिभाषा देश में महिला-वर्ग की श्रमबल में भागीदारी को नहीं मानती तथा इसलिए देश में महिला श्रमिकों की संख्या को कम आँका जाता है। जरा सोचकर देखिए, कि घर के भीतर और खेतों में महिलाएँ कितने ऐसे काम करती हैं, जिनका उन्हें कोई

आरेख 7.1 रोजगार स्त्री-पुरुष वर्गानुसार वितरण



भुगतान नहीं किया जाता। चूँकि वे परिवार तथा खेतों के रख-रखाव में निश्चित रूप से योगदान देती हैं, क्या आपको नहीं लगता की उनकी संख्या भी महिला श्रमिकों में सम्मिलित की जानी चाहिए?

7.4 स्वनियोजित तथा भाड़े के श्रमिक

क्या श्रमिक जनसंख्या अनुपात समाज में श्रमिकों की स्थिति और कार्य की दशाओं के विषय में भी कुछ जानकारी देता है? यदि किसी उद्यम में श्रमिक के स्तर या पद की जानकारी मिल सके, तो निश्चय ही देश में रोजगार के गुणवत्ता के आयामों की जानकारी प्राप्त करना संभव होगा। इससे हम यह भी जान सकेंगे कि श्रमिक का अपने काम से कितना लगाव है और अपने सहकर्मियों तथा उद्यम के प्रति उसके अधिकार क्या हैं? आइए, निर्माण उद्योग के तीन कर्मियों की तुलना करें: एक सीमेंट की दुकान का स्वामी है, दूसरा निर्माण मजदूर है तो तीसरा निर्माण करने वाली कंपनी का एक सिविल इंजीनियर है। इन तीनों के पद अथवा प्रतिष्ठा में अंतर है, जिन्हें विभिन्न नामों से भी संबोधित किया जाता है। जो अपने उद्यम के स्वामी और संचालक हैं, उन्हें **स्वनियोजित** कहा जाता है। इस प्रकार सीमेंट की दुकान का स्वामी स्वनियोजित



चित्र 7.2 *ईंट निर्माण : अनियत कार्य का एक प्रकार*

इन्हें कीजिए

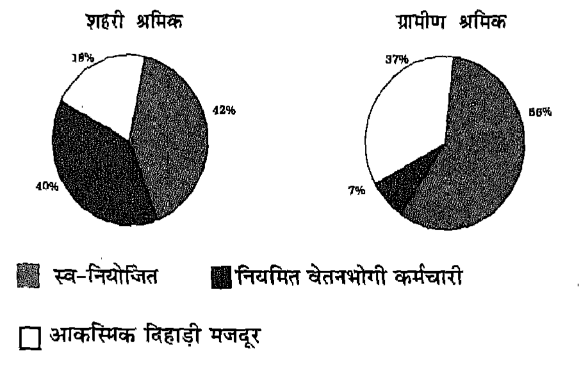
- आमतौर पर हम यह मान लेते हैं कि जो लोग नियमित या अस्थाई आधार पर कृषि श्रमिक, कारखाना मजदूर या किसी बैंक अथवा कार्यालय में सहायक लिपिक है, वही श्रमिक हैं। इस अध्याय की अब तक की चर्चा से आप समझ चुके होंगे कि स्वनियोजित जैसे, पटरी पर सब्जियाँ बेचने वाले, वकील, डॉक्टर, इंजीनीयर आदि सभी व्यक्ति श्रमिक या कामगार होते हैं। निम्न श्रेणियों के कामगारों का स्वनियोजन, नियमित वेतनभोगी कर्मचारी तथा आकस्मिक दिहाड़ी मजदूरों में वर्गीकरण को इंगित करने के लिए इनके सामने 'क' ख और 'ग' अंकित करें:

1. नाई की दुकान का मालिक।
2. चावल मिल का कर्मचारी, जो नियमित रूप से नियुक्त हो किंतु जिसे नियमित रूप से दैनिक मजदूरी मिलती हो।
3. भारतीय स्टेट बैंक का एक कोषपाल।
4. राज्य सरकार के कार्यालय का टाइपिस्ट जिसे दैनिक मजदूरी आधार पर रखा गया है, पर मासिक भुगतान किया जाता है।
5. हथकरघा बुनकर।
6. थोक सब्जी की दुकान पर माल ढोने वाला मजदूर।
7. शीतल पेय की दुकान का स्वामी जो पेप्सी, कोक, मिरिंडा आदि बेचता है।
8. किसी निजी अस्पताल में 5 वर्षों से नियमित कार्य कर रही नर्स, जिसे मासिक वेतन मिलता है।

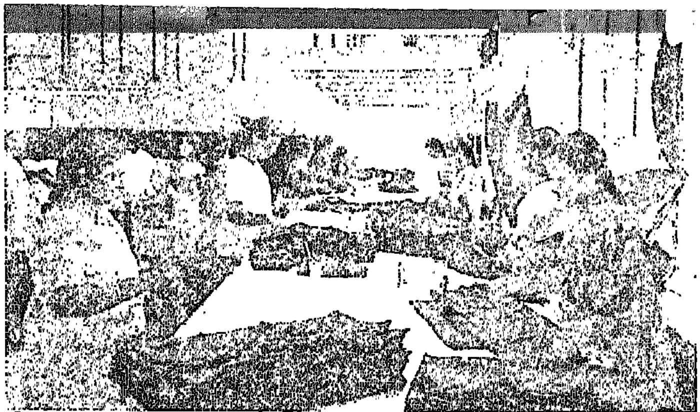
- अर्थशास्त्रियों का कहना है कि अनियत दिहाड़ी मजदूर की दशा तीनों वर्गों में सबसे अधिक असुरक्षित है। क्या आप जानते हैं कि ये मजदूर कौन हैं, इन्हें कहाँ पाया जाता है और क्यों?
- क्या हम कह सकते हैं कि स्वनियोजित व्यक्ति दिहाड़ी मजदूरों और वेतनभोगियों से अधिक कमा लेते हैं? रोजगार की गुणवत्ता के कुछ अन्य सूचकों की भी पहचान करें।

है। भारत का आधे से ज्यादा श्रमबल इसी श्रेणी में आता है। निर्माण मजदूर **अनियत मजदूरी** वाले श्रमिक कहलाते हैं। ये भारत की श्रमशक्ति का 33 प्रतिशत हैं। ऐसे ही मजदूर अन्य लोगों के खेतों में अनियत रूप से कार्य करते हैं और उसके बदले में पारिश्रमिक प्राप्त करते हैं। निर्माण कंपनी के अभियंता के रूप में काम कर रहे व्यक्ति श्रमशक्ति का मात्र 15 प्रतिशत ही हैं। जब किसी श्रमिक को कोई व्यक्ति या उद्यम नियमित रूप से

आरेख 7.2 क्षेत्रानुसार रोजगार वितरण



काम पर रख उसे मजदूरी (वेतन) देता है, तो वह श्रमिक **नियमित वेतन भोगी कर्मचारी** कहलाता है।



चित्र 7.3 *सिले-सिलाए वस्त्रों के कारीगर: महिलाओं को भविष्य में प्राप्त होने वाले रोजगार के केंद्र*

चित्र 7.1 को ध्यान से देखिए। इससे दोनों ही चित्रों से पता चल रहा है कि भारत में पुरुष और महिला श्रमिकों के 50 प्रतिशत से अधिक तो स्वरोजगारी वर्ग में ही आते हैं। अत: स्वरोजगार ही देश की आजीविका का सबसे प्रमुख स्रोत है। अनियत मजदूरी कार्य पुरुषों और महिलाओं के लिए रोजगार का दूसरा प्रमुख स्रोत है। इस अनियत रोजगार में महिलाओं का अंश (37 प्रतिशत) पुरुषों से अधिक पाया गया है। नियमित वेतनभोगी रोजगारधारियों में पुरुषों की अधिक अनुपात में लगे हुए हैं। देश के 18 प्रतिशत पुरुष नियमित वेतनभोगी हैं और इस वर्ग में केवल 8 प्रतिशत महिलाएँ हैं। महिलाओं के इस न्यून अंश का एक कारण कौशल स्तर में अंतर हो सकता है। नियमित वेतन वाले कार्यों में अपेक्षाकृत उच्च कौशल और शिक्षा के स्तर की आवश्यकता होती है। संभवत: इनके अभाव के कारण ही अधिक अनुपात में महिलाओं को रोजगार नहीं मिल पा रहे हों।

यदि ग्रामीण और शहरी श्रमबल के वितरण की तुलना करें तो चार्ट 7.2 के अनुसार, हमें ज्ञात होता है कि अनियत मजदूरी पाने वाले श्रमिक स्वनियोजित तथा ग्रामीण क्षेत्रों में शहरी क्षेत्रों की अपेक्षा अधिक हैं। शहरों में स्वनियोजित और नियमित वेतन वाले रोजगार की संख्या अधिक है। गाँवों में अधिकांश ग्रामीण अपनी जमीन के टुकड़ों पर निर्भर हैं जो स्वतंत्र रूप से खेती करते हैं, अत: स्वनियोजन में उनकी भागीदारी अधिक है।

शहरी क्षेत्रों में काम का स्वरूप भी अलग होता है। हर व्यक्ति कारखाना, दुकान और कार्यालयों का संचालक नहीं हो सकता। इसके अतिरिक्त शहरी उद्यमों में नियमित रूप से श्रमिकों की आवश्यकता होती है।

7.5 फर्मों, कारखानों तथा कार्यालयों में रोजगार

देश के आर्थिक विकास क्रम में श्रमशक्ति का कृषि तथा अन्य संबंधित क्रियाकलापों से उद्योगों और सेवाओं की ओर प्रवाह होता है। इसी प्रक्रिया में मजदूर ग्रामीण क्षेत्रों से शहरों में प्रवसन करते हैं। धीरे-धीरे उद्योग भी सकल रोजगार में अपना अंश खोने लगते हैं, क्योंकि सेवा क्षेत्रक में बहुत तीव्र दर पर प्रसार होने लगता है। श्रमशक्ति के कार्यानुसार या उद्योगवार वितरण से रोजगार स्वरूप के ये परिवर्तन सहज

इन्हें कीजिए

- सभी समाचार-पत्रों में रोजगार अवसरों से जुड़ा एक भाग होता है। कुछ तो प्रति सप्ताह (दैनिक भी) रोजगार पर एक विशेष परिशिष्ट भी निकालते हैं - चाहे द हिन्दू का 'ऑपोर्चुनिटीज' हो या द टाइम्स ऑफ इंडिया का 'एसेंट'। अनेक कंपनियाँ अपनी रिक्तियों का विज्ञापन इनमें करती हैं। इन स्तंभों को काट लीजिए और एक सारणी बनाइए, जिसके चार स्तंभ हों: कंपनी, (सार्वजनिक या निजी), पद का नाम, रिक्तियाँ, क्षेत्रक, (प्राथमिक, द्वितीयक या तृतीयक) और आवश्यक योग्यताएँ। इस सारणी के आधार पर कक्षा में समाचार-पत्रों में विज्ञापित रोजगार अवसरों पर चर्चा करें।

ही स्पष्ट हो जाते हैं। समान्यतया आर्थिक क्रियाओं को आठ विभिन्न औद्योगिक वर्गों में विभाजित करते हैं। ये हैं: (क) कृषि (ख) खनन और उत्खनन (ग) विनिर्माण (घ) विद्युत, गैस एवं जलापूर्ति (ङ) निर्माण कार्य (च) वाणिज्य (छ) परिवहन और भंडारण तथा (ज) सेवाएँ। सरलता के लिए सभी कार्ययुक्त व्यक्तियों को तीन प्रमुख वर्गों में विभाजित किया जा सकता है। ये हैं: (1) प्राथमिक क्षेत्रक, जिसमें (क) तथा (ख) सम्मिलित है। (2) द्वितीयक क्षेत्रक जिसमें (क) (ख) तथा (ग) को शामिल किया जाता है। (3) इसे सेवा क्षेत्रक कहते हैं और इसमें शेष तीनों उपवर्ग (क), (ख) तथा (ग) को रखा जाता है। सारणी 7.2 में हम भारत में वर्ष 1999-2000 में विभिन्न उद्योगों में कार्यरत श्रमिकों के विषय में जानकारी दे रहे हैं।

भारत में अधिकांश श्रमिकों के रोजगार का स्रोत प्राथमिक क्षेत्रक ही है। द्वितीयक क्षेत्रक केवल लगभग 16 प्रतिशत श्रमबल को नियोजित कर रहा है। लगभग 24 प्रतिशत श्रमिक सेवा क्षेत्रक में संलग्न हैं। सारणी 7.2 भी यह स्पष्ट कर रही है कि ग्रामीण भारत की तीन चौथाई

सारणी 7.2

1999-2000 में उद्योग में श्रमशक्ति का वितरण (%)

			लिंग		कुल
	ग्रामीण	शहरी	पुरुष	महिला	
प्राथमिक क्षेत्रक 	7.6.6	9.6	53.8	75.1	60.4
द्वितीयक क्षेत्रक 	10.8	31.3	17.6	11.8	15.8
तृतीयक/सेवा क्षेत्रक 	12.5	59.1	28.6	13.1	23.8
कुल	100	100	100	100	100

श्रमशक्ति कृषि, खनन और उत्खनन पर निर्भर है। लगभग 10 प्रतिशत ग्रामीण श्रमिक ही विनिर्माण उद्योगों, निर्माण और अन्य क्षेत्रों में लगे हुए हैं। केवल 13 प्रतिशत ग्रामीण श्रमिकों को सेवा क्षेत्र से ही रोजगार मिलता है। किंतु, शहरी क्षेत्रकों में कृषि और खनन रोजगार के प्रमुख स्रोत नहीं हैं, जहाँ अधिकांश लोग सेवा क्षेत्रक में कार्यरत हैं। 60 प्रतिशत शहरी श्रमिक सेवा क्षेत्रक में हैं। लगभग 30 प्रतिशत शहरी श्रमिक द्वितीयक क्षेत्रक में नियोजित हैं।

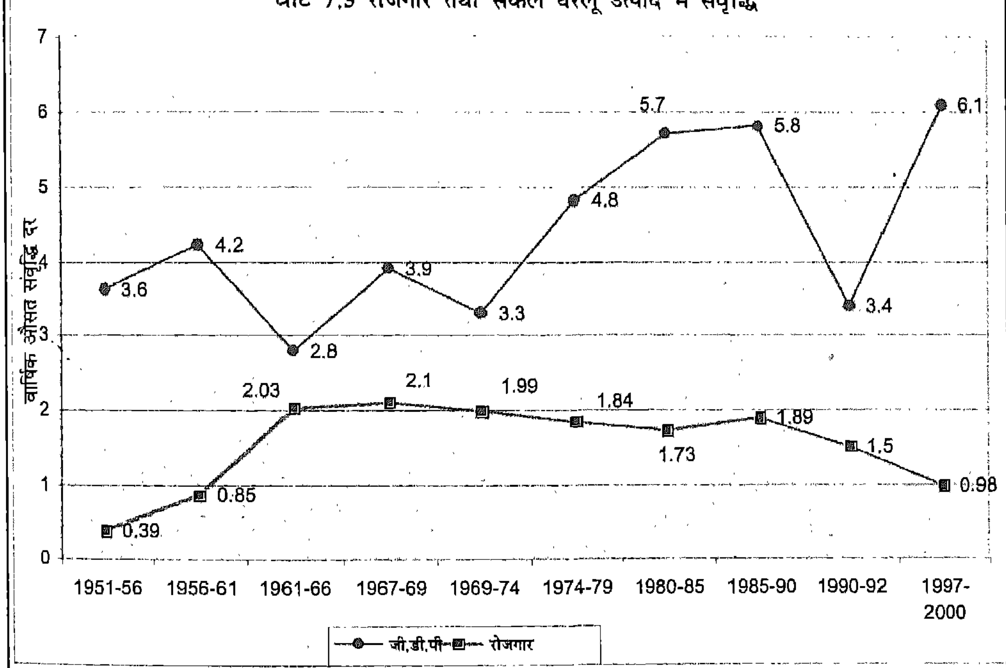
यद्यपि प्राथमिक क्षेत्रक में पुरुष और महिला दोनों ही प्रकार के श्रमिक संकेंद्रित हैं, पर वहाँ महिलाओं का संकेंद्रण बहुत अधिक है। इस प्राथमिक क्षेत्रक में तीन चौथाई से अधिक महिलाएँ कार्यरत हैं-जबकि इस क्षेत्र में काम कर रहे पुरुषों की संख्या लगभग आधी है। पुरुषों को द्वितीयक और सेवा क्षेत्र दोनों में ही रोजगार के अवसर प्राप्त हो जाते हैं।

7.6 संवृद्धि एवं परिवर्तनशील रोजगार संरचना

आपने अध्याय 2 और 3 में विस्तार से नियोजन-रणनीतियों के बारे में पढ़ा था। यहाँ हम केवल दो विकास सूचकों पर विचार करेंगे। ये हैं, रोजगार संवृद्धि और सकल घरेलू उत्पाद। पचास वर्षों से चल रहे योजनाबद्ध विकास का ध्येय राष्ट्रीय उत्पाद और रोजगार में वृद्धि के माध्यम से अर्थव्यवस्था का प्रसार रहा है।

1960-2000 की अवधि में भारत में सकल घरेलू उत्पाद में सकारात्मक वृद्धि हुई है और यह

चार्ट 7.3 रोजगार तथा सकल घरेलू उत्पाद में संवृद्धि



सारणी 7.3

रोजगार पद्धत्ति की प्रवृत्तियाँ (क्षेत्रक और स्थिति), 1972–2000 (प्रतिशत में)

मद	1972–73	1983	1993–94	1999–2000
क्षेत्रक				
प्राथमिक	74.3	68.6	64	60.4
द्वितीयक	10.9	11.5	16	15.8
सेवा	14.8	16.9	20	23.8
योग	100	100	100	100
स्थिति				
स्वनियोजित	61.4	57.3	54.6	52.6
नियमित वेतनभोगी कर्मचारी	15.4	13.8	13.6	14.6
अनियत दिहाड़ी मजदूर	23.2	28.9	31.8	32.8
योग	100	100	100	100

संवृद्धि दर रोजगार वृद्धि दर से अधिक रही है। किंतु, सकल घरेलू उत्पाद की वृद्धि दर में कुछ उतार-चढ़ाव भी आते रहे हैं। पर इस अवधि में रोजगार की वृद्धि लगभग 2 प्रतिशत बनी रही।

चार्ट 7.3, 1990 के दशक के अंतिम वर्षों में एक अन्य चिंताजनक घटनाक्रम की ओर भी इंगित कर रहा है: रोजगार वृद्धि दर कम होकर उसी स्तर पर पहुँच गई, जहाँ से योजनाकाल के प्रारंभिक चरणों में थी। इन्हीं वर्षों के दौरान हम सकल घरेलू उत्पाद और रोजगार की वृद्धि दरों के बीच काफी बड़ा अंतर पाते हैं। इसका अर्थ यह है कि हम भारतीय अर्थव्यवस्था में रोजगार सृजन के बिना ही अधिक वस्तुओं और सेवाओं का उत्पादन करने में समक्ष रहे हैं। इस परिघटना को विद्वान 'रोजगारहीन संवृद्धि' का नाम दे रहे हैं।

अभी तक हमने देखा कि रोजगार सकल घरेलू उत्पाद की वृद्धि की तुलना में किस तरह बढ़ा है। अब यह जानना भी आवश्यक है कि रोजगार और सकल घरेलू उत्पाद की वृद्धि दरों के इन स्वरूपों ने विभिन्न वर्गों के श्रमबल पर किस प्रकार के प्रभाव डाले। इससे हम समझ पाएँगे कि हमारे देश में किस प्रकार के रोजगार अवसरों का सृजन हो रहा है।

आइए, पिछले खंड में बताए गए दो सूचकों पर एक बार फिर से विचार करें। ये सूचक हैं, विभिन्न उद्योगों में लोगो को मिले रोजगार तथा उनकी स्थितियाँ। हम जानते हैं कि भारत कृषि प्रधान देश है। जनसंख्या का बहुत बड़ा भाग ग्रामीण क्षेत्रों में बसा है और यह अपनी मुख्य आजीविका के लिए कृषि पर निर्भर है। भारत

इन्हें कीजिए

- क्या आप जानते हैं कि भारत जैसे देश में रोजगार वृद्धि की दर को 2 प्रतिशत स्तर पर बनाए रखना इतना आसान काम नहीं है? क्यों?
- यदि अर्थव्यवस्था में अतिरिक्त रोजगार के सृजन बिना ही अधिक वस्तुओं और सेवाओं का उत्पाद करने में सफलता मिल जाए, तो क्या होगा? यह रोजगारहीन संवृद्धि कैसे संभव हो पाती है?
- अर्थशास्त्रियों का कहना है कि यदि श्रम के अनियतीकरण से जनता की आय में वृद्धि हो रही हो, तो इस प्रक्रिया का स्वागत होना चाहिए। कल्पना करें कि एक सीमांत किसान को पूर्णकालिक कृषि मजदूर बना दिया जाए। क्या आप सोचते हैं कि दिहाड़ी मजदूरी के इस कार्य से यदि उसकी आय में वृद्धि हो जाए, तो क्या वह अधिक प्रसन्न होगा? या, औषधि उद्योग के एक श्रमिक को दिहाड़ी मजदूर बना दिया और उसकी संपूर्ण आय भी बढ़ जाये, तो क्या वह प्रसन्न होगा? कक्षा में इन दोनों उदाहरणों के सभी पक्षों पर चर्चा करें।

सहित अनेक देशों के विकास रणनीतियों का ध्येय कृषि पर निर्भर जनसंख्या के अनुपात को कम करना रहा है।

औद्योगिक क्षेत्रकों के आधार पर श्रमबल का वितरण यह दिखाता है कि श्रमबल कृषि कार्यों से हटकर गैर कृषि कार्यों की ओर बड़े पैमाने पर बढ़ रहा है (सारणी 7.3 देखें)। जहाँ 1972-73 में प्राथमिक क्षेत्रक में 74 प्रतिशत श्रम बल लगा था, वहीं 1999-2000 में यह अनुपात घटकर 60 प्रतिशत रह गया है। द्वितीयक और सेवा क्षेत्रक भारत के श्रमबल के लिए आशावादी भविष्य का संकेत दे रहे हैं। आप देखेंगे कि इन क्षेत्रकों की हिस्सेदारी क्रमशः 11 से बढ़कर 16 और 15 से बढ़कर 24 प्रतिशत हो गई है।

विभिन्न स्थितियों में श्रमबल के वितरण को देखें तो पिछले तीन दशकों (1972-2000) में लोग स्वरोजगार और नियमित वेतन-रोजगार से हटकर अनियत श्रम की ओर बढ़ रहे हैं। फिर भी स्वरोजगार, रोजगार का सबसे बड़ा स्रोत बना हुआ है। विशेषज्ञ इस स्वरोजगार तथा नियमित वेतन से अनियत श्रम रोजगार की ओर जाने की प्रक्रिया को **श्रम बल के अनियतीकरण** का नाम देते हैं। इससे मजदूरों

बॉक्स 7.1 औपचारिक क्षेत्रक में रोजगार

संघीय श्रम मंत्रालय देश के विभिन्न भागों में स्थित रोजगार कार्यालयों के माध्यम से औपचारिक क्षेत्र में रोजगार संबंधित जानकारियाँ एकत्र करता है। क्या आप जानते हैं कि औपचारिक क्षेत्रक में सबसे बड़ा रोजगारदाता कौन है? वर्ष 2001 में इस क्षेत्रक में कार्य कर रहे 2.8 करोड़ कर्मचारियों में से 2 करोड़ कर्मचारी सार्वजनिक क्षेत्रक में कार्यरत थे। यहाँ भी पुरुषों का ही वर्चस्व है - महिलाएँ औपचारिक क्षेत्र के कर्मचारियों की केवल 1/16 अंश ही थीं। अर्थशास्त्रियों ने पाया है कि 1991 से आर्थिक सुधार प्रक्रिया ने औपचारिक क्षेत्र में कार्य कर रहे कर्मियों की संख्या को कम किया है। आपका क्या मत है?

की दशा बहुत नाजुक हो जाती है। यह कैसे हो रहा है? सारणी 7.2 में वर्णित अहमदाबाद का विशेष अध्ययन देखें।

7.7 भारतीय श्रमबल का अनौपचारीकरण

पिछले खंड में हमने पाया कि श्रमबल में अनियत श्रमिकों का अनुपात निरंतर बढ़ रहा है। स्वतंत्रता के बाद से विकास योजनाओं का एक ध्येय जनसामान्य के लिए सम्मानपूर्ण आजीविका का प्रबंध सुनिश्चित करना भी बताया गया है। यह कहा गया था कि औद्योगीकरण की रणनीति कृषि से अतिरिक्त श्रमिकों को उद्योगों में आकर्षित कर उन्हें विकसित देशों की भाँति उच्च जीवन स्तर सुलभ कराएगी। किंतु, हम यह पिछले अनुभाग में देख ही चुके हैं कि योजनाबद्ध विकास के 55 वर्ष बाद भी देश के श्रमबल के पाँच में से तीन सदस्यों के लिए कृषि ही रोजी-रोटी का प्रमुख साधन बनी हुई है।



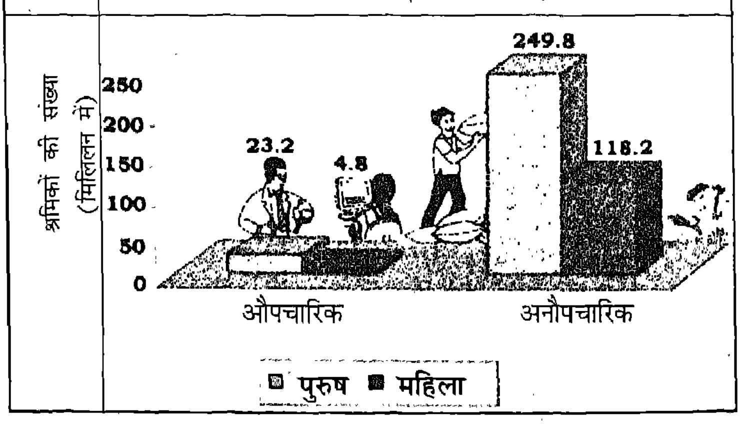
चित्र 7.4 सड़कों के किनारे दुकानदारी: *अनौपचारिक क्षेत्रक में बढ़ती विविधता*

अर्थशास्त्रियों का यह भी तर्क है कि अनेक वर्षों से रोजगार की गुणवत्ता में निरंतर ह्रास हो रहा है। आखिर 10-20 वर्षों तक काम कर चुके न जाने कितने ही श्रमिक मातृत्व लाभ, भविष्यनिधि, ग्रेच्युटी और पेंशन आदि से वंचित क्यों रह जाते हैं? निजी क्षेत्रक में कार्य करने वाला व्यक्ति सार्वजनिक क्षेत्रक में उसी काम को करने वाले से कम वेतन क्यों पाता है?

आपको यह भी जानकारी होनी चाहिए कि भारत के सकल श्रमबल के बहुत छोटे से वर्ग को ही नियमित आय मिल पा रही है। सरकार **श्रम कानूनों** का प्रयोग कर उनके हितों की रक्षा के प्रयास करती है। यही वर्ग अपने **श्रमिक संघों** को गठित कर रोजगारदाताओं से बेहतर मजदूरी और अन्य सामाजिक सुरक्षा उपायों के लिए सौदेबाजी भी करता है। ये कौन लोग हैं? इसी प्रश्न का उत्तर जानने के लिए हम श्रमबल

आरेख 7.4

औपचारिक तथा अनौपचारिक क्षेत्रों में श्रमिक, 1999-2000



बॉक्स 7.2 अहमदाबाद में अनौपचारीकरण

अहमदाबाद एक समृद्ध नगर है। यहाँ की समृद्धि का आधार 60 से अधिक कपड़े के कारखाने का उत्पाद है, जिनमें 1,50,000 श्रमिक काम करते हैं। पिछली एक शताब्दी में इन श्रमिकों ने एक निश्चित सीमा में आय की सुरक्षा हासिल कर ली थी। इनके निश्चित रोजगार थे और इन्हें मिल रहे वेतन निर्वाह के लिए पर्याप्त थे। साथ ही इन्हें अनेक प्रकार के सामाजिक सुरक्षा लाभ भी मिलने लगे, जो उनकी स्वास्थ्य और वृद्धावस्था की सुरक्षा सुनिश्चित करते थे। उनका एक सशक्त श्रमिक संघ भी था जो न केवल श्रम विवादों में उनका प्रतिनिधित्व करता था, बल्कि श्रमिकों और उनके परिवारों के लिए अनेक जनहितकारी क्रियाओं का संचालन भी करता था। किंतु, 1980 दशक के प्रारंभ में संपूर्ण देश में कुछ कपड़ा मिले बंद होने लगीं। मुम्बई जैसी कुछ जगहों में मिलें तेजी से बंद हो गईं। अहमदाबाद में मिल बंदी की यह प्रक्रिया कुछ धीमी रही और दस वर्षों तक खिंच गई। इस अवधि में, कम से कम 80,000 स्थायी तथा 50,000 गैर स्थायी कपड़ा मजदूरों का रोजगार छिन गया और वे अनौपचारिक क्षेत्र का सहारा लेने को विवश हो गए। इन्हीं परिस्थितियों में नगर में आर्थिक मंदी और जन आक्रोश के साथ-साथ सांप्रदायिक दंगे भी भड़क उठे।



एक घर में शक्ति संतुलन में परिवर्तन : एक बेरोजगार कारखाना श्रमिक घर में लहसुन छीलता हुआ, जबकि उसकी पत्नी को बीड़ी बनाने का एक काम मिल गया।

श्रमिकों के एक पूरे वर्ग को मध्ययवर्गीय सुरक्षित जीवन शैली से उखाड़ कर अनौपचारिक क्षेत्रक की निर्धनता झेलने के लिए छोड़ दिया गया। कितने ही कपड़ा श्रमिक शराब की लत के सहारे अपने कष्ट भुलाने के प्रयास करने लगे, कुछ ने शराब के माध्यम से आत्महत्या का रास्ता चुना और कितने ही परिवारों को बच्चों की शिक्षा अधूरी रोक कर उन्हें भी काम की तलाश के लिए भेजना पड़ा।

स्रोतः *रेनाना झालवालों, रत्ना एम. सुदर्शन एंड जी मील उन्नी (एडि.) इंफोर्मल इकॉनामी एट सेंटर स्टेज; न्यू स्ट्रक्चर्स ऑफ एंपलायमेंट, सेज पब्लिकेशंस, नई दिल्ली 2003, पृष्ठ 265।*

को औपचारिक तथा अनौपचारिक वर्गों में विभाजित कर रहे हैं। इन्हीं को संगठित और असंगठित क्षेत्रक भी कहा जाता है। सभी **सार्वजनिक क्षेत्रक प्रतिष्ठान** तथा 10 या अधिक कर्मचारियों को रोजगार देने वाले **निजी क्षेत्रक प्रतिष्ठान** संगठित क्षेत्रक माने जाते हैं। इन प्रतिष्ठानों में काम करने वालों को संगठित क्षेत्रक के कर्मचारी कहा जाता है। अन्य सभी उद्यम और उनमें कार्य कर रहे श्रमिक मिल कर अनौपचारिक क्षेत्रक की रचना करते हैं। इस प्रकार इस अनौपचारिक क्षेत्रक में करोड़ों किसान, कृषि श्रमिक, छोटे-छोटे काम-धंधे चलाने वाले और उनके

इन्हें कीजिए

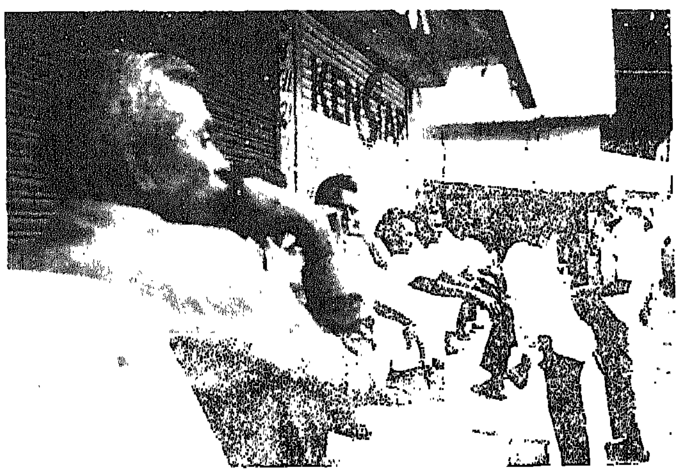
इनमें से असंगठित क्षेत्रकों की क्रियाओं में लगे व्यक्तियों के सामने चिन्ह अंकित करें:

- एक ऐसे होटल का कर्मचारी, जिसमें सात भाड़े के श्रमिक एवं तीन पारिवारिक सदस्य हैं।
- एक ऐसे निजी विद्यालय का शिक्षक, जहाँ 25 शिक्षक कार्यरत हैं।
- एक पुलिस सिपाही
- सरकारी अस्पताल की एक नर्स
- एक रिक्शाचालक
- कपड़े की दुकान का मालिक, जिसके यहाँ नौ श्रमिक कार्यरत हैं।
- एक ऐसी बस कंपनी का चालक, जिसमें 10 से अधिक बसें और 20 चालक, संवाहक तथा अन्य कर्मचारी हैं।
- दस कर्मचारियों वाली निर्माण कंपनी का सिविल अभियंता
- राज्य सरकारी कार्यालय में अस्थायी आधार पर नियुक्त कंप्यूटर ऑपरेटर
- बिजली दफ्तर का एक क्लर्क

कर्मचारी तथा सभी स्वनियोजित व्यक्ति, जिनके पास भाड़े का श्रमिक नहीं है, सम्मिलित हैं।

सामाजिक सुरक्षा व्यवस्था के लाभ संगठित क्षेत्रक के कर्मचारियों को मिलते हैं। इनकी कमाई भी असंगठित क्षेत्रक के कर्मचारियों से अधिक होती है। विकास योजनाओं में सैद्धांतिक रूप से यह माना गया था कि जैसे-जैसे अर्थव्यवस्था विकसित होगी, अधिकाधिक श्रमिक औपचारिक क्षेत्रक में सम्मिलित होते जाएँगे और अनौपचारिक क्षेत्रक के श्रमिकों का अनुपात बहुत कम रह जाएगा। किंतु, वास्तव में भारत में क्या हुआ? नीचे दिये गये आरेख को देखें जिसमें संगठित तथा असंठित क्षेत्रकों में श्रमबल का वितरण दर्शाया गया है।

खंड 7.2 में हमने जाना था कि भारत में 40 करोड़ श्रमिक हैं। आरेख 7.4 को देखें। केवल 2.8 करोड़ श्रमिक ही औपचारिक क्षेत्रक में कार्य कर रहे हैं। क्या आप इनका प्रतिशत अनुपात आकलित कर पाएंगे? ये मात्र 7 प्रतिशत हैं (28/400 100)। दूसरे शब्दों में, देश के



चित्र 7.5 *बेरोजगार मिल श्रमिक, अनियत रोजगार की प्रतीक्षा में*



चित्र 7.6 *गन्ने की कटाई करने वाले मजदूर; कृषि श्रमिकों में प्रछन्न बेरोजगारी आम होती है*

नहीं रखते हैं। इस क्षेत्रक के श्रमिक प्राय: गंदी बस्तियों में तथा झुग्गियों में रहते हैं। कुछ समय से अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के प्रयासों के फलस्वरूप भारत सरकार ने अनौपचारिक क्षेत्र के आधुनिकीकरण और इस क्षेत्रक के कर्मचारियों के लिए सामाजिक सुरक्षा व्यवस्था का प्रावधान किया है।

7.8 बेरोजगारी

आपने समाचार-पत्रों में रोजगार की तलाश करते हुए व्यक्तियों को देखा होगा। कुछ लोग अपने मित्रों और सगे संबंधियों के माध्यम से रोजगार तलाशते हैं। कई शहरों में कुछ चुने हुए स्थानों पर ऐसे अनेक लोग खड़े दिखाई दे जाते हैं, जिन्हें उस दिन के लिए काम देने वाले की प्रतीक्षा रहती हैं। कुछ लोग दफ्तरों-कारखानों में अपना जीवन-वृत्त सौंप कर वहाँ पता लगा रहे होते हैं कि क्या उनके योग्य कोई स्थान रिक्त है। कई लोग ग्रामीण क्षेत्रों में बाहर जाकर काम के बारे में पूछताछ नहीं करते हैं और घर पर ही बैठे रहते हैं, जब उन्हें कोई काम नहीं होता। कुछ व्यक्ति रोजगार कार्यालयों में उनके माध्यम से अनुसूचित रिक्तियों के लिए अपने नाम पंजीकृत कराते हैं। राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण संगठन ने बेरोजगारी को इस प्रकार परिभाषित किया है कि यह वह अवस्था है, जिसमें व्यक्ति काम के अभाव के कारण बिना काम के रह जाते हैं। वे कार्यरत व्यक्ति नहीं हैं, परंतु रोजगार कार्यालयों, मध्यस्थों, मित्रों, संबंधियों आदि के माध्यम से या संभावित रोजगारदाताओं को आवेदन देकर या वर्तमान

93 प्रतिशत श्रमिक अनौपचारिक क्षेत्रक में काम कर रहे हैं। यही नहीं, औपचारिक क्षेत्रक के श्रमिकों में महिलाओं की संख्या केवल 0.48 करोड़ अर्थात 17 प्रतिशत $(4.8/28 \times 100)$ मात्र है। अनौपचारिक क्षेत्रक में पुरुषों का अंश कुल श्रमबल का 69 प्रतिशत पाया गया है।

1970 के दशक के अंत में भारत सहित अनेक विकासशील देशों ने पाया कि औपचारिक क्षेत्रक में रोजगार वृद्धि नहीं हो पा रही। इसीलिए उन्होंने अनौपचारिक क्षेत्रक पर ध्यान देना आरंभ किया। किंतु, अनौपचारिक क्षेत्रक के उद्यमों और उनके श्रमिकों की आय नियमित नहीं होती और उन्हें सरकार से भी किसी प्रकार का संरक्षण और नियमन नहीं मिल पाता। श्रमिकों को बिना क्षति पूर्ति के ही काम से निकाल दिया जाता है। अनौपचारिक क्षेत्रक उपक्रमों में प्रयुक्त प्रौद्योगिकी पुरानी हो चुकी है तथा ये किसी प्रकार के लेखा-खाते भी

परिस्थितियों और प्रचलित मजदूरी दर पर काम करने की अपनी इच्छा प्रकट कर कार्य तलाशते हैं। किसी बेरोजगार व्यक्ति की पहचान विभिन्न तरीकों से की जाती है। अर्थशास्त्री उसे बेरोजगार कहते हैं, जो आधे दिन की अवधि में एक घंटे का रोजगार भी नहीं पा सकता।

भारत में बेरोजगारी के आँकड़ों के तीन स्रोत हैं; भारत की जनगणना रिपोर्ट, राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण संगठन की रोजगार और बेरोजगारी की अवस्था संबंधी रिपोर्ट तथा रोजगार और प्रशिक्षण महानिदेशालय के रोजगार कार्यालय में पंजीकृत आँकड़े। यद्यपि इन स्रोतों से बेरोजगारी के भिन्न-भिन्न अनुमान किए हैं, ये हमें बेरोजगारी के लक्षणों तथा देश में प्रचलित बेरोजगारी के प्रकारों के विषय में जानकारियाँ उपलब्ध कराते हैं।



चित्र 7.7 *बांध निर्माण कार्य में सरकार द्वारा प्रत्यक्ष रोजगार का सृजन होता है*

क्या हमारी अर्थव्यवस्था में बेरोजगारी भिन्न-भिन्न प्रकार की हैं? इस अनुच्छेद के प्रथम गद्यांश में वर्णित स्थिति को, खुली बेरोजगारी कहते हैं। भारत के कृषि में फैली बेरोजगारी को अर्थशास्त्री प्रच्छन्न बेरोजगारी कहते हैं। प्रच्छन्न बेरोजगारी क्या होती है? मान लीजिए कि किसी एक किसान के पास चार एकड़ का भूखंड है और उसे अपने खेत में विभिन्न प्रकार की क्रियाओं को निष्पादित करने में दो श्रमिकों की आवश्यकता है, किंतु यदि वह अपने परिवार के पाँच सदस्यों (पत्नी, बच्चों आदि) को कृषि कार्य में लगा ले तो यह स्थिति प्रच्छन्न बेरोजगारी के नाम से जानी जाती है। 1950 के दशक के अंत में किए गए एक अध्ययन के द्वारा भारत में एक तिहाई कृषि श्रमिकों को प्रच्छन्न रूप से बेरोजगार दिखाया गया था।

आपने यह भी देखा होगा कि बड़ी संख्या में लोग शहरों की ओर प्रवसन करते हैं, वहाँ नौकरी करते हैं और सीमित अवधि तक वहाँ रहते हैं। पर, वर्षा ऋतु आरंभ होते ही वे अपने गाँव लौट आते हैं। वे ऐसा क्यों करते हैं? कारण यही है कि कृषि का कार्य मौसमी होता है - वर्ष भर गाँव में रोजगार के अवसर नहीं होते हैं। जब खेत में काम नहीं होता है तो लोग शहर की ओर जाते हैं और काम खोजते हैं। ऐसी बेरोजगारी की अवस्था को मौसमी बेरोजगारी कहते हैं। भारत में बेरोजगारी का ये प्रकार भी बहुत बड़े स्तर पर प्रचलित है।

यद्यपि हमने देखा है कि रोजगार संवृद्धि दर बहुत धीमी रही है - पर क्या आपने लोगों को बहुत लंबे समय तक रोजगार से वंचित देखा है? विद्वानों का कहना है कि भारत में व्यक्ति

बहुत लंबे समय तक पूर्णत: बेरोजगार नहीं बैठे रह पाते, क्योकि उनकी आर्थिक दशा इतनी निराशाजनक होती है कि कोई भी काम स्वीकार करना पड़ जाता है। आप उन्हें ऐसे काम भी करते हुए देख सकते हैं जिन्हें कोई अन्य व्यक्ति नहीं कर सकता। इनमें बहुत ही असुविधाजनक, अस्वास्थ्यकर, अस्वच्छ तथा जोखिम भरे कार्य भी होते हैं। सरकार ने कई उपायों द्वारा स्वीकार्य रोजगार सृजन की कई पहल की है, जिसके द्वारा कम-से-कम न्यूनतम सुरक्षा और कार्य संतुष्टि की भावना उत्पन्न हो सके। इस विषय में अगले परिच्छेद में चर्चा की जायेगी।

7.9 सरकार और रोजगार सृजन

हाल ही में, भारत की संसद ने राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम, 2005 पारित किया है। यह देश के ग्रामीण परिवारों के अकुशल श्रमिक के रूप में कार्य करने को तैयार वयस्क सदस्यों को 100 दिन का दिहाड़ी उपलब्ध कराने की गारंटी देता है। इस कार्यक्रम का लाभ निर्धनता रेखा से नीचे रह रहे परिवारों को पहुँचाया जाएगा। ग्रामीण क्षेत्रों में जिन्हें नौकरी की आवश्यकता है, उन के लिए रोजगार के अवसरों का सृजन करने के लिए यह सरकार द्वारा संचालित अनेक उपायों में से एक है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद से संघीय और राज्य सरकारें रोजगार सृजन हेतु अवसरों की रचना करने में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाती आ रही हैं। इनके प्रयासों को दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है: प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष। जैसा कि आपने पिछले अनुभाग में पढ़ा कि प्रथम श्रेणी में सरकार अपने विभिन्न विभागों में प्रशासकीय कार्यों के लिए नियुक्तियाँ करती हैं। सरकार अनेक उद्योग, होटल, और परिवहन कंपनियां भी चला रही है। इन सबमें भी यह प्रत्यक्ष रूप से रोजगार प्रदान करती हैं। जब सरकारी उद्यमों में उत्पादन स्तर में वृद्धि होती है, तो उन उद्यमों को सामग्रियों की पूर्ति करने वाले निजी उद्यमों को भी अपना उत्पादन बढ़ाने का अवसर मिलता है। इससे भी अर्थव्यवस्था में नए रोजगार के अवसर पैदा होते हैं। उदाहरण के लिए, एक सरकारी इस्पात मिल में उत्पादन वृद्धि से उस सरकारी कंपनी में रोजगार में प्रत्यक्ष वृद्धि होती है। साथ ही उस इस्पात मिल को उत्पादनों की पूर्ति करने वाली और उससे इस्पात खरीदने वाली निजी कंपनियों को भी अपने-अपने उत्पादन और रोजगार बढ़ाने का अवसर मिल जाता है। यह सरकार द्वारा अप्रत्यक्ष रूप से अर्थव्यवस्था में रोजगार के अवसरों का सृजन है।

आपने अध्याय 4 में ध्यान दिया होगा कि सरकारों द्वारा गरीबी निवारण के लिए चलाए जा रहे अनेक कार्यक्रमों का क्रियान्वयन भी रोजगार सृजन के माध्यम से ही होता है। उन्हें रोजगार सृजन कार्यक्रम भी कहा जाता है। इस तरह के कार्यक्रम केवल रोजगार ही उपलब्ध नहीं कराते, इनके सहारे प्राथमिक जनस्वास्थ्य, प्राथमिक शिक्षा, ग्रामीण आवास, ग्रामीण जलपूर्ति, पोषण, लोगों की आय तथा रोजगार सृजन करने वाली परिसंपत्तियाँ खरीदने में सहायता, दिहाड़ी रोजगार के सृजन के माध्यम से सामुदायिक परिसपंत्तियों का विकास, गृह और स्वच्छता सुविधाओं का निर्माण, गृह-निर्माण के लिए सहायता, ग्रामीण सड़कों का निर्माण और बंजर भूमि आदि के विकास के कार्य पूरे किए जाते हैं।

7.10 निष्कर्ष

भारत की श्रमबल संरचना में परिवर्तन आ चुका है। सेवा क्षेत्रक में रोजगार के नये अवसरों का सृजन हो रहा है। सेवा क्षेत्रक का विस्तार तथा इसमें नयी प्रौद्योगिकी के प्रादुर्भाव का कारण अब निर्बाध रूप से लघु उद्योग तथा कुछ विशिष्ट उपक्रम तथा विशेषज्ञ श्रमिक ही बहुराष्ट्रीय कंपनियों से प्रतिस्पर्धा में टिक सकते हैं। कार्य की आउटसोर्सिंग एक सामान्य बात हो गयी है। इसका तात्पर्य यह है कि एक बड़ी फर्म के लिए यह लाभप्रद है कि वह अपने विशिष्ट विभागों (जैसे, विधि, कंप्यूटर प्रोग्रामिंग या ग्राहक सेवा-अनुभाग) को बंद कर छोटे उद्यमियों को बड़े पैमाने पर छोटे-छोटे रोजगार उपलब्ध कराए, जो कि दूसरे देशों में भी स्थित हो सकता है। आधुनिक कारखाने की परंपरागत अवधारणा इस प्रकार बदल रही है कि घर ही कार्य-स्थलों में परिवर्तित हो रहे हैं। यह समस्त परिवर्तन व्यक्तिगत श्रमिक के पक्ष में नहीं हो रहा है। श्रमिकों को न्यूनतम सामाजिक सुरक्षा की उपलब्धता के कारण रोजगार का स्वरूप और अधिक अनौपचारिक हो गया है। इसके बावजूद, पिछले दो दशकों में सकल घरेलू उत्पाद में तीव्र वृद्धि हुई है। लेकिन, इसके साथ ही रोजगार के अवसरों का सृजन नहीं होने के कारण सरकार को विशेष, तौर से ग्रामीण क्षेत्रों में, रोजगार के अवसरों का सृजन करने के लिए बाध्य होना पड़ा है।

पुनरावर्तन

- वैसे व्यक्ति जो आर्थिक क्रियाओं में संलग्न हैं और इस प्रकार राष्ट्रीय उत्पादन में योगदान कर रहे हैं, उन्हें हम श्रमिक कहते हैं।
- देश की जनसंख्या के पाँच में से दो व्यक्ति विभिन्न आर्थिक क्रियाओं में लगे हैं।
- मुख्यतः ग्रामीण पुरुष, देश के श्रमबल का सबसे बड़ा वर्ग हैं।
- भारत में अधिकांश श्रमिक स्वनियोजक हैं। अनियत दिहाड़ी मजदूर तथा नियमित वेतनभोगी कर्मचारी मिलकर भी भारत की समस्त श्रम शक्ति के अनुपात के आधे से भी कम ही रह जाते हैं।
- भारत के कुल श्रमबल का लगभग पाँच में से तीन श्रमिक कृषि और संबद्ध कार्यों से ही अपनी आजीविका प्राप्त करता है।
- हाल के कुछ वर्षों से रोजगार वृद्धि में शिथिलता आई है।
- सुधारोपरांत भारत में सेवा क्षेत्रक में नए रोजगार के अवसरों का उदय हुआ है। ये नए रोजगार मुख्यतः अनौपचारिक क्षेत्र के ही अंतर्गत आते हैं तथा इनके कार्य की प्रकृति अधिकांशतः अनियत है।
- सरकार देश में सबसे बड़ा औपचारिक क्षेत्रक नियोक्ता है।
- अब कौशल प्राप्ति और प्रशिक्षण प्राप्त करना रोजगार प्राप्ति के लिए महत्वपूर्ण हो गए हैं।
- प्रच्छन्न बेरोजगारी ग्रामीण बेरोजगारी का आम प्रकार है।
- भारत की श्रमबल की संरचना में बड़ा परिवर्तन आया है।
- अपनी विभिन्न योजनाओं और नीतियों द्वारा सरकार प्रत्यक्ष तथा परोक्ष रूप में रोजगार सृजन के लिए प्रयास करती है।



अभ्यास

1. श्रमिक किसे कहते हैं?
2. श्रमिक-जनसंख्या अनुपात की परिभाषा दें।
3. क्या ये भी श्रमिक हैं: एक भिखारी, एक चोर, एक तस्कर, एक जुआरी? क्यों?
4. इस समूह में कौन असंगत प्रतीत होता है: (क) नाई की दुकान का मालिक (ख) एक मोची (ग) मदर डेयरी का कोषपाल (घ) ट्यूशन पढ़ाने वाला शिक्षक, (ङ) परिवहन कंपनी संचालक (च) निर्माण मजदूर।
5. नये उभरते रोजगार मुख्यत:.......................... क्षेत्रक में ही मिल रहे हैं। (सेवा / विनिर्माण)
6. चार व्यक्तियों को मजदूरी पर काम देने वाले प्रतिष्ठान को .... क्षेत्रक कहा जाता है। (औपचारिक/अनौपचारिक)
7. राज स्कूल जाता है। पर जब वह स्कूल में नहीं होता, तो प्राय: अपने खेत में काम करता दिखाई देता है। क्या आप उसे श्रमिक मानेंगे? क्यों?
8. शहरी महिलाओं की अपेक्षा अधिक ग्रामीण महिलाएँ काम करती दिखाई देती हैं। क्यों?
9. मीना एक गृहिणी है। घर के कामों के साथ-साथ वह अपने पति की कपड़े की दुकान के काम में भी हाथ बँटाती है। क्या उसे एक श्रमिक माना जा सकता है? क्यों?
10. यहाँ किसे असंगत माना जाएगा: (क) किसी अन्य के अधीन रिक्शा चलाने वाला (ख) राजमिस्त्री (ग) किसी मेकेनिक की दुकान पर काम करने वाला श्रमिक (घ) जूते पालिश करने वाला लड़का।
11. निम्न सारणी में 1972-73 में भारत के श्रमबल का वितरण दिखाया गया है। इसे ध्यान से पढ़कर श्रमबल के वितरण के स्वरूप के कारण बताइए। ध्यान रहे कि ये आँकडे 30 वर्ष से भी अधिक पुराने हैं।

निवास स्थान	श्रमबल (करोड़ में)		
	पुरुष	महिलाएँ	कुल योग
ग्रामीण	12.5	6.9	419.5
शहरी	3.2	0.7	3.9

12. इस सारणी में 1999-2000 में भारत की जनसंख्या और श्रमिक जनानुपात दिखाया गया है। क्या आप भारत के (शहरी और सकल) श्रमबल का अनुमान लगा सकते हैं?

क्षेत्र	अनुमानित जनसंख्या (करोड़ में)	श्रमिक जनसंख्या अनुपात	श्रमिकों की अनुमानित संख्या (करोड़ में)
ग्रामीण	71.88	41.9	71.88 41.9/100=30.12
शहरी	28.52	33.7	?
योग	100.40	39.5	?

13. शहरी क्षेत्रों में नियमित वेतनभोगी कर्मचारी ग्रामीण क्षेत्र से अधिक क्यों होते हैं?
14. नियमित वेतनभोगी कर्मचारियों में महिलाएँ कम क्यों हैं?
15. भारत में श्रमबल के क्षेत्रकवार वितरण की हाल की प्रवृत्तियों का विश्लेषण करें।
16. 1970 से अब तक विभिन्न उद्योगों में श्रमबल के वितरण में शायद ही कोई परिवर्तन आया है। टिप्पणी करें।
17. क्या आपको लगता है पिछले 50 वर्षों में भारत में रोजगार के सृजन में भी सकल घरेलू उत्पाद के अनुरूप वृद्धि हुई है? कैसे?
18. क्या औपचारिक क्षेत्रक में ही रोजगार का सृजन आवश्यक है? अनौपचारिक में नहीं? कारण बताइए।
19. विक्टर को दिन में केवल दो घंटे काम मिल पाता है। बाकी सारे समय वह काम की तलाश में रहता है। क्या वह बेराजगार है? क्यों? विक्टर जैसे लोग क्या काम करते होंगे?
20. क्या आप गाँव में रह रहे हैं? यदि आपको ग्राम-पंचायत को सलाह देने को कहा जाय तो आप गाँव की उन्नति के लिए किस प्रकार के क्रियाकलाप का सुझाव देंगे, जिससे रोजगार सृजन भी हो।
21. अनियत दिहाड़ी मजदूर कौन होते हैं?
22. आपको यह कैसे पता चलेगा कि कोई व्यक्ति अनौपचारिक क्षेत्रक में काम कर रहा है?

अतिरिक्त गतिविधियाँ

1. एक क्षेत्रक का चयन करें जैसे, गली या कॉलोनी और उसे तीन-चार उपक्षेत्रकों में बाँटें। एक सर्वेक्षण का आयोजन करें। उसमें प्रत्येक व्यक्ति की सभी क्रियाओं का ब्यौरा एकत्र कर लें। फिर सभी उपक्षेत्रकों के लिए अलग-अलग श्रमिक जनसंख्या अनुपात का आकलन करें। अपने परिणामों के आधार पर विभिन्न उपक्षेत्रकों में श्रमिक-जनसंख्या अनुपात में अंतरों की व्याख्या करें।
2. प्रदेश के अलग-अलग क्षेत्रों के अध्ययन का दायित्व छात्रों के तीन-चार समूहों को बाँट दें। एक क्षेत्र में मुख्यत: धान की खेती होती है। दूसरे में नारियल के बाग ही मुख्य कार्य हैं। तीसरे क्षेत्र में मछलियाँ पकड़ना मुख्य व्यवसाय है। चौथे क्षेत्र में नदी बहती है और वहाँ पशुपालन की बहुतायत है। छात्रों के समूहों को उन क्षेत्रों के अनुरूप रोजगार सृजन की आवश्यकता पर अपनी-अपनी रिपोर्टें तैयार करने के लिए कहें।

3. स्थानीय पुस्तकालय में जाकर भारत सरकार द्वारा प्रकाशित साप्ताहिक रोजगार समाचार की मांग करें तथा पिछले दो महीनों के अंक देखें। ये सात अंक होंगे। इनमें 25 विज्ञापनों का चयन करें तथा निम्न सारणी को भरें (सारणी की आवश्यकता के अनुसार इसे बनायें)। उसके बाद, कक्षा में उपलब्ध रोजगारों की प्रकृति बारे में चर्चा करें।

मदें	विज्ञापन संख्या 1	विज्ञापन संख्या 2
1. कार्यालय का नाम		
2. विभाग/कंपनी		
3. निजी/सार्वजनिक/संयुक्त उपक्रम		
4. पद का नाम		
5. क्षेत्रक-प्राथमिक/द्वितीयक/ तृतीयक		
6. पदों/रिक्तियों की संख्या		
7. आवश्यक योग्यताएँ		

4. आपने अपने घर के आस-पास सरकार द्वारा किए जा रहे कई काम देखे होंगे। ये सड़क निर्माण, तालाबों की सफाई, स्कूल भवनों का निर्माण, अस्पताल व अन्य सरकारी कार्यालय, जलरोधक बाँधों का निर्माण, गरीबों के लिए गृह निर्माण आदि के काम हो सकते हैं। किसी एक कार्य की समालोचनात्मक रिपोर्ट तैयार करें। इसमें इन विषयों पर चर्चा हो सकती है: (क) काम की पहचान किस प्रकार की गई (ख) कितनी धन राशि स्वीकृत हुई (ग) स्थानीय जनता का योगदान, यदि हो तो (घ) कार्य में लगे व्यक्तियों की संख्या, पुरुष और महिलाएँ (ङ) भुगतान की गई मजदूरी (च) क्या उस कार्य की उस क्षेत्र में वास्तव में आवश्यकता थी, जिस योजना के अंतर्गत यह कार्य हो रहा है, उस पर भी आलोचनात्मक टिप्पणी की जा सकती है।
5. हाल के वर्षों में आपने पहाड़ी और शुष्क क्षेत्रों में रोजगार सृजन की पहल करते हुए कई स्वयंसेवी संस्थाओं को देखा होगा। यदि आपके क्षेत्र में भी ऐसी कोई संस्था काम कर रही है, तो उसके प्रकल्प को देखने जाइए और उस पर अपनी रिपोर्ट तैयार कीजिए।



संदर्भ

चड्ढा जी. के. एंड पी. पी. साहू 2002. 'पोस्ट रिफॉर्म सेटबैंक्स इन रूरल अनइम्प्लाइमेंट: इश्यू दैट नीड फर्दर सिक्यूरिटी' इकोनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली, मई 25, पी.पी. 1998–2006।

देसाई सोनाली एंड मैत्रिय वोर्डिया दास 2004. "*इज इंप्लाइमेंट ड्राइविंग इण्डियाज सर्ज*", इकोनॉमिक एंड पॉलिटिक वीकली, जुलाई 3, पी.पी. 3045–3051।

घोष, अनिल रे 1999. करेंट इश्यूज ऑफ इंप्लॉयमेंट पालिसी इन इंडिया, इकॉनॉमिक एंड पालिटिकल वीकली, सितंबर 4, पी.पी. 2592–2608।

हिरवे इंदिरा 2002. 'इंप्लाइमेंट एंड अनइंप्लाइमेंट सिचुएशन इन 1990: हाउ गुड आर.एन.एस.एस. डाटा' इकोनॉमिक एंड पॉलिटिकल विकली, मई 25, पी.पी. – 2027–2036।

जैकब पॉल 1986. '*कांस्पेट ऑफ वर्क एंड एस्टीमेट्स ऑफ वर्कफोर्स* – एन एप्राइजल ऑफ द ट्रीटमेंट ऑफ एक्टिविटीज रिलेटिंग टू नन मार्केटड आउटपुट' सर्वेक्षण, वोल्यूम 9, नं. 4, अप्रैल।

कुलश्रेष्ठ ए. सी. गुलाब सिंह, आलोक कर एंड आर. एल. मिश्रा (200), '*वर्कफोर्स इन द इंडियन नेशनल एकाउंट्स स्टेटिक्स,*' द जर्नल ऑफ इनकम एंड वेल्थ, वोल्यूम 22, न. 2, जुलाई, पी.पी. 3–39।

प्रधान के.के. एंड एम.आर. सलूजा. 1996. '*लेबर स्टेटिस्टिक्स इन इंडिया: अ रिव्यू*' मार्जिन, जुलाई-सितबंर, वोल्यूम 28, नबंर 4, पी.पी. 319-347

रथ, नीलाकांत. 2001 '*डेट ऑन इंप्लाइमेंट, अनइंप्लाइमेंट एंड एजुकेशन: ''व्हेयर टू गो फ्रॉम हेयर?*' इकोनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली, जून, पी.पी. 2081–2087।

सुंदरम्, के. 2001 '*इंप्लॉपमेंट अनइंप्लॉयमेंट सिचुएशन इन दि नाइनटीज*: सम रिजल्ट्स फ्रॉम एन एस एस 55वें राउंड सर्वे, इकॉनॉमिक एंड पालिटिकल वीकली, मार्च 17, पी.पी. 931-940।

सुंदरम के. 2001. *इंप्लाइमेंट एंड पॉवर्टी इन 1990;* फर्दर रिज़ल्टस फार्म एन.एस.एस. 55वें राउंड इंप्लाइमेंट-अनइंप्लाइमेंट सर्वे, 1999–2000, इकोनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली, अगस्त 11, पी.पी. – 3039–3049।

विसारिया प्रवीण 1996. '*स्ट्रक्चर ऑफ द इंडियन वर्कफोर्स,* 1961–1994' द इंडियन जर्नल ऑफ लेबर इकोनॉमिक्स, वोल्यूम-39, न. 4, पी.पी. – 425–740।

सरकारी रिपोर्ट

एनुअल रिपोर्ट्स, मिनिस्ट्री ऑफ लेबर, गर्वमेंट ऑफ इंडिया, दिल्ली।

सेंसस ऑफ इंडिया 2001, प्राइमरी सेंसस अब्सट्राक्ट, रजिस्ट्रार जनरल ऑफ सेंसस ऑपरेशन, मिनिस्ट्री ऑफ होम अफेयर्स, गर्वमेंट ऑफ इंडिया, दिल्ली।

इकोनॉमिक सर्वे, मिनिस्ट्री ऑफ फायनांस, गर्वमेंट ऑफ इंडिया, रिपोर्ट ऑन इंप्लाइमेंट एंड अनइंप्लाइमेंट सिचुएशन इन इंडिया, मिनिस्ट्र ऑफ स्टेटिक्स एंड प्लानिंग, गर्वमेंट ऑफ इंडिया।

वेबसाईट

www.censusofindia.nic.in
www.mspi.nic.in

8

आधारिक संरचना

इस अध्याय को पढ़ने के बाद आप

- सामाजिक और आर्थिक आधारिक संरचना के क्षेत्रों में भारत को कौन-सी प्रमुख चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है, इसे समझ सकेंगे;
- आर्थिक विकास में आधारिक संरचना की भूमिका को जानेंगे;
- आधारिक संरचना के प्रमुख अंग के रूप में ऊर्जा की भूमिका को समझेंगे;
- ऊर्जा और स्वास्थ्य क्षेत्रकों की समस्याएँ और संभावनाओं के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे;
- भारत में स्वास्थ्य की आधारिक संरचना के विषय में जानेंगे।

अनेक वस्तुएँ जिनकी हमें आवश्यकता है, प्रतीक्षा कर सकते हैं; लेकिन एक बच्चा नहीं। उसे हम 'कल' नहीं कह सकते। उसका नाम 'आज' है।

-चीली कवि गबरेयल्ला मिस्ट्रल

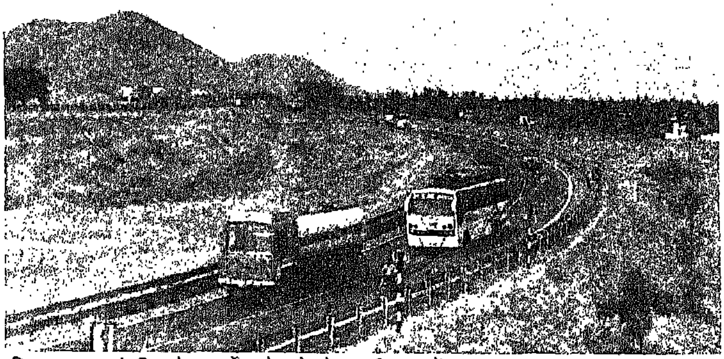
ऐसा ही आधारिक संरचना के साथ है।

8.1 परिचय

क्या आपने कभी इस बात पर विचार किया है कि भारत के कुछ राज्य, अन्य क्षेत्रों के कुछ राज्यों के मुकाबले अधिक अच्छी तरह से क्यों कार्य कर रहे हैं? कृषि और बागवानी के उत्पादन में क्यों पंजाब, हरियाणा और हिमाचल प्रदेश समृद्ध हो गए हैं? औद्योगिक तौर पर महाराष्ट्र और गुजरात अन्य राज्यों की अपेक्षा आगे क्यों हैं? स्वयं ईश्वर देश के रूप में प्रसिद्ध केरल राज्य साक्षरता, स्वास्थ्य की देखभाल और सफाई में कैसे प्रवीणता प्राप्त कर गया और बड़ी संख्या में पर्यटकों को आकर्षित करता है? कर्नाटक सूचना प्रौद्योगिकी उद्योग सारे विश्व का ध्यान क्यों आकर्षित करता है?

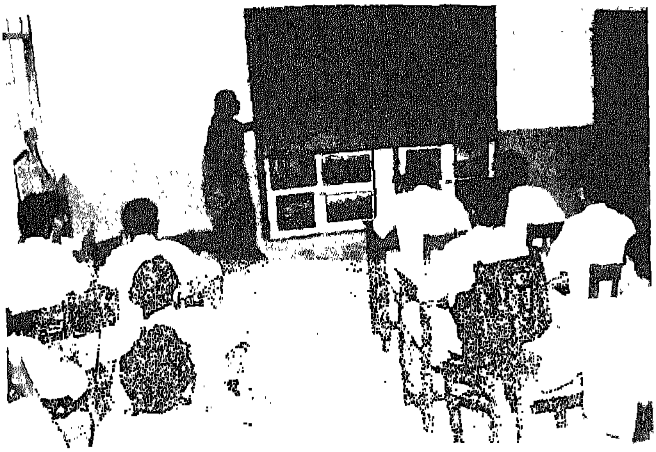
यह सब इसीलिए है क्योंकि इन राज्यों में अन्य राज्यों की अपेक्षा उन क्षेत्रों में बेहतर आधारिक संरचना है, जिनमें वे आगे बढ़े हुए हैं। कुछ राज्यों के पास बेहतर सिंचाई सुविधाएँ हैं। कुछ राज्यों में परिवहन की अच्छी सुविधा है या वे बंदरगाह के निकट स्थित हैं, जिसमें उन्हें अपने विभिन्न विनिर्माण उद्योगों के लिए आवश्यक कच्चा माल आसानी से मिल जाता हैं। कर्नाटक में बंगलौर जैसे शहर अनेक बहुराष्ट्रीय कंपनियों को आकर्षित करते हैं, क्योंकि वे विश्वस्तरीय संचार सुविधाएँ उपलब्ध कराते हैं। ये समस्त सहयोगी संरचना जो किसी एक देश के विकास को संभव बनाती हैं, उस देश की आधारिक संरचना का निर्माण करती हैं। फिर, आधारिक संरचना किस प्रकार से विकास को संभव करती हैं?

8.2 आधारिक संरचना क्या हैं?



चित्र 8.1 *संवृद्धि के मार्गों को जोडने वाली सड़कें*

आधारिक संरचना औद्योगिक व कृषि उत्पादन, घरेलू व विदेशी व्यापार और वाणिज्य के प्रमुख क्षेत्रों में सहयोगी सेवाएँ उपलब्ध कराती हैं। इन सेवाओं में सड़क, रेल, बंदरगाह, हवाई अड्डे, बाँध, बिजली घर, तेल व गैस, पाईपलाइन, दूरसंचार सुविधाएँ, स्कूल-कॉलेज सहित देश की शैक्षिक व्यवस्था , अस्पताल



चित्र 8.2 *विद्यालय किसी देश की महत्वपूर्ण आधारिक संरचना*

व स्वास्थ्य व्यवस्था, सफाई, पेयजल और बैंक, बीमा व अन्य वित्तीय संस्थाएँ तथा मुद्रा प्रणाली शामिल हैं। इनमें से कुछ सुविधाओं का प्रत्यक्ष प्रभाव उत्पादन व्यवस्था की कार्य प्रणाली पर पड़ता है, जबकि कुछ अन्य अर्थव्यवस्था के सामजिक क्षेत्रकों के निर्माण में अप्रत्यक्ष रूप से सहयोग करते हैं।

इन्हें कीजिए

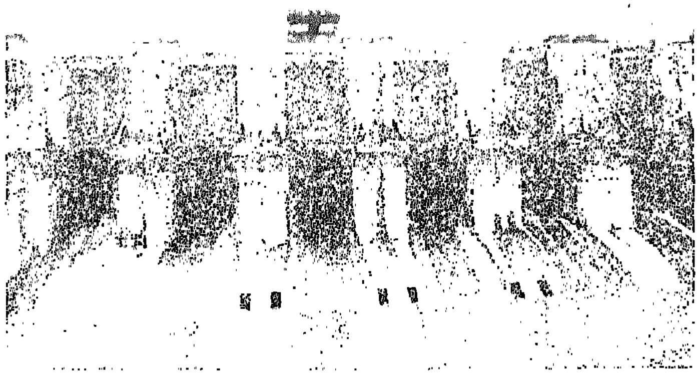
➢ अपने क्षेत्र में या पड़ोस में आप अनेक प्रकार की आधारिक संरचनाओं का उपयोग करते हैं। उन सबकी सूची बनायें। आपके क्षेत्र को कुछ और आवश्यकताएँ हो सकती हैं। अलग से उनकी सूची बनायें।

कुछ लोग आधारिक संरचना को दो श्रेणियों में बाँटते हैं-सामाजिक और आर्थिक। ऊर्जा, परिवहन और संचार आर्थिक श्रेणी में आते हैं जबकि शिक्षा, स्वास्थ्य और आवास सामाजिक आधारिक संरचना की श्रेणी में आते हैं।

8.3 आधारिक संरचना की प्रासंगिकता

आधारिक संरचना ऐसी सहयोगी प्रणाली है, जिस पर एक आधुनिक औद्योगिक अर्थव्यवस्था की कार्यकुशल कार्यप्रणाली निर्भर करती है। आधुनिक कृषि भी बीजों, कीटनाशक दवाइयों और खाद के तीव्र व बड़े पैमाने पर परिवहन के लिए इस पर निर्भर करती है। इसके लिए यह आधुनिक सड़कों, रेल और जहाजी सुविधाओं का उपयोग करती हैं। आधुनिक कृषि को बहुत बड़े पैमाने पर कार्य करने की आवश्यकता के कारण बीमा और बैंकिग सुविधाओं पर भी निर्भर होना पड़ता है।

संरचनात्मक सुविधाएँ एक देश के आर्थिक विकास में उत्पादन के तत्वों की उत्पादकता में वृद्धि करके और उसकी जनता के जीवन की गुणवत्ता में सुधार करके अपना योगदान करती हैं। अपर्याप्त आधारिक संरचना से स्वास्थ्य पर अनेक प्रकार से बुरा असर पड़ सकता है। जलापूर्ति और सफाई में सुधार से प्रमुख जल संक्रमित बीमारियों से **अस्वस्थता** में कमी आती है और बीमारी के होने पर भी उसकी गंभीरता कम होती है। जल, सफाई और स्वास्थ्य के बीच इस स्पष्ट संबंध के अलावा यह भी हम जानते हैं कि परिवहन और संचार की संरचनात्मक सुविधा की गुणवत्ता का प्रभाव स्वास्थ्य देखभाल पर पड़ सकता है। विशेषकर घनी आबादी वाले क्षेत्रों में परिवहन से जुड़े वायु प्रदूषण और बचाव जोखिमों का असर रूग्णता पर पड़ सकता है।



चित्र 8.3 *बाँध : विकास के मंदिर*

जल और अन्य बुनियादी आवश्यकताओं के लिए उन्हें दूर-दूर तक जाना पड़ता है। 2001 की जनगणना के आँकड़े यह बताते हैं कि ग्रामीण भारत में केवल 56 प्रतिशत परिवारों में बिजली की सुविधा है, जबकि 43 प्रतिशत परिवारों में आज भी मिट्टी के तेल का उपयोग होता है। ग्रामीण क्षेत्र में लगभग 90 प्रतिशत परिवार खाना बनाने में जैव-ईंधन का इस्तेमाल करते हैं। केवल 24 प्रतिशत ग्रामीण परिवारों में लोगों को नल का पानी उपलब्ध है। लगभग 76 प्रतिशत लोग कुआँ, टैंक, तालाब, झरना, नदी, नहर आदि जैसे पानी के खुले स्रोतों से पानी पीते हैं। राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण द्वारा किये गये एक और अध्ययन से यह पता चला कि वर्ष 1996

8.4 आधारिक संरचना की स्थिति

पारंपरिक रूप से भारत में आधारिक संरचना को विकसित करने का पूरा उत्तरदायित्व सरकार का था। लेकिन यह पाया गया कि आधारिक संरचना में सरकार का निवेश अपर्याप्त था। आजकल निजी क्षेत्रक ने स्वयं और सरकार के साथ संयुक्त भागीदारी कर आधारिक संरचना के विकास में एक अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभानी शुरू कर दी है।

हमारी बहुसंख्य आबादी ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करती है। विश्व में अत्यधिक तकनीकी उन्नति के बावजूद ग्रामीण महिलाएँ अपनी ऊर्जा की आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु फसल का बचा-खुचा, गोबर और जलाऊ लकड़ी जैसे जैव ईंधन का आज भी उपयोग करती हैं। ईंधन,



चित्र 8.4 *पक्के घर के साथ स्वच्छ पेय जल: अभी भी एक स्वप्न*

सारणी 8.1

भारत तथा अन्य देशों में कुछ आधारिक संरचना, 2003

देश	सकल घरेलू उत्पाद के प्रतिशत के रूप में निवेश	सुरक्षित पेयजल तक पहुंच (%)	उन्नत सफाई तक पहुंच (%)	मोबाइल प्रयोक्ता/1000 लोग	फोन लाइन/ 1000 लोग	बिजली उत्पादन (1000 किलोवाट)
चीन	20	75	38	66	113	230
हांगकांग	4	100	100	817	560	1630
भारत	**5**	**84**	**28**	**4**	**33**	**107**
कोरिया	7	92	63	583	449	1067
पाकिस्तान	2	90	62	2	20	109
सिंगापुर	5	100	100	684	528	1887
इण्डोनेशिया	14	76	66	18	28	97

स्रोत: *विश्व विकास रिपोर्ट 2005, विश्व बैंक, वाशिंगटन डी.सी. 2004।*

इन्हें कीजिए

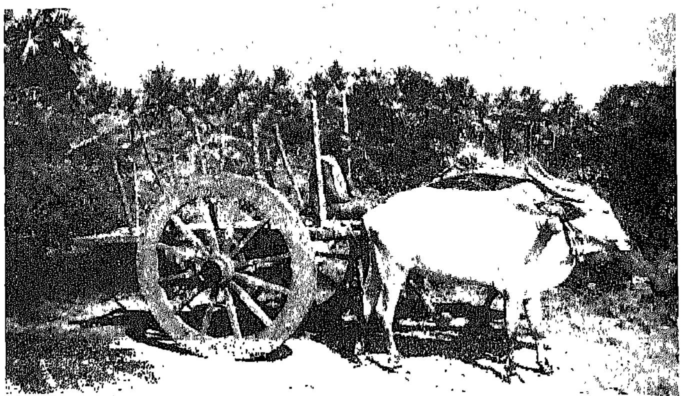
- समाचार पत्र पढ़ते हुए आप भारत निर्माण, विशेष प्रयोजन वाहन (Special Purpose Vehicle), विशिष्ट आर्थिक क्षेत्र, निर्माण परिचालन हस्तातंरण (Built Operate Transfer) निजी सार्वजनिक भागीदारी इत्यादि शब्दों को पढ़ते हैं। स्क्रैपबुक में ऐसे शब्दों का प्रयोग करने वाले समाचारों को चिपकाइए। इन शब्दों का आधारिक संरचना से क्या संबंध है।
- इस पाठ के अंत में दिये गये संदर्भों का उपयोग करते हुए अन्य आधारिक संरचना के बोर में जानकारी प्राप्त करें।

तक ग्रामीण इलाकों में केवल छह प्रतिशत लोगों को सफाई की सुविधाएँ प्राप्त थीं।

सारणी 8.1 देखें। इसमें भारत में उपलब्ध कुछ आधारिक संरचना सुविधाओं की तुलना कुछ अन्य देशों में उपलब्ध सुविधाओं से की गई है। यह सर्वविदित है कि आधारिक संरचना विकास की नींव है, लेकिन भारत में अभी भी इनकी बहुत कमी है। भारत आधारिक संरचना पर अपने सकल घरेलू उत्पाद का मात्र 5 प्रतिशत निवेश करता है जो कि चीन और इंडोनेशिया से काफी कम है।

कुछ अर्थशास्त्रियों ने अनुमान लगाया है कि अब से कुछ दशकों के बाद भारत विश्व की तीसरी बड़ी अर्थव्यवस्था होगी। इसके लिए भारत को आधारिक संरचना सुविधाओं में निवेश को बढ़ाना होगा। किसी भी देश में आय में वृद्धि के साथ-साथ आधारिक संरचना के गठन में महत्वपूर्ण परिवर्तन आते हैं। अल्प आय वाले देशों के लिये सिंचाई, परिवहन और बिजली जैसी बुनियादी आधारिक संरचना सेवाएँ अधिक महत्वपूर्ण हैं। जैसे-जैसे अर्थव्यवस्थाएँ परिपक्व होती हैं और उनकी बुनियादी उपयोग के योग्य माँगों की पूर्ति होती है, वैसे-वैसे अर्थव्यवस्था में कृषि की हिस्सेदारी कम होती जाती है और

सेवा से संबंधित आधारिक संरचना की आवश्यकता पड़ती है। यही कारण है कि उच्च आय वाले देशों में बिजली और दूरसंसचार की आधारिक संरचना का हिस्सा अधिक होता है। अत: आधारिक संरचना का विकास और आर्थिक विकास साथ-साथ होते हैं। काफी हद तक कृषि सिचांई सुविधाओं के पर्याप्त विकास व विस्तार पर निर्भर करती है। औद्योगिक प्रगति बिजली उत्पादन, परिवहन और संचार के विकास पर निर्भर करती है। यह स्पष्ट है कि यदि आधारिक संरचना की ओर उचित ध्यान नहीं दिया गया, तो इससे आर्थिक विकास में गंभीर रूकावटें आयेंगी। इस अध्याय में हमारा ध्यान दो प्रकार की आधारिक संरचना की ओर से होगा, जिनका संबंध ऊर्जा और स्वास्थ्य से है।



चित्र 8.6 *बैलगाड़ी अभी भी ग्रामीण परिवहन बाजार का महत्वपूर्ण माध्यम*

8.5 ऊर्जा

हमें ऊर्जा की आवश्यकता क्यों पड़ती हैं? किन स्वरूपों में यह उपलब्ध है? किसी राष्ट्र की विकास प्रक्रिया में ऊर्जा का एक महत्वपूर्ण स्थान है, साथ ही यह उद्योगों के लिए भी अनिवार्य है। अब इसका कृषि और उससे संबंधित क्षेत्रों जैसे खाद, कीटनाशक और कृषि-उपकरणों के उत्पादन और यातायात में उपयोग भारी स्तर पर हो रहा है। घरों में इसकी आवश्यकता भोजन बनाने, घरों को प्रकाशित करने और गर्म करने के लिए होती है। क्या आप ऊर्जा के बिना किसी उपयोगी वस्तु के उत्पादन या सेवा की कल्पना कर सकते हैं?

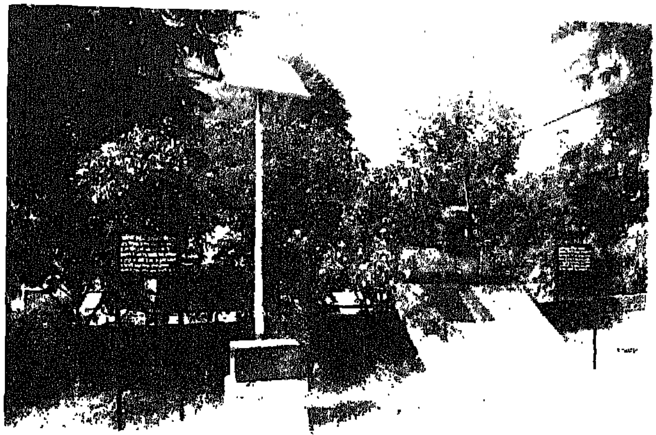


चित्र 8.5 *ऊर्जा का महत्वपूर्ण स्रोत ईंधन की लकड़ी*

ऊर्जा के स्रोत: ऊर्जा के व्यावसायिक और गैर व्यावसायिक स्रोत होते हैं। व्यावसायिक स्रोतों में कोयला, पेट्रोल और बिजली आते हैं क्योंकि उन्हें खरीदा और बेचा जाता है। भारत में उपभोग किये जाने वाले समस्त ऊर्जा स्रोतों में इनका हिस्सा 50 प्रतिशत से ऊपर है। ऊर्जा के गैर-व्यावसायिक स्रोतों में जलाऊ लकड़ी, कृषि का कूड़ा-कचरा (Waste) और सूखा

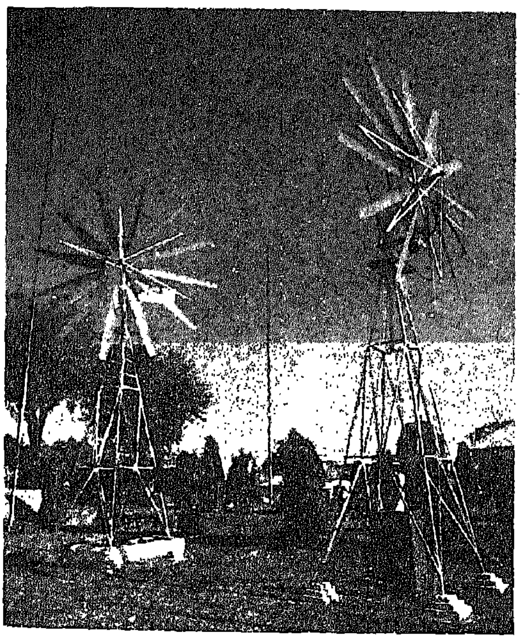
गोबर आते हैं। ये गैर-व्यावसायिक हैं, क्योंकि ये हमें प्रकृति/जंगलों में मिलते हैं।

आमतौर पर ऊर्जा के व्यावसायिक स्रोत (पनबिजली को छोड़कर) समाप्त हो जाते हैं जबकि गैर-व्यवसायिक स्रोतों का पुनर्नवीनीकरण हो सकता है। भारतीय परिवारों में 60 प्रतिशत से अधिक परिवार अपनी नियमित भोजन और गर्म करने की आवश्यकताओं के लिए ऊर्जा के परम्परागत स्रोतों पर निर्भर हैं।



चित्र 8.8 *सौर ऊर्जा के लिए बड़ी संभावनाएँ*

ऊर्जा के गैर-पारंपरिक स्रोत: ऊर्जा के व्यावसायिक और गैर-व्यावसायिक स्रोतों को हम ऊर्जा के पारंपरिक स्रोत कहते हैं।



चित्र 8.7 *ऊर्जा का अन्य स्रोत पवन चक्की*

ऊर्जा के तीन और स्रोत हैं जिन्हें हम आमतौर पर गैर-पारंपरिक स्रोत कहते हैं, वे हैं-सौर ऊर्जा, पवन ऊर्जा और ज्वार ऊर्जा। उष्ण प्रदेश होने के कारण भारत में इन तीनों प्रकार की ऊर्जाओं का उत्पादन करने की असीमित संभावनाएँ हैं। ऐसा तभी संभव होगा जबकि कोई मौजूदा सस्ती प्रौद्योगिकी का उपयोग किया जाये या और भी सस्ती प्रौद्योगिकी विकसित की जाये।

व्यावसायिक ऊर्जा की उपयोग पद्धति: वर्तमान में भारत में ऊर्जा के कुल उपभोग का 65 प्रतिशत व्यावसायिक ऊर्जा से पूरा होता है। इसमें कोयला शामिल है, जिसका 55 प्रतिशत का अंश सबसे अधिक है। इसमे तेल (31 प्रतिशत), प्राकृतिक गैस (11 प्रतिशत) और जल ऊर्जा (3 प्रतिशत) शामिल हैं। जलाऊ लकड़ी, गाय का गोबर और कृषि का कूड़ा-कचरा आदि गैर-व्यावसायिक ऊर्जा स्रोतों का उपयोग भारत में कुल ऊर्जा उपयोग का 30 प्रतिशत से ज्यादा है। भारत के ऊर्जा क्षेत्रक की एक

सारणी 8.2

व्यावसायिक ऊर्जा उपयोग के क्षेत्रकवार हिस्सेदारी की प्रवृत्तियाँ (% में)

क्षेत्रक	*1953-54*	*1970-71*	*1990-91*	*1996-97*
परिवार	10	12	12	12
कृषि	01	03	08	09
उद्योग	40	50	45	42
परिवहन	28	22	22	22
अन्य	5	07	13	15
कुल	100	100	100	100

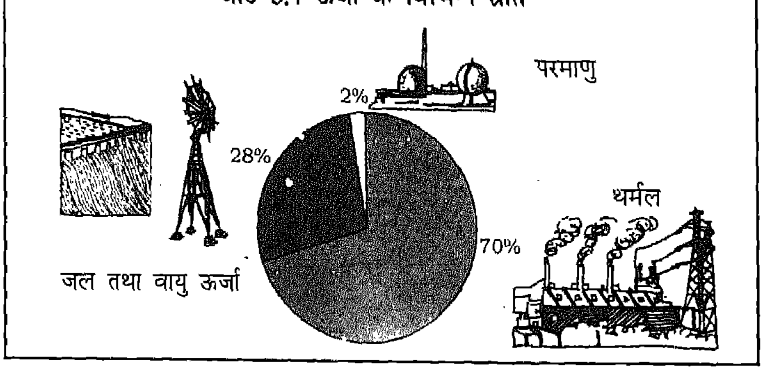
स्रोत: नवम पंचवर्षीय योजना, भाग 2, योजना आयोग, भारत सरकार, नई दिल्ली।.

महत्वपूर्ण विशेषता है, जिसका अर्थव्यवस्था से भी संबंध है, कि हमें पेट्रोल और पेट्रोलियम उत्पादों के लिए आयात पर निर्भर होना पड़ता है और निकट भविष्य में इस निर्भरता में 100 प्रतिशत से ज्यादा वृद्धि होगी।

सारणी 8.2 में व्यावसायिक ऊर्जा के उपयोग की क्षेत्रकवार पद्धति दी गई है। 1953-54 में परिवहन क्षेत्रक व्यावसायिक ऊर्जा का सबसे बड़ा उपभोक्ता था। लेकिन परिवहन क्षेत्रक के अंश में निरंतर गिरावट आई है जबकि औद्योगिक क्षेत्रक उपयोग में वृद्धि हो रही है। समस्त व्यावसायिक ऊर्जा उपयोग में तेल और गैस का अंश सबसे अधिक है। आर्थिक विकास की तीव्र दर के साथ-साथ ऊर्जा के उपयोग में भी वृद्धि हुई है।

ऊर्जा/विद्युत ऊर्जा: ऊर्जा का सबसे दृष्टिगोचर रूप, जिसे प्राय: आधुनिक सभ्यता की प्रगति का द्योतक माना जाता है, में बिजली आती है। किसी देश के आर्थिक विकास को निर्धारित करने वाली आधारिक संरचना में बिजली अत्यंत महत्वपूर्ण है। प्राय: बिजली की माँग की अभिवृद्धि दर सकल घरेलू उत्पाद दर से ऊँची होती है। अध्ययनों से पता चलता है कि 8 प्रतिशत प्रतिवर्ष सकल घरेलू उत्पाद प्राप्त करने के लिए बिजली की पूर्ति में अभिवृद्धि का प्रतिवर्ष दर लगभग 12 प्रतिशत होना चाहिए।

चार्ट 8.1 ऊर्जा के विभिन्न स्रोत



बिजली ऊर्जा का एक द्वितीयक रूप है जो

इन्हें कीजिए

- आपने यह ध्यान दिया होगा कि ऊर्जा के विभिन्न स्रोतों में परमाणु ऊर्जा का अंश बहुत ही कम है। क्यों? विद्वानों का यह कहना है कि तेल और कोयले की बढ़ती कीमतों को देखते हुए परमाणु शक्ति ही सर्वश्रेष्ठ विकल्प है। अपनी कक्षा में इस पर विचार या वाद-विवाद करें।
- भविष्य में ऊर्जा के स्रोतों में सौर शक्ति, पवन शक्ति और ज्वार से प्राप्त शक्ति होंगी। उनके तुलनात्मक लाभ और हानियां क्या हैं? कक्षा में चर्चा करें।

कि प्राथमिक ऊर्जा स्रोत जैसे-कोयला, हाइड्रोकार्बन, ज्वार ऊर्जा, परमाणु ऊर्जा, पुनर्नवीनीकृत ऊर्जा आदि से उत्पादित होती है। प्राथमिक ऊर्जा खपत में ईंधन के प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष उपभोग शामिल होते हैं। भारत में ऊर्जा के द्वितीयक स्रोतो में कोयला, तेल, बिजली और प्राकृतिक गैस हैं।

भारत में 2003-04 में कुल बिजली उत्पादन क्षमता का लगभग 70 प्रतिशत उत्पादन तापीय स्रोतों से हुआ। जल, वायु और परमाणु स्रोतों का प्रतिशत क्रमशः 28 और 2.4 रहा। भारत की ऊर्जा नीति जल और वायु के ऊर्जा स्रोतों को प्रोत्साहन देती है क्योंकि ये स्रोत जीवाश्म ईंधन पर निर्भर नहीं हैं, इसीलिए इनमें कार्बन उत्सर्जन नहीं होता। इसके परिणामस्वरूप, इन दोनों स्रोतों से उत्पादित बिजली में तीव्र अभिवृद्धि हुई है।

बिजली की शक्ति का एक महत्वपूर्ण स्रोत परमाणु ऊर्जा है; इसके पर्यावरण संबंधी फायदे हैं और दीर्घकाल में यह सस्ती साबित हो सकती है। वर्तमान में परमाणु ऊर्जा का कुल प्राथमिक ऊर्जा खपत में केवल 2.4 प्रतिशत का अंश है, जबकि विश्व औसत 13 प्रतिशत है। यह बहुत ही कम है।

विद्युत क्षेत्रक की कुछ चुनौतियाँ:

विभिन्न पॉवर स्टेशनों द्वारा जनित बिजली का पूरा उपभोग उपभोक्ता नहीं करते। उसके एक अंश का उपभोग पॉवर स्टेशन के सहायक इकाइयों द्वारा किया जाता है। बिजली के संप्रेषण में भी उसका एक हिस्सा खत्म हो जाता है। शेष बिजली हम अपने घरों, ऑफिसों और कारखानों में प्राप्त करते हैं।

भारत के बिजली क्षेत्र के समक्ष आज कई प्रकार की चुनौतियाँ हैं; (क) भारत की वर्तमान बिजली उत्पादन क्षमता सात प्रतिशत की प्रतिवर्ष आर्थिक क्षमता अभिवृद्धि के लिए पर्याप्त नहीं है। 2000-2012 के बीच में बिजली की

बॉक्स 8.1 लीक से हटकर

थाणे शहर की एक पूर्णतया नई छवि उभर रही है-जो पर्यावरण मित्र के रूप में है। सौर्य ऊर्जा, जिसे कभी असंभव माना जाता था, के बड़े पैमाने पर प्रयोग द्वारा वास्तविक लाभ मिले हैं तथा लागत और ऊर्जा की बचत हुई है। इसका प्रयोग पानी गरम करने, विद्युत्चालित यातायात प्रकाश व्यवस्था और विज्ञापन होर्डिंगों को प्रकाशमान करने के लिए किया जाता है। थाणे नगरपालिका का इस अद्वितीय प्रयोग में अग्रणी स्थान है। शहर की सभी नई इमारतों के लिए सौर्य जल तापन पद्धति को स्थापित करना अनिवार्य कर दिया गया है (आउटलुक 01, अगस्त, 2005 में कॉलम 'मेकिंग ए डिफरेंस' में प्रकाशित)।

- क्या आप गैर परंपरागत ऊर्जा के प्रयोग का ऐसा ही कोई अन्य उदाहरण दे सकते हैं?

बॉक्स 8.2 विद्युत वितरण दिल्ली के संदर्भ में

स्वतंत्रता के पश्चात् राजधानी में विद्युत प्रबंधन में चार बार परिवर्तन हुआ। 1951 में **दिल्ली राज्य-विद्युत बोर्ड** की स्थापना हुई। 1958 में **दिल्ली विद्युत आपूर्ति निगम (D.E.S.U)** बना। 1997 में प्रबंध व्यवस्था में तीसरा परिवर्तन हुआ और **दिल्ली विद्युत बोर्ड** बना। अब दिल्ली विद्युत बोर्ड का निजीकरण हो गया है और इसका प्रबंधन देश के दो प्रमुख विद्युत कंपनियों के हाथ में है। रिलायंस एनर्जी लिमिटड के स्वामित्व वाली **B.S.E.S** अपनी दो कंपनियों के माध्यम से दिल्ली के दो-तिहाई हिस्से में विद्युत वितरण करती है। इन दो कंपनियों में (जिन्हे Discoms कहते हैं) **B.S.E.S.** राजधानी पॉवर लिमिटेड दक्षिण और पश्चिमी क्षेत्रों में सक्रिय है जबकि **B.S.E.S.** यमुना पॉवर लिमिटेड केंद्रीय और पूर्वी दिल्ली में विद्युत वितरण का कार्यभार संभालती है। राजधानी के उत्तर और उत्तर पश्चिम क्षेत्रों में टाटा पावर की **N.D.P.L.** विद्युत वितरण करती है। इसके अलावा Discoms के पास 220 किलोवाट के 23 ग्रिड हैं, जिनसे राजधानी क्षेत्र के लगभग 28 लाख उपभोक्ताओं को बिजली की पूर्ति की जाती है। बिजली की दर और अन्य विनियामक मुद्दों की देख रेख **दिल्ली विद्युत विनियमन** आयोग करता है। यह आशा थी कि विद्युत् वितरण में अधिक सुधार होगा और उपभोक्ताओं को कई रूपों में लाभ मिलेगा। लेकिन अनुभव बताता है कि परिणाम असंतोषजनक है।

बढ़ती माँग को पूरा करने के लिए भारत को 1 लाख मेगावाट बिजली उत्पादन करने की नयी क्षमता की आवश्यकता होगी। वर्तमान में भारत प्रतिवर्ष मात्र 20 हजार मेगावाट नई क्षमता जोड़ पाता है। यहाँ तक कि स्थापित क्षमता का भी अल्प उपयोग होता है, क्योंकि बिजलीघर उचित तरीके से नहीं चल रहे। (ख) राज्य विद्युत बोर्ड जो विद्युत वितरण करते हैं, की हानि पाँच सौ विलियन से ज्यादा है। इसका कारण संप्रेषण और वितरण का नुकसान, बिजली की अनुचित कीमतें और अकार्यकुशलता है। कुछ विद्वानों का यह मत है कि किसानों को विद्युत का वितरण ही नुकसान का प्रमुख कारण है। अनेक क्षेत्रों में बिजली की चोरी होती है जिससे राज्य विद्युत निगमों को और भी नुकसान होता है। (ग) बिजली के क्षेत्र में निजी क्षेत्रक की भूमिका बहुत कम है। विदेशी निवेश का भी यही हाल है। (घ) भारत के विभिन्न भागों में बिजली की ऊँची दरें और लंबे समय तक बिजली गुल होने से आमतौर पर जनता में असंतोष है। भारत के थर्मल पावर स्टेशन, जो कि भारत के बिजली क्षेत्र के आधार हैं, कच्चे

बॉक्स 8.3 ऊर्जा बचतः कॉमपेक्ट फ्लोरोसेंट लैंप के विषय का संवर्द्धन

ऊर्जा कार्यकुशलता ब्यूरो के अनुसार कॉम्पेक्ट फ्लोरोसेंट लैंप सामान्य बल्बों की अपेक्षा 80 प्रतिशत कम बिजली की खपत करते हैं। इंडो-एशियन नामक कॉमपेक्ट फ्लोरोसेंट लैम्प के निर्माता का कहना है कि दस लाख 100 वॉट बल्व की 20 वॉट की कॉमपेक्ट फ्लोरोसेन्ट लैंप का प्रयोग करने से बिजली उत्पादन में 80 मेगावॉट की बचत हो सकती है। पांच करोड़ प्रति मेगावॉट की संस्थागत कीमत, मतलब 400 करोड़ रुपये की बचत है।

स्रोतः *नरेश मिनोच्चा की यूज कॉमनसेंस टू सोल्व पॉवर क्राइसिस, तहलका 1 अक्टूबर, 2005*

इन्हें कीजिए

- आप किस प्रकार की ऊर्जा का प्रयोग अपने घर में करते हैं? अपने अभिभावक से पता करें कि वे विभिन्न प्रकारों की ऊर्जा में एक महीने में कितना धन खर्च करते हैं?
- आपको बिजली की पूर्ति कौन करता है और उसका उत्पादन कहाँ होता है? क्या आप किसी सस्ती वैकल्पिक ऊर्जा स्रोत के बारे में सोच सकते हैं, जो कि आपके घर को प्रकाशित करने या भोजन पकाने या दूरदराज की जगहों का भ्रमण करने में सहायक हो सकती है।
- नीचे की सारणी देखें। क्या आप समझते हैं कि ऊर्जा खपत विकास का एक प्रभावशाली सूचक है?

देश	2003 में प्रतिव्यक्ति (डॉलर में) आय	2001 में ऊर्जा की प्रतिव्यक्ति खपत (तेल के एक किलोग्राम के बराबर)
भारत	2,880	515
इंडोनेशिया	3,210	729
मिस्र	3,940	737
इग्लैंड	27,650	3,982
जापान	28,620	4,099
अमेरिका	37,500	7,996

***स्रोत**-वर्ल्ड डेवलपमेंट रिपोर्ट 2005 और वर्ल्ड डेवलपमेन्ट इंडीकेटर्स 2004।*

- पता करें कि आपके क्षेत्र में बिजली का वितरण कैसे होता है? साथ में अपने शहर की कुल बिजली मांग का पता करें और यह भी पता लगायें कि उसे कैसे पूरा किया जाता है।
- आपने देखा होगा कि लोग बिजली और अन्य ऊर्जा को बचाने के लिए विभिन्न प्रकार के तरीकों का प्रयोग करते हैं। उदाहरण के लिए, गैस स्टोव का प्रयोग करने पर गैस एजेंसी गैस को कार्यकुशलता और बचत के साथ प्रयोग करने के कुछ तरीके बतलाती है। अपने अभिभावकों और बुजुर्गों से उन पर चर्चा कीजिए, मुख्य बातों को लिखिए और कक्षा में उन पर चर्चा कीजिए।

माल और कोयले की पूर्ति में कमी का सामना कर रहे हैं।

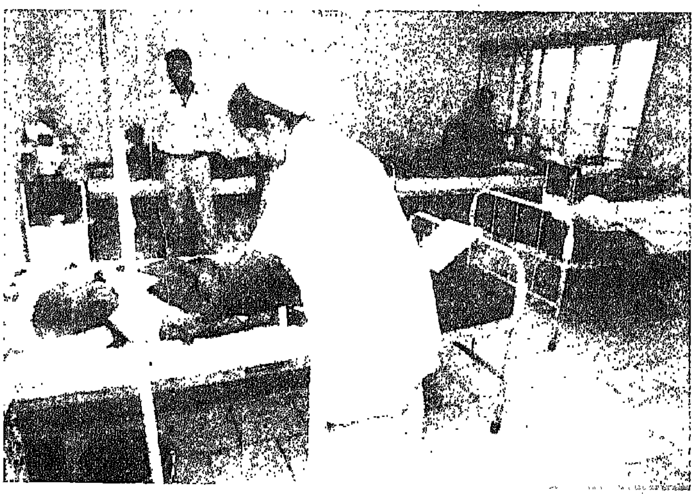
इस प्रकार, निरंतर आर्थिक विकास और जनसंख्या वृद्धि से भारत में ऊर्जा की माँग में तीव्र वृद्धि हो रही है। यह माँग वर्तमान में उत्पन्न की जा रही ऊर्जा से बहुत अधिक है। अधिक सार्वजनिक निवेश, बेहतर अनुसंधान व विकास के उपाय तकनीकी खोज और ऊर्जा के पुनर्नवीनीकृत स्रोतों से बिजली की अतिरिक्त पूर्ति सुनिश्चित की जा सकती है। इस क्षेत्र में निजी क्षेत्र ने कुछ प्रगति की है, अतः यह अवसर है कि निजी क्षेत्र को आगे लाया जाये और वह व्यापक स्तर पर बिजली का उत्पादन करे। इस विषय में किये गये प्रयत्नों की भी प्रशंसा की जानी

चाहिए। उदाहरण के लिए, वायु शक्ति के उत्पादन में विश्व में भारत का पहले से ही पाँचवाँ स्थान है और इसमें 95 प्रतिशत से अधिक निवेश निजी क्षेत्र का है। पुनर्नवीनीकृत ऊर्जा स्रोतों पर अधिकाधिक निर्भरता से बहुत से आर्थिक सामाजिक और पर्यावरणीय लाभ प्राप्त होते हैं।

8.6 स्वास्थ्य

स्वास्थ्य से हमारा मतलब केवल बीमारियों का न होना ही नहीं है, बल्कि यह अपनी कार्य-क्षमता प्राप्त करने की योग्यता भी है। किसी की सुख-समृद्धि का मापदंड है। स्वास्थ्य राष्ट्र की समग्र संवृद्धि और विकास से जुड़ी एक पूर्ण प्रक्रिया है। यद्यपि बीसवीं शताब्दी के इतिहास ने उत्कृष्ट मानव स्वास्थ्य के वैश्विक रूपातरंण को देखा है, फिर भी किसी राष्ट्र की स्वास्थ्य-दशा की माप को किसी एक इकाई के रूप में परिभाषित करना कठिन है। आमतौर पर विद्वान, लोगों के स्वास्थ्य का निर्धारण शिशु मृत्यु-दर और मातृत्व मृत्यु दर, जीवन-प्रत्याशा और पोषण स्तर के साथ-साथ संक्रामक और असंक्रामक रोगों की घटनाओं जैसे सूचकों द्वारा करते हैं।

स्वास्थ्य आधारिक संरचना के विकास से किसी देश में वस्तुओं व सेवाओं के उत्पादन के लिए स्वस्थ जनशक्ति सुनिश्चित होती है। हाल के वर्षों में विद्वानों का कहना है कि लोगों को स्वास्थ्य-सुविधाएँ प्राप्त करने का अधिकार है। यह सरकार की जिम्मेदारी है कि वह नागरिकों के स्वस्थ स्वास्थ्य जीवन के अधिकार को सुनिश्चित करे। स्वास्थ्य आधारिक संरचना में अस्पताल, डॉक्टर, नर्स और अन्य अर्द्ध-चिकित्साकर्मी, बेड, अस्पतालों में जरूरी उपकरण और एक सुविकसित दवा उद्योग शामिल हैं। यह भी सत्य है कि स्वास्थ्य आधारिक संरचना की मात्र उपस्थिति से ही लोग स्वस्थ हों यह आवश्यक नही, लोगों की इन सुविधाओं पर पहुँच होनी चाहिए।



चित्र 8.9 *देश के हिस्से में अभी भी स्वास्थ्य आधारिक संरचना का अभाव*

योजनाबद्ध विकास के आरंभ से ही नीति निर्माताओं ने जोर दिया कि कोई व्यक्ति चिकित्सा सुविधा-आरोग्यकारी और निवारक, प्राप्त करने से वंचित इसलिए न रह जाए, क्योंकि वह उसकी कीमत अदा नहीं कर पाता। लेकिन, क्या हम इस आदर्श को प्राप्त कर पाये हैं? इससे पहले कि हम विभिन्न आधारिक संरचनाओं पर विचार करें, आइए, भारत में स्वास्थ्य की स्थिति पर चर्चा करें।

स्वास्थ्य आधारिक संरचना की स्थिति : सरकार पर यह संवैधानिक जिम्मेदारी है कि वह स्वास्थ्य-शिक्षा, भोजन में मिलावट, दवाएँ तथा जहरीले पदार्थ, चिकित्सा व्यवसाय, जन्म-मृत्यु संबंधी आँकड़े, मानसिक अक्षमता और पागलपन जैसे स्वास्थ्य संबंधित गंभीर मुद्दों को निदेशित व विनियमित करे। केंद्र सरकार, केंद्रीय स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण परिषद् की सहायता से विस्तृत नीतियाँ एवं योजनाएँ विकसित करती है। वे सूचनाएँ इकट्ठा करते है और देश में महत्वपूर्ण स्वास्थ्य कार्यक्रमों को लागू करने के लिए राज्य सरकारों, केंद्र शासित प्रदेशों और अन्य निकायों को वित्तीय व तकनीकी सहायता प्रदान करती है।

पिछले वर्षों के दौरान भारत ने विभिन्न स्तरों पर एक व्यापक स्वास्थ्य आधारिक संरचना और जनशक्ति को विकसित किया है। गाँव के स्तर पर सरकार ने अनेक प्रकार के अस्पतालों की व्यवस्था की है। भारत में ऐसे अस्पतालों की संख्या भी अधिक है जो कि स्वैच्छिक संस्थाओं और निजी क्षेत्रक द्वारा चलाये जा रहे हैं। इन अस्पतालों को मेडिकल, दवा और नर्सिंग कॉलेजों में प्रशिक्षित चिकित्सा और अर्द्ध-चिकित्साकर्मी संचालित करते हैं।

स्वतंत्रता के बाद से स्वास्थ्य सेवाओं की संख्या में महत्वपूर्ण विस्तार हुआ है। 1951-2000 के बीच अस्पतालों और दवाखानों की संख्या 9300 से बढ़कर 43,300 हो गई और अस्पतालों के बेड 10.2 करोड़ से 70.2 करोड़ हो गये (सारणी 8.3 देखें)। 1951-99 के दौरान नर्सिंगकर्मियों की संख्या 0.18 से 8.7 लाख हो गई जबकि एलोपैथी डॉक्टरों की संख्या 0.62

सारणी 8.3

भारत में सार्वजनिक स्वास्थ्य संरचनात्मक सेवाएँ 1951-2000

मद	*1951*	*1981*	*2000*
अस्पताल	2694	6805	15888
अस्पताल / दवाखाना में बेड	117000	504538	719861
दवाखाना	6600	16745	23065
सार्वजनिक स्वास्थ्य केंद्र	725	9115	22842
उपकेंद	-	84736	137311
सामुदायिक स्वास्थ्य केंद्र	-	761	3043

स्रोतः *नेशनल कमिशन ऑन मैक्रोइकोनॉमिक्स एंड हेल्थ, स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली, 2005।*

से 5 लाख हो गई। स्वास्थ्य आधारिक संरचना के विस्तार से चेचक और स्नायुक रोगों का उन्मूलन और पोलियो तथा कुष्ठ रोग का पूर्ण उन्मूलन हो गया है।

निजी क्षेत्रक में स्वास्थ्य आधारिक संरचना: हाल के समय में सार्वजनिक स्वास्थ्य क्षेत्रक अपने कर्त्तव्य के निर्वाह में बहुत अधिक सफल नहीं हुआ है। इस बारे में और अधिक अध्ययन हम अगले अध्याय में करेंगे। लेकिन इस क्षेत्र में निजी क्षेत्र ने बहुत प्रगति की है। भारत में 70 प्रतिशत से अधिक अस्पतालों का संचालन निजी क्षेत्रक कर रहा है। उनके पास अस्पतालों में उपलब्ध बेडों का 2/5 वाँ हिस्सा है। लगभग 60 प्रतिशत दवाखानें निजी क्षेत्र द्वारा चलाये जा रहे हैं। वे 80 प्रतिशत बर्हिरोगियों और 46 प्रतिशत अंत:रोगियों के स्वास्थ्य की देखभाल करते हैं।

पिछले वर्षों में निजी क्षेत्रक मेडिकल शिक्षा व प्रशिक्षण, मेडिकल प्रौद्योगिकी तथा रोग-निदान अन्वेषण, दवाइयों की बिक्री,

बॉक्स 8.5 भारत में स्वास्थ्य व्यवस्था

भारत की स्वास्थ्य आधारिक संरचना और स्वास्थ्य सुविधाओं की तीन स्तरीय व्यवस्था है- प्राथमिक, द्वितीयक और तृतीयक। प्राथमिक क्षेत्रक सुविधाओं में प्रचलित स्वास्थ्य समस्याओं का ज्ञान तथा उन्हें पहचानने, रोकने और नियंत्रित करने की विधि, खाद्य पूर्ति तथा उचित पोषण और जल की पर्याप्त पूर्ति तथा मूलभूत स्वच्छता, शिशु एवं मातृत्व देखभाल, प्रमुख संक्रामक बीमारियों और चोटों से प्रतिरोध तथा मानसिक स्वास्थ्य का संवर्द्धन और आवश्यक दवाओं का प्रावधान शामिल है। ऑक्सीलियरी नर्सिंग मिडवाइफ (ए.एन.एम.) पहला व्यक्ति है, जो ग्रामीण इलाके में प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल प्रदान करता है। प्राथमिक चिकित्सा प्रदान करने के लिए गाँवों तथा छोटे कस्बों में अस्पताल बनाये गये हैं। आमतौर पर यहां एक डॉक्टर, एक नर्स और सीमित मात्रा में दवाएँ उपलब्ध होती हैं। इन्हें प्राथमिक चिकित्सा केंद्र, सामुदायिक चिकित्सा केंद्र और उपकेंद्रों के नाम से जाना जाता है। जब एक रोगी की हालत में प्राथमिक चिकित्सा केंद्र में सुधार नहीं हो पाता, तो उन्हें द्वितीयक या मध्य या उच्च श्रेणी के अस्पतालों में भेजा जाता है। जिन अस्पतालों में शल्य-चिकित्सा, एक्सरे, इ.सी.जी. जैसी बेहतर सुविधाएं होती हैं, उन्हें माध्यमिक चिकित्सा संस्थाएँ कहते हैं। वे प्राथमिक चिकित्सा और बेहतर स्वास्थ्य सुविधाएँ, दोनों ही प्रदान करते हैं। वे प्राय: जिला मुख्यालय और बड़े कस्बों में होते हैं। ऐसे सभी अस्पताल जहाँ उच्च-स्तर के उपकरण और दवाइयाँ उपलब्ध हों और और जो कि ऐसे गंभीर स्वास्थ्य समस्याओं का निपटान करें जिसकी सुविधाएँ प्राथमिक या माध्यमिक अस्पतालों में हो, तृतीयक क्षेत्र में आते हैं।



स्वास्थ्य जागरूकता गोष्ठी की प्रगति पर



शिशु को पोलियो ड्राप दिया जाना

तृतीयक क्षेत्र में ऐसे प्रमुख संस्थान भी शामिल हैं जो कि न केवल उत्तम मेडिकल शिक्षा प्रदान करते और अनुसंधान करते हैं बल्कि वे विशिष्ट स्वास्थ्य सेवाएँ भी प्रदान करते हैं। इनमें से कुछ है- मेडिकल इंस्टीट्यूट, नयी दिल्ली, पोस्ट ग्रेजुयेट इंस्टीट्यूट, चंडीगढ़; नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ मेंटल हेल्थ और न्यूरो साइंस, बंगलौर और ऑल इंडिया इंस्टीट्यूट ऑफ हाइजीन एंड पब्लिक हेल्थ, कोलकाता।

स्रोत: *नेशनल कमीशन ऑन मेकरोइकोनॉमिक्स एंड हेल्थ, 2005*

बॉक्स 8.6 चिकित्सा पर्यटन-एक महान अवसर

आपने टेलीविजन समाचारों या समाचार-पत्रों में देखा होगा कि बड़ी संख्या में विदेशी शल्य चिकित्सा, गुर्दारोपण, दंत और यहाँ तक कि सौंदर्यवर्द्धक देखभाल के लिए भारत आ रहे हैं। क्यों? क्योंकि हमारी स्वास्थ्य सेवाओं में आधुनिकतम चिकित्सा प्रौद्योगिकी है, हमारे पास योग्य डॉक्टर हैं और विदेशियों को उनके देश में ऐसी चिकित्सा के लिए लगने वाली कीमत की अपेक्षा हमारे यहाँ चिकित्सा सेवाएँ काफी सस्ती हैं। वर्ष 2004-05 में 1.50.000 से भी अधिक पर्यटक चिकित्सा के लिए भारत आये और इस संख्या में प्रतिवर्ष 15 प्रतिशत वृद्धि होने की संभावना है। विशेषज्ञों की यह भविष्यवाणी है कि 2012 तक भारत मेडिकल पर्यटन से 1000 अरब रुपयों से अधिक की आय अर्जित कर सकता है। अधिक विदेशियों को भारत की ओर आकर्षित करने के लिए स्वास्थ्य आधारिक संरचना को ऊँचा उठाया जा सकता है।

अस्पताल निर्माण व मेडिकल सेवाओं की व्यवस्था में एक प्रमुख भूमिका निभा रहा है। 2001-2002 में 13 लाख से अधिक मेडिकल उद्यम थे जिनमें 22 लाख लोग काम कर रहे थे; इनमें से 80 प्रतिशत से अधिक एक व्यक्ति के स्वामित्व वाले थे जो समय-समय पर भाड़े के श्रमिकों से काम लेते थे। विद्वानों ने यह कहा है कि भारत में निजी क्षेत्रक स्वतंत्र रूप से और बिना किसी बड़े विनियमन के विकसित हुआ है। कुछ निजी चिकित्सकों का तो पंजीकरण भी नहीं हुआ है और उन्हें हम फर्जी चिकित्सक कहते हैं।



बॉक्स 8.7 समुदाय और स्वास्थ्य देखभाल की अलाभकारी संस्थाएँ

समुदाय एक अच्छी स्वास्थ्य देखभाल प्रणाली का महत्त्वपूर्ण पक्ष है। यह इस विचार पर कार्य करती है कि लोगों को प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल के लिए प्रशिक्षित करके स्वास्थ्य देखभाल प्रणाली में लगाया जा सकता है। देश के कुछ हिस्सों में इस विधि का उपयोग पहले ही से किया जा रहा है। सेवा स्वनियोजित महिला समिति (SEWA) अहमदाबाद और **Accord** नीलगिरि भारत में कार्य कर रही कुछ ऐसी ही गैर-सरकारी संस्थाओं (NGO s) के उदाहरण हैं। व्यापार संघ ने अपने सदस्यों के लिए कुछ वैकल्पिक स्वास्थ्य देखभाल सेवाएँ उपलब्ध कराए हैं और आस-पास के गाँव के लोगों को निम्न लागत की उचित देखभाल प्रदान की है। इस संबंध में सर्वाधिक अग्रणी और सुविख्यात पहल शाहिद अस्पताल ने की है। इस अस्पताल का निर्माण मध्य प्रदेश के दुर्ग में छत्तीसगढ़ श्रमिक संघ के श्रमिकों द्वारा 1983 में किया गया। वैकल्पिक स्वास्थ्य देखभाल पहलों का निर्माण करने के लिए ग्रामीण संस्थाओं ने कुछ प्रयास किए हैं। थाणे, महाराष्ट्र में कबिलाई लोगों का संगठन, काश्तकारी संगठन इसका उदाहरण है। यहाँ न्यूनतम लागत पर साधारण बीमारी का गाँव के स्तर पर उपचार करने के लिए महिला स्वास्थ्य श्रमिकों को प्रशिक्षित किया गया है।

सारणी 8.4

अन्य देशों की तुलना में भारत में स्वास्थ्य सूचक				
सूचक	भारत	चीन	अमेरिका	श्रीलंका
1. शिशु मृत्यु दर/प्रति 1000 शिशु	68	30	2	8
2. पांच वर्ष के नीचे मृत्यु दर/प्रति 1000 शिशु	87	37	8	15
3. प्रशिक्षित परिचारिका द्वारा जन्म	43	97	99	97
4. पूर्णत: प्रतिरक्षित	67	84	93	99
5. सकल घरेलू उत्पाद में स्वास्थ्य पर व्यय (%)	4.8	5.8	14.6	3.7
6. कुल व्यय में सरकारी हिस्सेदारी	21.3	33.7	44.9	48.7
7. कुल स्वास्थ्य व्यय में सरकारी हिस्सेदारी	4.4	10	23.1	6
8. स्वास्थ्य पर व्यय (अंतर्राष्ट्रीय डॉलर में प्रति व्यक्ति व्यय)	96	261	5274	131

स्रोत: *वर्ल्ड हेल्थ रिपोर्ट, 2005 ।*

1990 के दशक से उदारीकरण उपायों के कारण अनेक अप्रवासी भारतियों और औद्योगिक तथा दवा कंपनियों ने भारत के अमीरों और चिकित्सा पर्यटकों को आकर्षित करने के लिए आधुनिकतम सुपर-स्पैशलिटी अस्पतालों का निर्माण किया। लेकिन चूँकि गरीब केवल सरकारी अस्पतालों पर निर्भर करते हैं, इसीलिए स्वास्थ्य देखभाल के क्षेत्र में सरकार की भूमिका महत्त्वपूर्ण बनी रहती है (देखें बॉक्स 8.6)।

चिकित्सा की भारतीय प्रणाली: चिकित्सा की भारतीय प्रणाली में 6 व्यवस्थाएँ हैं - आयुर्वेद, योग, यूनानी, सिद्ध, प्राकृतिक चिकित्सा और होम्योपैथी। इनके अंग्रेजी नामों के अनुसार भारतीय प्रणाली को आयुश भी कहते हैं (आयुर्वेद, योग, यूनानी सिद्ध प्राकृतिक और होम्योपैथिक)। भारत वर्तमान में चिकित्सा की भारतीय प्रणाली के 3004 अस्पताल, 23,0,28 दवाखाने और 6,11,431 पंजीकृत चिकित्सक हैं। लेकिन चिकित्सा की भारतीय प्रणाली में शैक्षिक मानकीकरण या अनुसंधान को प्रोत्साहित करने के लिए किसी प्रकार की रूपरेखा बनाने हेतु कुछ नहीं किया गया है। चिकित्सा की भारतीय प्रणाली में भारी संभावनाएँ हैं और वे हमारे स्वास्थ्य की देखभाल की अनेक समस्याओं का निराकरण कर सकती हैं क्योंकि वे प्रभावशाली, सुरक्षित और सस्ती हैं।

स्वास्थ्य और स्वास्थ्य आधारिक संरचना के सूचक: एक मूल्यांकन: जैसा कि पहले बताया गया है कि एक देश में स्वास्थ्य की स्थिति का मूल्यांकन शिशु मृत्यु तथा मातृ-मृत्यु दरों, जीवन-प्रत्याशा व पोषण स्तरों के साथ-साथ संक्रामक व गैर-संक्रामक रोगों की घटनाओं जैसे सूचकों के द्वारा होता है। इनमें से कुछ स्वास्थ्य सूचकों और उनकी भारत में स्थिति के बारे में जानकारी सारणी 8.4 में दी गई है। विशेषज्ञों की यह राय है कि स्वास्थ्य क्षेत्रक में

इन्हें कीजिए

- अपने इलाके या पड़ोस में स्थित प्राथमिक अस्पतालों में जाइए। अपने इलाके में निजी अस्पतालों, चिकित्सा प्रयोगशालाओं, सूक्ष्म परीक्षा केंद्रों और दवा की दुकानों और इसी प्रकार की अन्य सुविधाओं की संख्या की जानकारी प्राप्त कीजिए।
- 'प्रतिवर्ष मेडिकल कॉलेजों से पास करने वाले हजारों मेडिकल स्नातकों की सेवाओं को प्राप्त करने में साधनहीन गरीबों की देखभाल के लिए क्या हमें दाइयों की एक सेना तैयार करनी चाहिए?' इस विषय पर कक्षा में वाद-विवाद करें।
- एक अध्ययन के द्वारा यह अनुमान लगाया गया है कि केवल चिकित्सा व्यय ही प्रतिवर्ष 2.2 प्रतिशत जनसंख्या को गरीबी रेखा से नीचे ले जाता है। कैसे?
- अपने स्थानीय क्षेत्र में कुछ अस्पतालों में जाइए। उनसे प्रतिरक्षण प्राप्त करने वाले बच्चों की संख्या का पता करें। अस्पताल कर्मियों से 5 वर्ष पहले प्रतिरक्षित बच्चों की संख्या के बारे में पूछें। प्राप्त जानकारी पर कक्षा में चर्चा करें।
- असम के दो छात्रों लीना तालुकदार (16) और सुशांता महंत (16) ने स्थानीय स्तर पर उपलब्ध झाड़ियों, धान का भूसा, छिलकों और सूखे कूड़े की सहायता से मच्छरों को भगाने वाली हर्बल दवा 'जग' बनाई। उनका यह प्रयोग सफल रहा (शोधयात्रा, योजना, सितंबर 2005)। यदि आप किसी व्यक्ति को जानते हैं जिसके नूतन तरीकों से लोगों के स्वास्थ्य स्तर में सुधार हुआ हो या यदि आप जिन्हें जड़ी बूटियों की जानकारी हो और वे लोगों के रोगों को ठीक करते हों, तो उनसे बात करें, उन्हें कक्षा में लायें या तो उनसे यह सूचना प्राप्त करें कि वे क्यों और कैसे रोग का निदान करते हैं। कक्षा में यह जानकारी दें। आप स्थानीय समाचार-पत्रों या पत्रिकाओं में भी इस के बारे में लिख सकते हैं।
- क्या आप मानते हैं कि भारतीय शहरों में विश्व स्तर की चिकित्सा आधारिक संरचना उपलब्ध हो सकती हैं, जिससे कि वे मेडिकल पर्यटन के लिए आकर्षित हो सकें? या क्या सरकार को ग्रामीण क्षेत्रों में जनता के लिए आधारिक संरचना प्रदान करने पर केंद्रित होना चाहिए? सरकार की प्राथमिकता क्या होनी चाहिए? चर्चा कीजिए।
- स्वास्थ्य सुविधा के क्षेत्र में आपके क्षेत्र में कार्य कर रहे गैर सरकारी संगठनों की कार्यप्रणाली का पता करें। उनकी गतिविधियों के बारे में जानकारी प्राप्त करें और उन पर कक्षा में चर्चा करें।

सरकार की भूमिका के लिए अधिकाधिक स्थान है। उदाहरण के लिए, सारणी यह बतलाती है कि स्वास्थ्य क्षेत्रक में व्यय सकल घरेलू उत्पाद का मात्र 5 प्रतिशत है। यह अन्य देशों के मुकाबले बहुत कम है। इन देशों में विकसित और विकासशील देश-दोनों आते हैं।

एक अध्ययन में यह स्पष्ट किया गया है कि भारत में विश्व की कुल जनसंख्या की लगभग 17 प्रतिशत संख्या निवास करती है, लेकिन इस देश पर विश्व के कुल रोगियों का 20 प्रतिशत बोझ (GDB) है। विश्व रोग भार (GDB) एक सूचक है जिसका प्रयोग विशेषज्ञ

इन्हें कीजिए

- भारत की समग्र स्वास्थ्य स्थिति में निश्चय ही सुधार हुआ है। जीवन-प्रत्याशा बढ़ी है, शिशु मृत्यु दर में कमी आई है। चेचक का उन्मूलन हो गया है। कुष्ठ तथा पोलियो के उन्मूलन के लक्ष्य को प्राप्त होने वाला है। लेकिन ये आँकड़े तभी अच्छे लगते हैं जबकि उन्हें आप अलग करके देखें। इन आँकड़ों की तुलना शेष विश्व से करें। आप को क्या जानकारी मिली?
- एक महीने के लिए अपनी कक्षा का पर्यवेक्षण करें और पता करें कि कुछ छात्र अनुपस्थित क्यों रहते हैं? यदि अनुपस्थिति का कारण स्वास्थ्य समस्याएँ हैं, तो पता करें कि उन्हें क्या बीमारी है। उनके रोग, उपचार की प्रकृति और उनके अभिभावकों द्वारा उनके उपचार पर किये जा रहे खर्च का विवरण तैयार करें। इस सूचना पर कक्षा में चर्चा करें।

किसी विशेष रोग के कारण असमय मरने वाले लोगों की संख्या के साथ-साथ रोगों के कारण असमर्थता में बिताये सालों की संख्या जानने के लिए करते हैं।

भारत में जी.डी.बी. के आधे से अधिक हिस्से के अंतर्गत अतिसार, मलेरिया और क्षय रोग जैसी संक्रामक बीमारियाँ आती हैं। प्रत्येक वर्ष 5 लाख बच्चे जल-संक्रमित रोगों से मर जाते हैं। एड्स का खतरा भी छाया हुआ है। कुपोषण और टीके की दवा की अपर्याप्त पूर्ति के कारण प्रत्येक वर्ष 22 करोड़ बच्चे मौत के शिकार होते हैं।

वर्तमान में 20 प्रतिशत से भी कम जनसंख्या जन स्वास्थ्य सुविधाओं का उपभोग करती है। एक अध्ययन से पता चला कि केवल 38 प्रतिशत प्राथमिक चिकित्सा केंद्रों में डॉक्टरों की वांछित संख्या उपलब्ध है और केवल 30 प्रतिशत प्राथमिक चिकित्सा केंद्रों में दवाइयों का पर्याप्त भंडार होता है।

शहरी-ग्रामीण तथा धनी-निर्धन विभाजन: भारत की 70 प्रतिशत जनसंख्या गाँवों में रहती है, लेकिन ग्रामीण इलाकों में भारत के केवल 1/5 अस्पताल स्थित हैं। ग्रामीण भारत के पास कुल दवाखानों के लगभग आधे दवाखाने ही हैं।



चित्र 8.10 *कई प्रकार की चिकित्सा सुविधाओं के बावजूद महिलाओं की चिंताजनक स्थिति*

लगभग 7 लाख बेड में से ग्रामीण इलाकों में केवल 11 प्रतिशत बेड उपलब्ध हैं। अत: ग्रामीण इलाकों में रहने वाले लोगों को पर्याप्त स्वास्थ्य आधारिक संरचना उपलब्ध नहीं हैं। इससे भारत के लोगों में स्वास्थ्य की स्थिति में विभेद उत्पन हो गया है। जहाँ तक अस्पतालों का सवाल है, ग्रामीण इलाकों में प्रत्येक एक लाख लोगों पर 0.36 अस्पताल हैं जबकि शहरी इलाकों में यह संख्या 3.6 अस्पतालों की है। ग्रामीण इलाकों में स्थापित प्राथमिक चिकित्सा केंद्रों में एक्स-रे या खून की जाँच जैसी सुविधाएँ नहीं है, जबकि किसी शहरी के लिए ये बुनियादी स्वास्थ्य देखभाल का निर्माण करती है। बिहार, मध्य प्रदेश, राजस्थान और उत्तर प्रदेश जैसे राज्य स्वास्थ्य सुविधाओं में अपेक्षाकृत पीछे हैं। ग्रामीण इलाकों में उचित चिकित्सा से वंचित लोगों के प्रतिशत में 1986 की 15 से 2003 में 24 की वृद्धि हुई है।

ग्रामीणों को शिशु-चिकित्सा, स्त्री-रोग चिकित्सा, संवेदनाहरण तथा प्रसूति-विद्या जैसी विशिष्ट चिकित्सा सुविधाएँ उपलब्ध नहीं हैं। इसके बावजूद कि 165 मान्यता प्राप्त मेडिकल कॉलेजों से प्रतिवर्ष 12,000 मेडिकल स्नातक निकलते हैं, ग्रामीण इलाकों में डॉक्टरों की कमी बनी हुई है। इनमें से 1/5 डॉक्टर बेहतर कमाई के लिए विदेश चले जाते हैं, अन्य निजी अस्पतालों में नौकरी करना पसंद करते हैं जोकि अधिकांशत: शहरी इलाकों में स्थित होते हैं।

भारत के शहरी और ग्रामीण इलाकों में रहने वाले निर्धनतम लोग अपनी आय का 12 प्रतिशत स्वास्थ्य सुविधाओं में खर्च करते हैं, जबकि धनी केवल 2 प्रतिशत खर्च करते हैं। क्या होता है जब गरीब बीमार पड़ता है? कुछ अपनी जमीन बेचते हैं या उपचार के लिए अपने बच्चों को भूखे रखते हैं। चूँकि सरकारी अस्पतालों में पर्याप्त सुविधाएँ नहीं हैं, उन्हें निजी अस्पतालों में जाना पड़ता है जिससे वे हमेशा के लिए ऋणग्रस्त हो जाते हैं या मौत के विकल्प को चुनते हैं।

महिला स्वास्थ्य: भारत की जनसंख्या का लगभग आधा भाग महिलाओं का है। पुरुषों की तुलना में उन्हें शिक्षा, आर्थिक गतिविधियों में भागीदारी और स्वास्थ्य सुविधाओं के क्षेत्रों में अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। देश में शिशु-लिंग अनुपात में 1991 की जनगणना के अनुसार 945 से 2001 में 927 की गिरावट, भ्रूण हत्या की बढ़ती घटनाओं की ओर इशारा करती है। 15 वर्ष से कम लगभग 3,00,000 लड़कियाँ न केवल शादीशुदा हैं बल्कि कम से कम एक बच्चे की माँ भी हैं। 15 से 49 आयु समूह में शादीशुदा महिलाओं में 50 प्रतिशत से ज्यादा रक्ताभाव और रक्तक्षीणता से ग्रसित हैं। यह बीमारी लौह-न्यूनता के कारण होती है जिसके परिणामस्वरूप गर्भपात भारत में स्त्रियों की अस्वस्थता और मौत का एक बहुत बड़ा कारण है।

स्वास्थ्य एक आवश्यक सार्वजनिक सुविधा और एक बुनियादी मानवाधिकार है। सभी नागरिकों को बेहतर स्वास्थ्य सुविधाएँ प्राप्त हो

सकती है, यदि सार्वजनिक स्वास्थ्य सेवाएँ विकेंद्रित हों। रोगों से दीर्घकालीन संघर्ष में सफ़लता शिक्षा और कार्यकुशल स्वास्थ्य आधारिक संरचना पर निर्भर करती है। इसीलिए स्वास्थ्य और सफाई के प्रति जागरूकता पैदा करना और कार्यकुशल व्यवस्थाएँ प्रदान करना आवश्यक है। इस प्रक्रिया से दूरसंचार और सूचना प्रौद्योगिकी क्षेत्रों की भूमिका की अवहेलना नहीं की जा सकती। स्वास्थ्य देखभाल कार्यक्रमों की प्रभावशीलता प्राथमिक स्वास्थ्य सुविधाओं पर निर्भर करती है। अंततः हमारा उद्देश्य लोगों को एक बेहतर गुणवत्तापूर्ण जीवन की ओर ले जाना है। निजी-सार्वजनिक भागीदारी से दवाइयों एवं स्वास्थ्य सुविधाओं, दोनों की विश्वसनीयता, गुणवत्ता और सक्षमता सुनिश्चित हो सकती है। भारत में स्वास्थ्य सुविधाओं में शहर और गाँव के बीच स्पष्ट विभाजन है। यदि हम इस बढ़ते विभाजन की अवहेलना करते रहेंगे, तो हमारे देश के सामाजिक-आर्थिक ढाँचे में अस्थिरता की आशंका रहेगी। सभी के लिए बुनियादी स्वास्थ्य सुविधाओं को सुनिश्चित करने के लिए हमारी बुनियादी आधारिक संरचना में सक्षमता और सुलभता की आवश्यकताओं का एकीकरण करना जरूरी है।

8.7 निष्कर्ष

एक देश के विकास में सामाजिक और आर्थिक, दोनों प्रकार की आधारिक संरचना का होना अनिवार्य है। उत्पादन के कारकों की उत्पादकता में वृद्धि करते हुए तथा जीवन की गुणवत्ता में सुधार लाते हुए ये सभी एक सहयोगी प्रणाली के रूप में आर्थिक क्रियाओं को प्रभावित करती हैं। अपनी स्वतंत्रता के पिछले छह दशकों में भारत ने आधारिक संरचना के निर्माण में महत्वपूर्ण प्रगति की है, लेकिन उनका वितरण असमान है। ग्रामीण भारत के अनेक हिस्सों में अभी भी अच्छी सड़कें, दूरसंचार सुविधाएँ, बिजली, स्कूलों और अस्पतालों का अभाव है। जैसे-जैसे भारत आधुनिकीकरण की ओर बढ़ रहा है, गुणवत्तापूर्ण आधारिक संरचना की माँग भी बढ़ेगी। पर्यावरण पर उनके असर को भी यहाँ ध्यान में रखना होगा। विभिन्न प्रकार के रियायत और प्रोत्साहनों को प्रदान करने वाली सुधार नीतियों का लक्ष्य आमतौर पर निजी क्षेत्रक और, विशेष तौर पर विदेशी निवेशकों को आकर्षित करना है। ऊर्जा और स्वास्थ्य की दो आधारिक संरचनाओं का मूल्यांकन करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि आधारिक संरचना पर सभी की समान रूप से पहुँच की संभावना हो सकती है।

पुनरावर्तन

- संरचनात्मक सुविधाएँ, भौतिक सुविधाएँ व सार्वजनिक सेवाओं का एक नेटवर्क है। इनके साथ सहयोग करने के लिए सामाजिक आधारिक संरचना का होना समान रूप से महत्वपूर्ण है। देश के आर्थिक विकास में यह एक महत्वपूर्ण आधार है।
- उच्च आर्थिक संवृद्धि दर बनाये रखने के लिए समय-समय पर आधारिक संरचना का स्तर ऊँचा करना आवश्यक है। हाल ही में बेहतर आधारिक संरचना ने विदेशी निवेश और पर्यटकों को भारत की ओर आकर्षित किया है।
- ग्रामीण आधारिक संरचना को विकसित करने की आवश्यकता है।
- आधारिक संरचना के विकास के लिए विशाल धन इकट्ठा करने के लिए सार्वजनिक और निजी सहभागिता की आवश्यकता है।
- तीव्र आर्थिक विकास के लिए ऊर्जा अत्यंत ही महत्वपूर्ण है। भारत में बिजली की उपभोक्ता माँग और उसकी पूर्ति में बहुत अंतर है।
- बिजली की कमी की पूर्ति में ऊर्जा के गैर-पारंपरिक स्रोत काफी सहायक हो सिद्ध हो सकते हैं।
- भारत विद्युत क्षेत्रक उत्पादन, संचारण और वितरण स्तरों में अनेक समस्याओं का सामना कर रहा है।
- स्वास्थ्य मनुष्य के शारीरिक और मानसिक सुख का एक मापदंड है।
- स्वतंत्रता के बाद स्वास्थ्य सेवाओं की भौतिक व्यवस्था में महत्वपूर्ण विस्तार और स्वस्थ सूचकों में सुधार हुआ है।
- अधिकांश जनसंख्या के लिए सार्वजनिक स्वास्थ्य प्रणाली और सुविधाएँ पर्याप्त नहीं हैं।
- ग्रामीण शहरी इलाकों और अमीर व गरीब के बीच स्वास्थ्य देखभाल सुविधाओं के उपभोग में बड़ा अंतर है।
- देश में भ्रूण हत्या की बढ़ती घटनाओं के कारण देश में स्त्रियों का स्वास्थ्य गंभीर चिंता का विषय बन गया है।
- निजी क्षेत्र की विनियमित स्वास्थ्य सेवाओं से स्थिति में सुधार हो सकता है। इसके साथ-साथ स्वास्थ्य देखभाल सुविधाएँ प्रदान करने और स्वास्थ्य के प्रति जागरूकता बढ़ाने में गैर-सरकारी संगठन और सामुदायिक सहभागिता बहुत महत्वपूर्ण है।
- जन स्वास्थ्य की सहायता के लिए चिकित्सा की प्राकृतिक प्रणालियों पर अनुसंधान करना और उनके परिणामों का उपयोग करना होगा। भारत में चिकित्सा पर्यटन के बढ़ने की असीम संभावनाएँ हैं।



अभ्यास

1. आधारिक संरचना की व्याख्या कीजिए।
2. आधारिक संरचना को विभाजित करने वाले दो वर्गों की व्याख्या कीजिए? दोनों एक-दूसरे पर कैसे निर्भर हैं?
3. आधारिक संरचना उत्पादन का संवर्द्धन कैसे करती हैं?
4. किसी देश के आर्थिक विकास में आधारिक संरचना योगदान करती हैं? क्या आप सहमत हैं? कारण बताइये।
5. भारत में ग्रामीण आधारिक संरचना की क्या स्थिति है?
6. 'ऊर्जा' का महत्व क्या है? ऊर्जा के व्यावसायिक और गैर-व्यावसायिक स्रोतों में अंतर कीजिए।
7. विद्युत के उत्पादन के तीन बुनियादी स्रोत कौन-से हैं।
8. संचारण और वितरण हानि से आप क्या समझते हैं? उन्हें कैसे कम किया जा सकता है।
9. ऊर्जा के विभिन्न गैर-व्यावसायिक स्रोत कौन-से हैं?
10. इस कथन को सही सिद्ध कीजिए कि ऊर्जा के पुनर्नवीनीकृत स्रोतों के इस्तेमाल से ऊर्जा संकट दूर किया जा सकता है?
11. पिछले वर्षों के दौरान ऊर्जा के उपभोग प्रतिमानों में कैसे परिवर्तन आया है?
12. ऊर्जा के उपभोग और आर्थिक संवृद्धि की दरें कैसे परस्पर संबंधित हैं?
13. भारत में विद्युत क्षेत्रक किन समस्याओं का सामना कर रहा है?
14. भारत में ऊर्जा संकट से निपटने के लिए किये गये सुधारों पर चर्चा कीजिए।
15. हमारे देश की जनता के स्वास्थ्य की मुख्य विशेषताएँ क्या हैं?
16. रोग वैश्विक मार (GBD) क्या है?
17. हमारी स्वास्थ्य देखभाल प्रणाली की प्रमुख कमियाँ क्या हैं?
18. महिलाओं का स्वास्थ्य गहरी चिंता का विषय कैसे बन गया है?
19. सार्वजनिक स्वास्थ्य का अर्थ बतलाइए। राज्य द्वारा रोगों पर नियंत्रण के लिए उठाये गये प्रमुख सार्वजनिक स्वास्थ्य कार्यक्रमों को बताइए।
20. भारतीय चिकित्सा की छह प्रणालियों की सूची बनाइए।
21. हम स्वास्थ्य सुविधा कार्यक्रमों की प्रभावशीलता कैसे बढ़ा सकते हैं?

अतिरिक्त गतिविधियाँ

1. क्या आप जानते हैं कि आपके घरों में एक मेगावाट बिजली लाने के लिए 300-400 करोड़ रुपये खर्च होते हैं? एक नये बिजली-घर के निर्माण में करोड़ों रुपयों की लागत आती है। क्या यही कारण काफी नहीं है कि आप अपने घर में बिजली की बचत करें। बिजली की बचत का अर्थ पैसों की बचत है। जब आपके पास बिजली का बिल आता है, तो आपको यह भान होता है कि घर में अनेक बल्बों और पंखों की जरूरत नहीं है। आपको थोड़ी-सी सतर्कता बरतने की आवश्यकता है। सबसे बढ़िया बात तो यह है कि आपको तुंरत इस दिशा में प्रयास आरंभ कर देना चाहिए। इस कार्य में परिवार के अन्य सदस्यों को शामिल कीजिए और अंतर देखिए। अपने घर में बिजली का मासिक उपभोग नोट कीजिए। ऊर्जा बचाव के तरीकों को लागू करने के पश्चात बिजली के बिल में अंतर देखिए।
2. यह पता करें कि आपके क्षेत्र में कौन-सी आधारिक संरचना परियोजना चल रही है। उसके बाद पता करें:
   (क) परियोजना के लिए आबंटित बजट
   (ख) उसमें पूँजी निवेश के स्रोत क्या हैं?
   (ग) वह परियोजना कितना रोजगार उत्पन्न करेगी?
   (घ) परियोजना की समाप्ति के वाद कुल मिला कर कितना लाभ होगा?
   (ङ) परियोजना को पूर्ण होने में कितना समय लगेगा?
   (च) परियोजना में कार्यरत कंपनी/कंपनियाँ
3. किसी गौबर गैस परियोजना/ताप बिजली स्टेशन/ज्वार बिजली स्टेशन/परमाणु बिजली स्टेशन में जाइए। अवलोकन कीजिए कि यह कैसे काम करते हैं।
4. पड़ोस में ऊर्जा के प्रयोग पर एक सर्वेक्षण करने के लिए कक्षा को समूहों में बांटा जा सकता है। सर्वेक्षण का लक्ष्य यह पता करना है कि पड़ोस में कौन-सा विशिष्ट ईंधन सबसे ज्यादा प्रयोग में लाया जाता है और कितनी मात्रा में विभिन्न समूहों के द्वारा ग्राफ बनाए जा सकते हैं और एक विशिष्ट ईंधन की प्राथमिकता के संभावित कारण जानने के लिए कोशिश की जा सकती है। भारत की ऊर्जा व्यवस्था के निर्माता डॉ होमी भामा के जीवन कार्य का अध्ययन कीजिए। 'युद्धरत राष्ट्र एक अस्वस्थ्य विश्व की रचना करते हैं। इसी प्रकार पक्षपातपूर्ण दृष्टिकोण और संकीर्ण दिमाग वाले मानसिक रोगों की रचना करते हैं।' इस विषय में कक्षा में वाद विवाद व चर्चा कीजिए।

संदर्भ

पुस्तकें

जालान बिमल (ऐड.) द *इंडियन इकोनॉमी प्रोब्लम्स एंड प्रोस्पेक्ट्स,* पेंग्विन बुक्स, दिल्ली–1993।

कलाम ए.पी.जे. अब्दुल विद वाई. एस. राजन, 2002. इंडिया 2020: ए विज़न फॉर दि न्यू मिलेनियम, पेंग्विन बुक्स, दिल्ली।

किरति एस. पारिख एंड राधाकृष्णनन (ऐड.) 2005. *इंडिया डेवलपमेंट रिपोर्ट 2004–2005,* ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, दिल्ली।

सरकारी रिपोर्ट

द *वर्ल्ड हेल्थ रिपोर्ट 2002, रिड्यूसिंग रिस्क्स, प्रमोटिंग हेल्दी लाइफ, वर्ल्ड हेल्थ आर्गेनाइजेशन, जिनेवा।*

गवर्नमेंट ऑफ इंडिया (2005), रिपोर्ट ऑफ द नेशनल कमीशन ऑन मेकरोइकोनॉमिक्स एंड हेल्थ एंड फेमिली वेलफेयर, गवर्नमेंट ऑफ इंडिया, नई दिल्ली।

टेंथ फाइव ईयर प्लान वोल्यूम-2 प्लानिंग कमीशन, गवर्नमेंट ऑफ इंडिया, नई दिल्ली।

द इंडिया इंफ्रास्ट्रक्चर रिपोर्ट: पॉलिसी इंपरेव्सि फार ग्रोथ एंड वेल्फेयर, एक्सपर्ट ग्रूप आन द कॉमर्सिलाइजेशन ऑफ इंफ्रास्ट्रक्चर प्रोजेक्ट्स, वोल्यूम 1, 2 एंड 3, मिनिस्ट्री ऑफ फायनेंस, गवर्नमेंट ऑफ इंडिया 1996 ।

इंडिया विजन 2020, द रिपोर्ट ऑफ प्लानिंग कमीशन, गवर्नमेंट ऑफ इंडिया, नई दिल्ली।

वर्ल्ड डेवलपमेंट रिपोर्ट 1994, द वर्ल्ड बैंक, वशिंगटन डी.सी.।

इंडिया इंफ्रास्ट्रक्चर रिपोर्ट 20041, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली।

इकोनॉमिक सर्वे 2004–2005, मिनिस्ट्री ऑफ फाइनेंस, गवर्नमेंट ऑफ इंडिया।

वेबसाइट

ऑन एनर्जी रिलेटिड इश्यूज:
www.pcra.org
www.bee-india.com
www.edugreen.teri.res.in
http://powermin.nic.in

ऑन हेल्थ रिलेटिड इश्यूज:
http://www.aiims.edu
http://www.whoindia.org
http://mohfw.nic.in
www.apollohospitalsgrour.com

9

पर्यावरण और धारणीय विकास

इस अध्याय को पढ़ने के बाद आप

- पर्यावरण की अवधारणा को समझेंगे;
- 'पर्यावरण अधोगति और संसाधन अपक्षय' के कारणों तथा प्रभावों का विश्लेषण कर सकेंगे;
- भारत के समक्ष पर्यावरण चुनौतियों की प्रकृति को समझेंगे;
- पर्यावरण मुद्दों को धारणीय विकास के व्यापक संदर्भ से जोड़ सकेंगे।

पर्यावरण को यदि यथावत् छोड़ दिया जाये, तो वह निरंतर लाखों वर्षों तक जीवन का सहारा बन सकता है। इस योजना में एकमात्र सर्वाधिक अस्थिर और संभावित विनाशकारी शक्ति मानव प्रजाति है। मनुष्य आधुनिक प्रौद्योगिकी की सहायता से पर्यावरण में जाने-अनजाने दूरगामी और अपरिर्वतनीय बदलाव लाने की क्षमता रखता है।

– अनजान

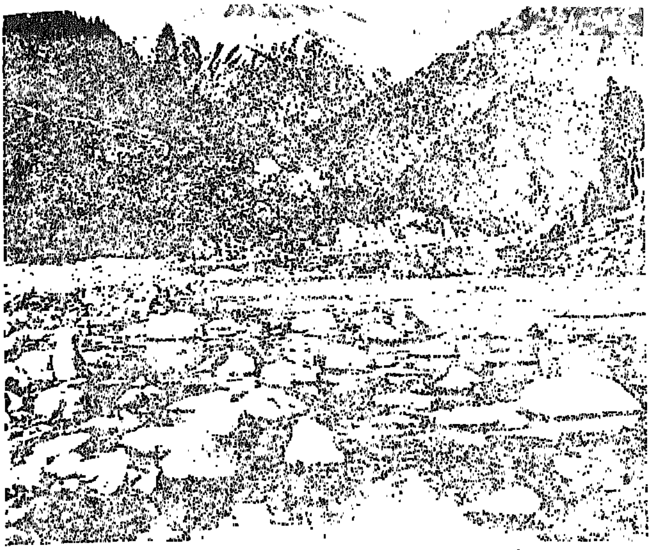
9.1 परिचय

पिछले अध्यायों में हमने भारतीय अर्थव्यवस्था के समक्ष प्रमुख आर्थिक मुद्दों पर चर्चा की है। अभी तक प्राप्त आर्थिक विकास की हमने भारी कीमत चुकाई है। इसके लिए हमें पर्यावरण की गुणवत्ता की बलि देनी पड़ी है। अब जैसे-जैसे हम वैश्वीकरण में जिसका संकल्प उच्च्च आर्थिक संवृद्धि है, प्रवेश करते हैं वैसे-वैसे हमें पहले के विकास पथ के पर्यावरण पर प्रतिकूल प्रभाव को ध्यान में रखना होगा और ध्यानपूर्वक धारणीय विकास के पथ को चुनना होगा। हमारे द्वारा अपनाये गये विकास के अधारणीय पथ और धारणीय विकास की चुनौतियों को समझने के लिए सबसे पहले हमें आर्थिक विकास में पर्यावरण के महत्त्व और योगदान को समझना होगा। इस बात को ध्यान में रखते हुए इस अध्याय को तीन भागों में बाँटा गया है। पहला भाग पर्यावरण के कार्यों व भूमिका से संबंधित है। दूसरे भाग में भारत में पर्यावरण की स्थिति पर चर्चा की गई है और तीसरे भाग में धारणीय विकास प्राप्त करने के लिए उठाये गये कदमों और युक्तियों पर विचार किया गया है।

9.2 पर्यावरण परिभाषा और कार्य:

पर्यावरण को समस्त भूमंडलीय विरासत और सभी संसाधनों की समग्रता के रूप में परिभाषित किया जाता है। इसमें वे सभी जैविक और अजैविक तत्व आते हैं, जो एक दूसरे को प्रभावित करते हैं। सभी जीवित तत्व-जैसे, पक्षी, पशु, पौधे, वन, मत्स्य आदि जैविक तत्व हैं जबकि हवा, पानी, भूमि, अजैविक तत्त्व हैं। चट्टान और सूर्य किरण पर्यावरण के अजैविक तत्व के उदाहरण हैं। पर्यावरण अध्ययन के अंतगत इन्हीं जैविक और अजैविक घटकों के बीच अंतर्संबंधों का अध्ययन किया जाता है।

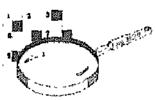
पर्यावरण के कार्य: पर्यावरण चार आवश्यक कार्य करता है-(क) यह संसाधनों की पूर्ति करता है, जिसमें नवीकरणीय और गैर-नवीकरणीय दोनों प्रकार के संसाधन शामिल होते हैं। नवीनीकरण-योग्य संसाधन वे हैं जिनका उपयोग संसाधन के क्षय या समाप्त होने की आशंका के बिना किया जा सकता है, अर्थात् संसाधनों की पूर्ति निरंतर बनी रहती है। नवीकरणीय संसाधनों के उदाहरणों में, वनों में पेड़ और समुद्र में मछलियाँ हैं। दूसरी ओर, गैर-नवीनीकरण योग्य संसाधन वे हैं जो कि निष्कर्षण और उपयोग से समाप्त हो जाते हैं। उदाहरण के लिए, जीवाश्म ईंधन। (ख) यह अवशेष को समाहित कर लेता है। (ग) यह जननिक और जैविक विवधिता प्रदान करके जीवन का पोषण करता है। यह सौंदर्य विषयक सेवाएँ भी प्रदान करता है, जैसे कि कोई सुंदर दृश्य।



चित्र 9.1 *ताजा पानी के कुछ स्रोत जो प्रदूषण रहित हैं*

ऐसा नहीं होता, तो पर्यावरण जीवन पोषण का अपना तीसरा और महत्वपूर्ण कार्य करने में असफल हो जाता है और इससे पर्यावरण संकट पैदा होता है। पूरे विश्व में आज यही स्थिति है। विकासशील देशों की तेजी से बढ़ती जनसंख्या और विकसित देशों के समृद्ध उपभोग तथा उत्पादन मानकों ने पर्यावरण के पहले दो कार्यों पर भारी दबाव डाल डाला है। अनेक संसाधन विलुप्त हो गये हैं और सृजित अवशेष पर्यावरण के **अवशोषी क्षमता** के बाहर हैं।

पर्यावरण इन कार्यों को बिना किसी व्यवधान के तभी कर सकता है, जब तक कि ये कार्य उसकी **धारण क्षमता की सीमा** में हैं। इसका अर्थ है कि संसाधनों का निष्कर्षण इनके पुनर्जनन की दर से अधिक नहीं है और उत्पन्न अवशेष पर्यावरण की समावेशन क्षमता के भीतर है। जब **अवशोषी क्षमता** का अर्थ पर्यावरण की अपक्षय को सोखने की योग्यता से है। इसके कारण ही आज हम पर्यावरण संकट की दहलीज पर खड़े हैं। विकास के क्रम में नदियाँ और अन्य जल स्रोत प्रदूषित हुए हैं और सूख गये हैं, इसने जल को एक आर्थिक वस्तु बना दिया है। इसके साथ



इन्हें कीजिए

जल एक आर्थिक उपभोक्ता वस्तु क्यों बन गया है? चर्चा कीजिए।

नीचे की सारणी में वायु, जल और ध्वनि प्रदूषण के कारण होने वाले कुछ आम रोगों और बीमारियों के नाम भरें।

वायु प्रदूषण	जल प्रदूषण	ध्वनि प्रदूषण
दमा	हैजा	

बॉक्स 9.1 वैश्विक उष्णाता

वैश्विक उष्णाता पृथ्वी और समुद्र के वातावरण के औसत तापमान में वृद्धि को कहते हैं। वैश्विक उष्णता **औद्योगिकी क्रांति** से ग्रीन हाउस गैसों में वृद्धि के परिणामस्वरूप पृथ्वी के निचले वायुमंडल के औसत तापमान में क्रमिक बढ़ोत्तरी है। वर्तमान में और आने वाले दिनों में वैश्विक उष्णता में अधिकांश मानव-उत्प्रेरित है। यह मानव द्वारा **वनविनाश** तथा **जीवाश्म ईंधन** के जलने से कार्बन डाइऑक्साइड और अन्य **ग्रीन हाऊस** गैसों की वृद्धि के कारण होता है। वायुमंडल में कार्बन डाइऑक्साइड, मिथेन गैस तथा दूसरी गैसें (जिनमें गर्माहट को सोखने की क्षमता है) वातावरण में मिलने से हमारे भूमंडल की सतह गर्म होती जायेगी। 1750 की पूर्व-औद्योगिक स्तरों से अब तक कार्बन डाइऑक्साइड और CH_4 के वायुमंडलीय संकेंद्रण में क्रमशः 31 प्रतिशत और 149 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। पिछली शताब्दी में वायुमंडलीय तापमान में 1.1f (0.6°C) की वृद्धि हुई है और समुद्र तल कई इंच ऊपर उठ गया है। वैश्विक उष्णता के कुछ दीर्घकालीन परिणाम हैं-ध्रुवीय हिम का पिघलना जिसके परिणामस्वरूप समुद्र स्तर में वृद्धि और बाढ़ का प्रकोप, हिम पिघलाव पर निर्भर पेयजल की पूर्ति में पारिस्थितिक असंतुलन के कारण प्रजातियों की विलुप्ति; उष्ण कटिबंधीय तूफानों की बारंबारता और उष्णकटिबंधीय रोगों के प्रभाव में बढ़ोत्तरी। वैश्विक उष्णता में योगदान करने वाले अन्य तत्व हैं: कोयला व पेट्रोल उत्पाद का प्रज्ज्वलन (ये कार्बन-डाइऑक्साइड, मिथेन, नाइट्रस ऑक्साइड, ओजोन के स्रोत हैं), वनविनाश जो कि वातावरण में कार्बन डाइऑक्साइड की मात्रा में वृद्धि करता है , जानवरों की अपशिष्ट से निकलने वाली मिथेन गैस और पशु की संख्या में वृद्धि जो कि वनविनाश, मिथेन उत्पादन और जीवाश्म ईंधन के प्रयोग में योगदान करती है। 1997 में क्योटो, जापान में जलवायु परिवर्तन पर एक संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन हुआ जिसमें वैश्विक उष्णता का सामना करने के लिए अंतर्राष्ट्रीय समझौता हुआ। इस समझौते में औद्योगीकृत राष्ट्रों से ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन में कमी करने की माँग की गई।

स्रोत: www.witcipedia.org

ही नवीकरणीय और गैर-नवीकरणीय संसाधनों के गहन और विस्तृत निष्कर्षण से अनेक महत्वपूर्ण संसाधन विलुप्त हो गये हैं और हम नये संसाधनों की खोज में प्रौद्योगिकी व अनुसंधान पर विशाल राशि व्यय करने के लिए मजबूर हैं। इसके साथ जुड़ी है पर्यावरण अपक्षय की गुणवत्ता की स्वास्थ्य लागत। जल और वायु की गुणवत्ता की गिरावट (भारत में 70 प्रतिशत जल प्रदूषित है) से साँस और जल-संक्रामक रोगों की घटनाएँ बढ़ी हैं। परिणामस्वरूप, व्यय भी बढ़ता जा रहा है। वैश्विक पर्यावरण मुद्दों जैसे, **वैश्विक उष्णता** और ओजोन क्षय ने स्थिति को और भी गंभीर बना दिया है, जिसके कारण सरकार को अधिक धन व्यय करना पड़ा। अतः यह स्पष्ट है कि नकारात्मक पर्यावरण प्रभावों की **अवसर लागत** बहुत अधिक है।

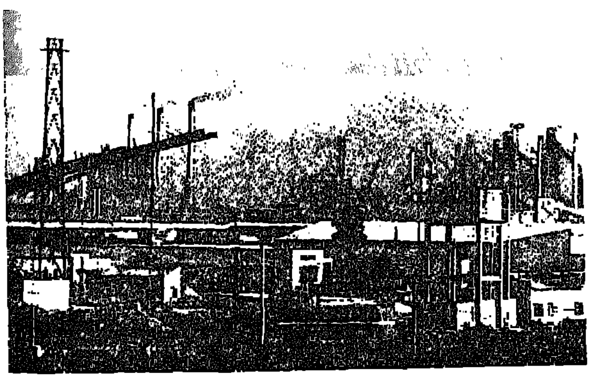
यहाँ सबसे बड़ा प्रश्न यह उठता है कि क्या पर्यावरण समस्याएँ इस शताब्दी के लिए नई हैं? यदि ऐसा है तो क्यों? इस प्रश्न के उत्तर के लिए कुछ विस्तार में जाने की

बॉक्स 9.2 ओजोन अपक्षय

ओजोन अपक्षय का अर्थ समतापमंडल में ओजोन की मात्रा की कमी है। ओजोन अपक्षय की समस्या का कारण समतापमंडल में क्लोरीन और ब्रोमीन के ऊँचे स्तर हैं। इन यौगिकों के मूल है, क्लोरोफ्लोरोकार्बन्स (CFC) जिनका प्रयोग रेफ्रिजरेटर और एयरकंडीशन को ठंडा रखने वाले पदार्थ या एरासोल प्रोपेलेन्ट्स में तथा अग्निशामकों में प्रयुक्त किए जाने वाले ब्रोमोफ्लोरोकार्बन्स में होता है। ओजोन स्तर के अपक्षय के परिणामस्वरूप परा बैगनी विकिरण(UV) पृथ्वी की ओर आते हैं और जीवों को क्षति पहुँचाते हैं। ऐसा लगता है कि विकारण से मनुष्यों में त्वचा कैंसर होता है, यह पादपप्लवक (फीटोप्लैंकटन) के उत्पादन को कम कर जलीय जीवों को प्रभावित करता है। यह स्थलीय पौधों की संवृद्धि को भी प्रभावित करता है। 1979 से 1990 के बीच ओज़ोन स्तर में लगभग 5 प्रतिशत की कमी आई। चूँकि ओजोन स्तर सर्वाधिक हानिकारक पराबैगनी किरणों को पृथ्वी के वायुमंडल में आने से रोकता है, इसलिए अनुमानित ओजोन में कमी विश्व भर में चिंता का विषय है। इसके कारण मांट्रियल प्रोटोकोल को अपनाना पड़ा। इसके तहत CFC यौगिकों तथा अन्य ओजोन अपक्षयक रसायनों के प्रयोग पर रोक लगाना पड़ा जैसे: कार्बन टेट्राक्लोराइड, ट्रिक्लोरोथेन (जिन्हें मिथाइल क्लोरोफॉर्म भी कहते हैं) तथा ब्रोमाइन यौगिक तत्व जिन्हें हैलोन कहा जाता है।

स्रोत: *www.ceu.hu*

आवश्यकता है। प्रारंभ के दिनों में जब सभ्यता शुरू ही हुई थी या जनसंख्या में इस असाधारण वृद्धि के पूर्व और देशों द्वारा औद्योगीकरण अपनाने के पहले पर्यावरण संसाधनों की माँग और सेवाएँ उनकी पूर्ति से बहुत कम थी। इसका अर्थ हुआ कि प्रदूषण, पर्यावरण की अवशोषी क्षमता के भीतर था और संसाधन निष्कर्षण की दर इन संसाधनों के पुनः सर्जन की दर से कम थी। इसलिए, पर्यावरण समस्याएँ उत्पन्न नहीं हुई थी। लेकिन, जनसंख्या विस्फोट और जनसंख्या की बढ़ती हुई आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए औद्योगिक क्रांति के आगमन से स्थिति बदल गई। परिणामस्वरूप उत्पादन और उपभोग के लिए संसाधनों की माँग संसाधनों की पुनः सर्जन की दर से बहुत अधिक हो गई; पर्यावरण की अवशोषी क्षमता पर दबाव बुरी तरह से बढ़ गया। यह प्रवृत्ति आज भी जारी है। इस तरह से, पर्यावरण की गुणवत्ता के मामले में



चित्र 9.2 *दमोदर घाटी भारत के सर्वाधिक औद्योगिक क्षेत्रों में एक है। भारी उद्योगों से प्रदूषणकारी तत्त्व दामोदर नदी के किनारे जमा होकर पर्यावरण-संकट उत्पन्न कर रहे हैं*

माँग-पूर्ति संबंध पूरी तरह से उलट गये हैं-अब हमारे सामने पर्यावरण संसाधनों और सेवाओं की माँग अधिक है, लेकिन उनकी पूर्ति सीमित है। जिसके कारण अधिक उपयोग और दुरूपयोग हैं। इसीलिए, अवशिष्ट सृजन और प्रदूषण के पर्यावरण मुद्दे आजकल बहुत गंभीर हो गये हैं।



चित्र 9.3 वन-कटाव द्वारा भूमि अपक्षय, जैव विविधता की क्षति तथा वायु प्रदूषण

9.3 भारत की पर्यावरण स्थिति

भूमि की उच्च गुणवत्ता, सैंकड़ों नदियाँ व उप नदियाँ, हरे-भरे वन, भूमि के सतह के नीचे बहुतायत में उपलब्ध खनिज-पदार्थ, हिन्द महासागर का विस्तृत क्षेत्र, पहाड़ों की श्रृंखला आदि के रूप में भारत के पास पर्याप्त प्राकृतिक संसाधन हैं। दक्षिण के पठार की काली मिट्टी विशिष्ट रूप से कपास की खेती के लिए उपयुक्त है। इसके कारण ही इस क्षेत्र में कपड़ा उद्योग केंद्रित है। अरब सागर से बंगाल की खाड़ी तक गंगा का मैदान है, जो कि विश्व के अत्यधिक उर्वर क्षेत्रों में से एक है और विश्व में सबसे गहन खेती और घनत्व जनसंख्या वाला क्षेत्र है। भारतीय वन वैसे तो असमान रूप से वितरित हैं, फिर भी वे उसकी अधिकांश जनसंख्या को हरियाली और उसके वन्य-जीवन को प्राकृतिक आवरण प्रदान करते हैं। देश में लौह-अयस्क, कोयला और प्राकृतिक गैस के भारी भंडार हैं। केवल भारत में ही विश्व के समस्त लौह-अयस्क भंडार का 20 प्रतिशत उपलब्ध है। हमारे देश के विभिन्न भागों में बॉक्साइट, तांबा, क्रोमेट, हीरा, सोना, सीसा, भूरा कोयला, मैंगनीज, जिंक, यूरेनियम इत्यादि भी मिलते हैं। लेकिन, भारत में विकास गतिविधियों के फलस्वरूप उसके सीमित प्राकृतिक संसाधनों पर दबाव पड़ रहा है। इसके साथ-साथ मानव स्वास्थ्य और सुख-समृद्धि पर भी उसका असर पड़ रहा है। भारत के पर्यावरण को दो तरफा खतरा है-एक तो गरीबी के कारण पर्यावरण का अपक्षय और दूसरा खतरा साधन-संपन्नता और तेजी से बढ़ते हुए औद्योगिक क्षेत्रक के प्रदूषण से है। भारत की अत्यधिक गंभीर पर्यावरण समस्याओं में वायु प्रदूषण, दूषित जल, मृदा-क्षरण, वन्य-कटाव और वन्य-जीवन की विलुप्ति है। इनमें से प्रमुख ये है-(क) भूमि अपक्षय, (ख) जैविक विविधता की हानि, (ग) शहरी क्षेत्रों में वाहन प्रदूषण से उत्पन्न वायु प्रदूषण, (घ) ताजे पानी का प्रबंधन और (ङ) ठोस अपशिष्ट

बॉक्स 9.3 चिपको या अप्पिको-नाम में क्या रखा है?

आप चिपको आंदोलन के बारे में जानते होंगे, जिसका उद्देश्य हिमालय पर्वत में वनों का संरक्षण करना है। कर्नाटक में एक ऐसे ही आंदोलन ने एक दूसरा नाम लिया-अप्पिको, जिसका अर्थ है बाहों में भरना। 8 सितंबर, 1983 को सिरसी जिले के सलकानी वन में वृक्ष काटे जा रहे थे। तब 160 स्त्री-पुरूष, और बच्चों ने पेड़ों को बाहों में भर लिया और लकड़ी काटने वालों को भागने के लिए मजबूर होना पड़ा। वे अगले 6 सप्ताह तक वन की पहरेदारी करते रहे। इन स्वयंसेवकों ने वृक्षों को तभी छोड़ा, जब वन विभाग के अधिकारियों ने उन्हें आश्वासन दिया कि वृक्ष वैज्ञानिक आधार पर और जिले की वन संबंधी कार्य योजना के तहत काटे जाएँगे।



जब ठेकेदार द्वारा वाणिज्यिक कटाई से अनेक प्राकृतिक वनों को हानि पहुँची, तो वृक्षों को बाहों में भर लेने के विचार ने लोगों में यह आशा और विश्वास उत्पन्न किया कि वे वनों का संरक्षण कर सकते हैं। उस विशेष घटना से जब वृक्षों की कटाई रूक गई, लोगों के द्वारा 12,000 वृक्षों को बचाया गया। कुछ ही महीनों में यह आंदोलन पास के कई जिलों में भी फैल गया।

ईंधन की लकड़ी और औद्योगिकी प्रयोग के लिए पेड़ों की बेरोक-टोक कटाई से अनेक पर्यावरण समस्याओं का जन्म हुआ। उत्तर कनारा क्षेत्र में एक कागज मिल बनने के 12 साल बाद उस क्षेत्र में बाँस विलुप्त हो गये। एक किसान ने यह बतलाया कि बड़ी-बड़ी पत्तियों वाले पेड़, जो कि भूमि को वर्षा के प्रत्यक्ष आक्रमण से रक्षा करते थे, समाप्त कर दिये गये। इससे मिट्टी वर्षा जल के साथ बह गई और अब सिर्फ कंकड़ वाली मिट्टी रह गई। अब घास के अलावा वहाँ कुछ भी नहीं पैदा होता। किसान यह भी शिकायत करते हैं कि नदियाँ और उप नदियाँ जल्दी सूख रही हैं और वर्षा की मात्रा भी अनियमित हो गई है। ऐसी बीमारियाँ और कीटाणु जो पहले नहीं थे, फसलों को नुकसान पहुँचा रहे हैं।

अप्पिको स्वयंसेवक, ठेकेदारों और वन अधिकारियों से यह चाहते हैं कि वे कुछ नियमों तथा प्रतिबंधों का पालन करें। उदाहरण के लिए, वे चाहते हैं कि काटने के लिए वृक्षों को चिह्नित करने के पूर्व स्थानीय जनता से परामर्श लिया जाए और किसी जल स्रोत के 100 मीटर क्षेत्र में और 30 डिग्री और उसके ऊपर की ढलान के वृक्षों को न काटा जाए।

क्या आप जानते हैं कि उद्योगों को सरकार वन भूमि प्रदान करती है, ताकि वे औद्योगिक उत्पादों के लिए वनों को कच्चे माल उपलब्ध करा सकें। भले ही एक कागज मिल 10,000 मजदूरों को और एक प्लाईवुड फैक्टरी 800 लोंगों को नौकरी देती हो, परंतु यदि यह दस लाख लोगों को उनकी दैनिक आवश्यकताओं से वंचित कर देती है, तो क्या यह स्वीकार्य है? आप क्या सोचते हैं?

स्रोत: *स्टेट ऑफ इंडियास एनवायरमेंट 2: द सेकेंड सिटीजंस रिपोर्ट, 1984-85, सेंटर साइस एंड एनवायरमेंट, 1996, नई दिल्ली।*

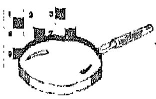
प्रबंधन । भारत में भूमि का अपक्षय विभिन्न मात्रा और रूपों में हुआ है, जो कि मुख्य रूप से अस्थिर प्रयोग और अनुपयुक्त (प्रबंधन) कार्य-प्रणाली का परिणाम है।

भूमि के अपक्षय के लिए उत्तरदायी कुछ प्रमुख कारण हैं: (क) वन विनाश के फलस्वरूप वनस्पति की हानि (ख) अधारणीय जलाऊ लकड़ी और चारे का निष्कर्षण (ग) खेती-बारी (घ) वन-भूमि का अतिक्रमण (ङ) वनों में आग और अत्यधिक चराई (च) भू-संरक्षण हेतु समुचित उपायों को न अपनाया जाना (छ) अनुचित फसल चक्र (ज) कृषि-रसायन का अनुचित प्रयोग जैसे, रासायनिक खाद और कीटनाशक (झ)सिंचाई व्यवस्था का नियोजन तथा अविवेकपूर्ण प्रबंधन (ट) भूमि जल का पुन: पूर्ण क्षमता से अधिक निष्कर्षण (ठ) संसाधनों की निर्बाध उपलब्धता और (ड॰) कृषि पर निर्भर लोगों की दरिद्रता।

भारत विश्व जनसंख्या के लगभग 16 प्रतिशत और विश्व पशुधन के 20 प्रतिशत को विश्व के कुल भौगोलिक क्षेत्र के मात्र 2.5 प्रतिशत क्षेत्र में आश्रय देता है। जनसंख्या और पशुधन का अधिक घनत्व और वानिकी, कृषि, चराई, मानव बस्तियाँ और उद्योगों के प्रतिस्पर्धी उपयोगों से देश के निश्चित भू-संसाधनों पर भारी दवाब पड़ता है।

देश में प्रतिव्यक्ति जंगल भूमि केवल 0.08 हेक्टेयर है, जबकि बुनियादी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए यह संख्या 0.47 हेक्टेयर होनी चाहिए। परिणामस्वरूप, वनों की कटाई स्वीकार्य सीमा से लगभग 15 मिलियन क्यूबिक मीटर अधिक होती है।

मृदा-क्षरण के अनुमान यह दर्शाते हैं कि पूरे देश में एक वर्ष में भूमि का क्षरण 5.3 बिलियन टन प्रतिशत की दर से हो रहा है और इससे देश को प्रत्येक वर्ष 0.8 मिलियन टन नाइट्रोजन,



इन्हें कीजिए

➢ आर्थिक विकास में पर्यावरण के योगदान को छात्रों को समझाने के लिए निम्न खेल खेला जा सकता है। एक छात्र किसी उद्यम द्वारा प्रयुक्त किसी उत्पाद का नाम ले और दूसरा छात्र उसकी जड़ों को प्रकृति और पृथ्वी में खोज सकता है।

ट्रक	←	स्टील और रबर						
स्टील	←	लोहा	←	खनिज	←	पृथ्वी		
रबर	←	वृक्ष	←	वन	←	पृथ्वी		
पुस्तकें	←	कागज	←	वृक्ष	←	फल	←	पृथ्वी
वस्त्र	←	कपास	←	पौधा	←	प्रकृति		
पेट्रोल	←	पृथ्वी						
मशीनें	←	लोहा	←	खनिज	←	पृथ्वी		

➢ एक ट्रक ड्राइवर को काले धुएँ का उत्सर्जन करने के कारण 1000 रुपये चालान के रूप में भुगतान करना पड़ा। क्या आपने समझा कि, उसे क्यों दंड दिया गया? क्या यह सही था? चर्चा कीजिए।

बॉक्स 9.4 प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड

भारत में वायु तथा जल प्रदूषण की दो प्रमुख पर्यावरण चिंताओं से निपटने के लिए सरकार ने 1974 में केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड (CPCB)की स्थापना की। इसके बाद, राज्य स्तर पर सभी पर्यावरण चिंताओं से निपटने के लिए राज्यों ने अपने-अपने बोर्ड बनाये। ये बोर्ड (CPCB)जल, वायु और भूमि प्रदूषण से संबधित सूचनाओं का संकलन और वितरण करते हैं। वे कचड़े/व्यापार निकास और उत्सर्जन के मानक निर्धारित करते हैं। ये बोर्ड सरकारों को जल प्रदूषण के रोकथाम, नियंत्रण और कमी के लिए जल-धाराओं द्वारा नदियों और कुओं की स्वच्छता के संवर्धन के लिए तकनीकी सहायता प्रदान करते हैं। इनका कार्य वायु की गुणवत्ता में सुधार भी है। ये देश में वायु प्रदूषण के नियंत्रण द्वारा भी सरकारों को तकनीकी सहायता प्रदान करते हैं।

ये बोर्ड जल व वायु प्रदूषण से संबंधित समस्याओं की जाँच व अनुसंधान भी करते हैं और ऐसी जाँच व अनुसंधान को प्रायोजित करते हैं। इसके लिए वे जन संचार के माध्यम से जन जागरूकता कार्यक्रम भी संगठित करते हैं। वे कचरे व वाणिज्य अपशिष्टों के निपटान और उपचार से संबंधित नियमावली, संहिता और मार्गदर्शक सूचिका तैयार करते हैं।

उद्योगों के विनियमन द्वारा वे वायु गुणवत्ता का मूल्यांकन करते हैं। वास्तव में अपने जिला स्तरीय अधिकारियों के माध्यम से राज्य बोर्ड अपने क्षेत्राधिकार में आने वाले प्रत्येक उद्योग का समय-समय पर निरीक्षण निकास और गैसीय उत्सर्जन के हेतु उपलब्ध उपायों की पर्याप्तता का विश्लेषण करने के लिए करता है। वे उद्योग-स्थान निर्धारण व नगर नियोजन के लिए आवश्यक पृष्ठभूमि तथा वायु गुणवत्ता आँकड़ें भी प्रदान करता है।

प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड जल प्रदूषण से संबंधित तकनीकी और सांख्यिकी आँकड़ों का संकलन, संपादन और वितरण करते हैं। ये 125 नदियों (इसमें उपनदियाँ भी शामिल हैं), कुएँ, झील, खाड़ी, तालाब, टैंक, नाले और नहरों में जल की गुणवत्ता की देखरेख करते हैं।

- निकट के कारखाने/सिंचाई विभाग में जाइए और जल तथा वायु प्रदूषण को नियंत्रित करने के लिए उनके द्वारा अपनाये गये उपायों का विवरण इकट्ठा कीजिए।
- वायु तथा जल प्रदूषण से संबंधित जागरूकता कार्यक्रमों को आप समाचार-पत्रों, रेडियो और दूरदर्शन या अपने स्थानीय इलाकों में विज्ञापन-पत्रों में देखते होंगे। कुछ समाचार कतरनें, पैंफलेट और अन्य सूचनाएँ एकत्र करें और कक्षा में उन पर चर्चा करें।

1.8 मिलियन टन फॉस्फोरस और 26.3 मिलियन टन पोटाशियम का नुकसान होता है। भारत सरकार के अनुसार प्रत्येक वर्ष भूमि क्षय से 5.8 मिलियन टन से 8.4 मिलियन टन पोषक तत्वों की क्षति होती है।

भारत में शहरी इलाकों में वायु-प्रदूषण बहुत है, जिसमें वाहनों का सर्वाधिक योगदान है। कुछ अन्य क्षेत्रों में उद्योगों के भारी जमाव और थर्मल पावर संयंत्रों के कारण वायु प्रदूषण होता है। वाहन उत्सर्जन चिंता का प्रमुख कारण है क्योंकि यह धरातल पर वायु प्रदूषण का स्रोत है और आम जनता पर अधिकतम प्रभाव डालता है। मोटर वाहनों की संख्या 1951 के 3 लाख से बढ़कर 2003 में 67 करोड़ हो गई। 2003 में व्यक्तिगत परिवहन, वाहन (केवल दो पहिये वाहन और कार) संख्या कुल पंजीकृत वाहनों का 80 प्रतिशत थी। इस तरह ये, कुल वायु प्रदूषण बोझ में उल्लेखनीय योगदान करते हैं।

भारत विश्व का दसवाँ सर्वाधिक औद्योगिक देश है। लेकिन, इसके कारण से अनचाहे और अप्रत्याशित परिणाम जैसे, अनियोजित शहरीकरण, प्रदूषण और दुर्घटनाओं का जोखिम जुड़े हुए हैं।

इन्हें कीजिए

- आप किसी भी राष्ट्रीय दैनिक समाचार पत्र में वायु प्रदूषण के माप का स्तंभ देख सकते हैं। इस पर दिवाली से एक सप्ताह पूर्व, दिवाली के दिन और दिवाली के दो दिन बाद के समाचार काटिये। क्या आप इनके माप में कोई महत्वपूर्ण अंतर देखते हैं? अपनी कक्षा में चर्चा कीजिए।

केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड (Central Pollutioin Control Board) ने उद्योगों की 17 श्रेणियों की पहचान बड़े पैमाने पर प्रदूषण फैलाने वाले उद्योगों के रूप में की है।

उपर्युक्त बिंदु भारतीय पर्यावरण की चुनौतियों पर प्रकाश डालते हैं। पर्यावरण मंत्रालय और केंद्रीय व राज्य प्रदूषण नियंत्रण बोर्डों द्वारा उठाये गये विभिन्न कदम तब तक कारगर नहीं होंगे, जब तक कि हम सोच-समझ कर धारणीय विकास के रास्ते को नहीं चुनते। भावी पीढ़ियों के भविष्य की दृष्टि के लिए किया गया विकास ही चिरस्थायी होगा। बिना भावी पीढ़ी की चिंता किए, अपने वर्तमान जीवन-स्तर को बढ़ाने के लिए किए विकास-कार्य संसाधनों तथा पर्यावरण का अपक्षय इस गति से करेंगे, जिससे पर्यावरण संबंधी तथा आर्थिक संकट दोनों पैदा हो सकते हैं।

9.4 धारणीय विकास

पर्यावरण और अर्थव्यवस्था दोनों एक दूसरे पर निर्भर और एक दूसरे के लिए आवश्यक हैं। अतः पर्यावरण पर होने वाले परिणामों की अवहेलना करने वाला विकास उस पर्यावरण का विनाश कर देगा, जो जीवन को धारण करता है। अतः आवश्यकता है, ऐसे विकास की जो कि भावी पीढ़ियों को जीवन की संभावित औसत गुणवत्ता प्रदान करे, जो कम से कम वर्तमान पीढ़ी के द्वारा उपभोग की गई सुविधाओं के बराबर हो। धारणीय विकास की अवधारणा पर संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण और विकास सम्मेलन (UNCED) ने बल दिया, जिसने इसे इस प्रकार परिभाषित किया- 'ऐसा विकास जो वर्तमान पीढ़ी की आवश्यकताओं को भावी पीढ़ियों की आवश्यकताओं की पूर्ति क्षमता के समझौता किये बिना पूरा करें'।

इस परिभाषा को दुबारा पढ़ें। आप देखेंगे कि 'आवश्यकता' और 'भावी पीढ़ियाँ' ये दो महत्त्वपूर्ण अवधारणाएँ हैं। परिभाषा में आवश्यकता की अवधारणा का संबंध संसाधनों के वितरण से है। सम्मेलन की रिपोर्ट-आवर कॉमन फ्यूचर (our common future) जिसने उपर्युक्त परिभाषा दी है, धारणीय विकास की व्याख्या "सभी की बुनियादी आवश्यकताओं की पूर्ति और एक अच्छे जीवन की आकांक्षाओं की संतुष्टि के लिए सभी को अवसर प्रदान करने के रूप में की है।" सभी की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए संसाधनों के पुनर्वितरण की आवश्यकता होगी, इसीलिए यह एक नैतिक प्रश्न है। एडवर्ड बारबियर ने धारणीय विकास

की परिभाषा बुनियादी स्तर पर गरीबों के जीवन के भौतिक मानकों को ऊँचा उठाने के सदंर्भ मे दी है जिसे आय, वास्तविक आय, शैक्षिक सेवाएँ, स्वास्थ्य देखभाल, सफाई, जल पूर्ति इत्यादि के रूप में परिमाणात्मक रूप से मापा जा सकता है। अधिक स्पष्ट शब्दों में हम कह सकते हैं कि धारणीय विकास का लक्ष्य गरीबों की समग्र दरिद्रता को कम करके उन्हें चिरस्थायी व सुरक्षित जीविका निर्वाह साधन प्रदान करना है जिससे संसाधन अपक्षय, पर्यावरण अपक्षय, सांस्कृतिक विघटन और सामाजिक अस्थिरता न्यूनतम हो। इस अर्थ में धारणीय विकास का अर्थ उस विकास से है जो सभी की, विशेष रूप से बहुसंख्यक निर्धनों की, बुनियादी आवश्यकताओं जैसे-रोजगार, भोजन, ऊर्जा, जल, आवास आदि की पूर्ति करे और इन आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु कृषि, विनिर्माण, बिजली और सेवाओं की वृद्धि सुनिश्चित करे।

ब्रुटलैंड कमीशन ने भावी पीढ़ी को संरक्षित करने पर जोर दिया। यह पर्यावरण-विदों के उस तर्क के अनुकूल है, जिसमें उन्होंने इस बात पर जोर दिया है कि यह हमारा नैतिक दायित्व है कि हम भावी पीढ़ी को एक व्यवस्थित भूमंडल प्रदान करें। दूसरे शब्दों में, वर्तमान पीढ़ी को आगामी पीढ़ी द्वारा एक बेहतर पर्यावरण उत्तराधिकार के रूप में सौंपा जाना चाहिए। कम से कम हमें आगामी पीढ़ी के जीवन के लिए अच्छी गुणवत्ता वाली परिसंपत्तियों का भंडार छोड़ना चाहिए, जो कि हमें उत्तराधिकार के रूप प्राप्त हुआ है।

वर्तमान पीढ़ी का दायित्व है कि ऐसे विकास का संवर्द्धन कर प्राकृतिक और निर्मित पर्यावरण का सामंजस्य स्थापित करें जो (क) प्राकृतिक संपदा का संरक्षण (ख) विश्व की प्राकृतिक पारिस्थितिक व्यवस्था की पुनर्जनन क्षमता की सुरक्षा और (ग) भविष्य की पीढ़ियों के ऊपर अतिरिक्त खर्चे या जोखिम को हटाने के अनुकूल हो।

हरमन डेली, एक विख्यात पर्यावरणवादी अर्थशास्त्री के अनुसार धारणीय विकास की प्राप्ति के लिए निम्नलिखित आवश्यकताएँ हैं:

(क) मानव जनसंख्या को पर्यावरण की धारण क्षमता के स्तर तक सीमित करना होगा। पर्यावरण की धारण क्षमता एक जहाज के भार ढोने की क्षमता के समान है। अर्थव्यवस्था में इस प्रकार की क्षमता के अभाव में मनुष्यों की संख्या पृथ्वी की धारण-क्षमता से अधिक हो जाती है, जो हमें धारणीय विकास से दूर ले जाते हैं।

(ख) प्रौद्योगिक प्रगति आगत-निपुण हो न कि आगत उपभोगी।

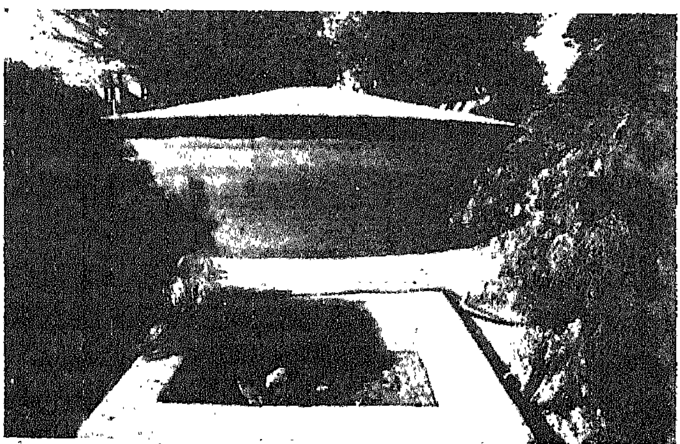
(ग) नवीकरणीय संसाधनों का निष्कर्षण धारणीय आधार पर हो ताकि किसी भी स्थिति में निष्कर्षण की दर पुनर्सृजन की दर से अधिक न हो।

(घ) गैर-नवीकरणीय संसाधनों का अपक्षय दर नवीनीकृत प्रतिस्थापकों से अधिक नहीं होनी चाहिए और

(ङ) प्रदूषण के कारण उत्पन्न अक्षमताओं का सुधार किया जाना चाहिए।

9.5 धारणीय विकास की रणनीतियाँ

ऊर्जा के गैर पारंपरिक स्रोतों का उपयोग : जैसा कि आप जानते हैं कि भारत अपनी विद्युत आवश्यकताओं के लिए थर्मल और हाइड्रों पॉवर संयंत्रों पर बहुत अधिक निर्भर है। इन दोनों का पर्यावरण पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। थर्मल पॉवर संयंत्र बड़ी मात्रा में कार्बन-डाइऑक्साइड का उत्सर्जन करते हैं, जो एक ग्रीन हाउस गैस है। थर्मल पॉवर प्लांटों से बड़ी मात्रा में धुएँ के रूप में राख भी निकलती है, जिसका उचित उपयोग न हो तो जल, भूमि और पर्यावरण के अन्य संघटकों के प्रदूषण का कारण हो सकता है। जल-विद्युत परियोजनाओं से वन जलमग्न हो जाते हैं और नदी प्रवाह क्षेत्रों तथा नदी की घाटियों के प्राकृतिक प्रवाह में हस्तक्षेप करते हैं। वायु शक्ति और सौर किरणें पारंपरिक ऊर्जा के अच्छे उदाहरण हैं, लेकिन स्वच्छ और हरित प्रौद्योगिकी का प्रयोग प्रभावशाली रूप से थर्मल और हाइड्रो शक्ति के स्थान पर हो सकता है।



चित्र 9.4 गोबर गैस संयंत्र में ईंधन उत्पादन के लिए गोबर का प्रयोग

इन्हें कीजिए

दिल्ली में बसें और अन्य सार्वजनिक जन परिवहन पेट्रोल या डीजल के बजाय उच्चदाब गैस CNG का उपयोग करते हैं तथा कुछ वाहन परिवर्तनीय इंजनों का उपयोग करते हैं। सौर ऊर्जा का उपयोग स्ट्रीट लाइट के लिए किया जाता है। इन परिवर्तनों के बारे में आप क्या सोचते हैं? भारत में धारणीय विकास की आवश्यकता पर अपनी कक्षा में परिचर्चा का आयोजन कीजिए।

ग्रामीण क्षेत्रों में एल.पी.जी. गोबर गैस: ग्रामीण क्षेत्र में रहने वाले परिवार प्राय: लकड़ी, उपले और अन्य जैविक पदार्थों का इस्तेमाल ईंधन के रूप में करते हैं। इससे वन विनाश, हरित-क्षेत्र में कमी, मवेशियों के गोबर का अप्रत्यय और वायु प्रदूषण जैसे अनेक प्रतिकूल प्रभाव होते हैं। इस स्थिति को सुधारने के लिए सहायिकी द्वारा कम कीमत पर तरल पेट्रोलियम गैस (LPG) प्रदान की जा रही है। इसके अतिरिक्त, गोबर गैस संयंत्र आसान ऋण और सहायिकी देकर उपलब्ध कराये जा रहे हैं। जहाँ तक तरल पेट्रोलियम गैस का संबंध है, यह एक स्वच्छ ईंधन है जो कि परिवारों में प्रदूषण को काफी हद तक कम करता है। इसमें ऊर्जा का अपव्यय भी न्यूनतम होता है। गोबर गैस सयंत्र को चलाने के लिए गोबर को संयंत्र में डाला जाता है और

उससे गैस का उत्पादन होता है, जिसका ईंधन के रूप में प्रयोग किया जाता है। जो बच जाता है, वह एक बहुत ही अच्छा जैविक उर्वरक और मृदा अनुकूलक है।

शहरी क्षेत्रों में उच्चदाब प्राकृतिक गैस (CNG): दिल्ली में सार्वजनिक परिवहन प्रणाली में उच्चदाब प्राकृतिक गैस (CNG) के ईंधन के रूप में प्रयोग से वायु प्रदूषण बड़े पैमाने पर कम हुआ है और पिछले कुछ वर्षों से हवा स्वच्छ हुई है।

वायु शक्ति: जिन क्षेत्रों में हवा की गति आमतौर पर तीव्र होती है, वहाँ पवन चक्की से बिजली प्राप्त की जा सकती है। ऊर्जा का यह स्रोत पर्यावरण पर कोई प्रतिकूल प्रभाव भी नहीं डालता। हवा के साथ-साथ टरबाइन घूमते हैं और बिजली पैदा होती है। इसमें शक नहीं कि इसमें प्रारंभिक व्यय बहुत है, लेकिन इसके लाभ ऐसे हैं जो इसकी अधिक लागत को आत्मसात् कर लेते हैं।

फोटोवोल्टीय सेल द्वारा सौर शक्ति: प्राकृतिक रूप से भारत में सूर्य किरण के माध्यम से सौर ऊर्जा भारी मात्रा में उपलब्ध है। हम इसका प्रयोग विभिन्न तरीकों से करते हैं। उदाहरण के लिए, हम कपड़े, अनाज तथा अन्य कृषि उत्पाद और दैनिक उपयोग की विभिन्न वस्तुओं को सुखाते हैं। सर्दी में सूर्य किरण का उपयोग हम गरमाहट के लिए करते हैं। पौधे सौर ऊर्जा का प्रयोग प्रकाश-संश्लेषण के लिए करते हैं। अब फोटोवॉल्टिक सेलों की मदद से सौर ऊर्जा को विद्युत में परिवर्तन किया जा सकता है। ये सेल सौर ऊर्जा को एक विशिष्ट प्रकार के उपकरण से पकड़ते हैं और फिर ऊर्जा को बिजली में बदल देते हैं। यह प्रौद्योगिकी दूरदराज के क्षेत्रों और ऐसी जगहों के लिए उपयोगी है, जहाँ ग्रिड अथवा तारों द्वारा विद्युत पूर्ति या तो संभव नहीं है अथवा खर्चीली है। यह प्रौद्योगिकी प्रदूषण से पूर्णतया मुक्त है।

लघु जलीय प्लांट: पहाड़ी इलाकों में लगभग सभी जगहों में झरने मिलते हैं। इन झरनों में से अधिकांश स्थायी होते हैं। मिनिहाइडल प्लांट इन झरनों की ऊर्जा से छोटी टरबाइन चलाते हैं। टरबाइन से बिजली का उत्पादन होता है, जिसका प्रयोग स्थानीय स्तर पर किया जा सकता है। इस प्रकार के पॉवर प्लांट पर्यावरण के लिए हितकर होते हैं, क्योंकि जहाँ वे लगाये जाते हैं वहाँ भू-उपयोग की प्रणाली में कोई परिवर्तन नहीं करते। इसका यह भी अर्थ है कि ऐसे प्लांटों के उपयोग से बड़े-बड़े संचरण टावर (transmission towers) और तारों की इसमें जरूरत नहीं होती है और संचरण की हानि को रोका जा सकता है।

पारंपरिक ज्ञान व व्यवहार: पारंपरिक रूप से भारतीय लोग पर्यावरण के निकट रहे हैं। वे पर्यावरण के एक अंग के रूप में रहे हैं, न कि उसके नियंत्रक के रूप में। यदि हम अपनी कृषि व्यवस्था, स्वास्थ्य-सुविधा व्यवस्था, आवास, परिवहन आदि को पीछे मुड़कर देखें, तो पता चलेगा कि हमारे सभी क्रियाकलाप पर्यावरण के लिए हितकर रहे हैं। लेकिन, आजकल हम अपनी पारंपरिक प्रणालियों से दूर हो गये हैं, जिससे हमारे पर्यावरण और

हमारी ग्रामीण विरासत को भारी मात्रा में हानि पहुँची है। अब समय आ गया है कि हम पारंपरिक ज्ञान पर ध्यान दें। इसका सबसे अच्छा उदाहरण स्वास्थ्य की देखभाल है। भारत बहुत ही सौभाग्यशाली है यहाँ औषधिगुण से युक्त पौधों की लगभग 15,000 प्रजातियाँ हैं। इनमें से लगभग 8,000 जड़ी-बूटियों का प्रयोग उपचार की विभिन्न प्रणालियों में लोक-परंपरा सहित नियमित रूप से होता है। उपचार की पश्चिमी पद्धति के अचानक आ जाने से हमने पारंपरिक प्रणालियों जैसे, आयुर्वेदिक, यूनानी, तिब्बती व लोक प्रणालियों की अवहेलना शुरू कर दी। अब इन स्वास्थ्य प्रणालियों की माँग पुराने रोगों के उपचार के लिए फिर से हो रही है। आजकल सभी सौंदर्य उत्पाद जैसे, बालों के लिए तेल, टूथपेस्ट, शरीर के लिए लोशन, चेहरे की क्रीम इत्यादि हर्बल हैं। ये उत्पाद न केवल पर्यावरण के अनुकूल हैं बल्कि उनसे कोई हानि नहीं होती और उनके लिए बड़ी मात्रा में किसी औद्योगिक और रासायनिक प्रक्रिया का सहारा भी नहीं लेना पड़ता।

जैविक कंपोस्ट खाद: पिछले पाँच दशकों में कृषि उत्पादन बढ़ाने की कोशिश में हमने जैविक कंपोस्ट खाद की अवहेलना की और पूरी तरह से रासायनिक खाद का उपयोग करने लगे। इससे मात्रा में उर्वर भूमि पर बहुत प्रतिकूल प्रभाव पड़ा। रासायनिक प्रदूषण से जल व्यवस्था, विशेषकर भूतल जल प्रणाली, दूषित हुई। यह भी सही है कि प्रत्येक वर्ष सिंचाई की माँग में बढ़ोत्तरी हो रही है।

पूरे देश में अब भारी संख्या में किसान विभिन्न जैविक अवशिष्टों जैसे, करकट से बनी कंपोस्ट खाद का उपयोग कर रहे हैं। देश के कुछ भागों में जानवर इसलिए पाले जाते हैं, जिससे वे गोबर दे सकें। जो महत्वपूर्ण खाद है और मिट्टी को उर्वर बनाता है। केंचुए सामान्यत: कंपोस्ट खाद प्रक्रिया की अपेक्षा तीव्रता से जैविक वस्तुओं को कंपोस्ट में बदल सकते हैं। इस प्रक्रिया का अब व्यापक तौर पर प्रयोग हो रहा है। इससे नागरिक प्रशासन अधिकारियों को भी अप्रत्यक्ष रूप से लाभ होता है, क्योंकि उन्हें कम कूड़ा हटाना पड़ता है।

जैविक-कीट नियंत्रण: हरित क्रांति के आगमन के बाद, अधिक उत्पाद के लिए पूरे देश में रासायनिक कीटनाशकों का अधिकाधिक प्रयोग होने लगा। इससे बहुत जल्दी प्रतिकूल प्रभाव दिखने लगे। भोज्य पदार्थ दूषित हो गये। मृदा, जलाशय, यहाँ तक कि भूतल जल भी कीटनाशकों के कारण प्रदूषित हो गये। दूध, माँस और मछलियाँ भी दूषित पाई गईं।

इस चुनौती का सामना करने के लिए अब बेहतर कीट नियंत्रक तरीकों को बनाने के प्रयास हो रहे हैं। इनमें से एक उपाय पौधों के उत्पाद पर आधारित कीटनाशकों का उपयोग है। नीम के पेड़ इसमें काफी उपयोगी साबित हो रहे हैं। नीम से अनेक प्रकार के कीट नियंत्रक रसायन बनाये गये हैं और उनका उपयोग हो रहा है। मिश्रित फसल और एक ही भूमि पर लगातार कई वर्षों तक अलग-अलग फसलों के उत्पादन से भी किसानों को लाभ पहुँचा है।

इसके अतिरिक्त, विभिन्न जानवर और पक्षियों के बारे में जागरूकता बढ़ी है जो कीट नियंत्रण में सहायक है। उदाहरण के लिए, साँप, चूहों और अनेक प्रकार के कीड़ों को खा जाता है। इसी प्रकार उल्लू, मोर जैसे पक्षी अनेक हानिकारक कीटों का भक्षण करते हैं। यदि हम इन्हें कृषि क्षेत्र में रहने दें तो वे काफी संख्या में कीटों का नाश कर देंगे। इस संबंध में छिपकली भी उपयोगी है। हमें उनकी कीमत समझनी चाहिए और उनका संरक्षण होना चाहिए।

आजकल धारणीय विकास शब्द बहुत लोकप्रिय हो गया है। विकास की विचारधारा में निश्चय ही यह एक दृष्टांत परिवर्तन है। कई प्रकार से इसकी व्याख्या भी की गई है। लेकिन, इस मार्ग को अपनाने से चिरस्थायी विकास और सभी के लिए कल्याण सुनिश्चित होगा।

9.6 निष्कर्ष

आर्थिक विकास से, जिसका लक्ष्य बढ़ती जनसंख्या की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए वस्तुओं व सेवाओं के उत्पादन को बढ़ाना है, पर्यावरण पर बहुत दबाव पड़ता है। विकास की प्रारंभिक अवस्थाओं में पर्यावरण संसाधनों की माँग पूर्ति से कम थी। अब विश्व के समक्ष पर्यावरण संसाधनों की बढ़ती माँग है, लेकिन उनकी पूर्ति अत्यधिक उपयोग व दुरूपयोग की वजह से सीमित है। धारणीय विकास का लक्ष्य उस प्रकार के विकास का संवर्द्धन है, जोकि पर्यावरण समस्याओं को कम करे और भावी पीढ़ी की आवश्यकताओं की पूर्ति करने की क्षमता से समझौता किए बिना, वर्तमान पीढ़ी की ज़रूरतों को पूरा करे।

पुनरावर्तन

- पर्यावरण के चार कार्य हैं: संसाधन पूर्ति, अपशिष्ट-विसर्जन, जननिक और जैविक विविधता प्रदान करते हुए जीवन का पोषण तथा सौदर्य सेवाएँ प्रदान करना।
- जनसंख्या विस्फोट, प्रचुर मात्रा में उपभोग और उत्पादन ने पर्यावरण पर भारी दबाव डाला है।
- भारत में विकास कार्यो ने प्राकृतिक संसाधनों की निश्चित परिभाषा पर दबाव डाला है। इससे मानव स्वास्थ्य और सुख समृद्धि पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है।
- भारत के पर्यावरण पर दो प्रकार के संकट मँडरा रहे हैं-पहला संकट तो निर्धनताजनित पर्यावरण क्षय का है और दूसरा संकट संपन्नता तथा तेजी से बढ़ते औद्योगिक क्षेत्रक से हो रहे प्रदूषण का है।
- यद्यपि सरकार अनेक प्रकार के प्रयासों से पर्यावरण की रक्षा करने का यत्न कर रही है, फिर भी धारणीय विकास का मार्ग अपनाना आवश्यक है।
- धारणीय विकास का अर्थ वर्तमान पीढ़ी की आवश्यकताओं को इस प्रकार पूरा करना है कि भविष्य की पीढ़ियों को अपनी आवश्यकताएँ पूरी करने में किसी बाधा का सामना न करना पड़े।
- प्राकृतिक संसाधनों के संवर्द्धन, सरंक्षण और पारिस्थितिक पुनर्जनन क्षमता को बनाए रखने और भावी पीढ़ियों के लिए पर्यावरणीय सकंटों के निवारण से ही धारणीय विकास संभव हो पाएगा



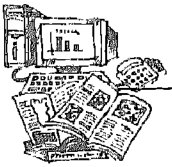
अभ्यास

1. पर्यावरण से आप क्या समझते हैं?
2. जब संसाधन निस्सरण की दर उनके पुनर्जनन की दर से बढ़ जाती है, तो क्या होता है?
3. निम्न को नवीकरणीय और गैर-नवीकरणीय संसाधनों में वर्गीकृत करें।
   (क)वृक्ष (ख) मछली (ग) पेट्रोलियम (घ) कोयला (ङ) लौह अयस्क (च) जल
4. आजकल विश्व के सामने ''''' और ''''' की दो प्रमुख पर्यावरण समस्याएँ हैं।
5. निम्न कारक भारत में कैसे पर्यावरण संकट में योगदान करते हैं? सरकार के समक्ष वे कौन-सी समस्याएँ पैदा करते हैं:
   - बढ़ती जनसंख्या
   - वायु-प्रदूषण
   - जल-प्रदूषण
   - संपन्न उपभोग मानक
   - निरक्षरता
   - औद्योगीकरण
   - शहरीकरण
   - वन-क्षेत्र में कमी
   - अवैध वन कटाई
   - वैश्विक उष्णता
6. पर्यावरण के क्या कार्य होते हैं?
7. भारत में भू-क्षय के लिए उत्तरदायी छह कारकों की पहचान करें।
8. समझायें कि नकारात्मक पर्यावरणीय प्रभावों की अवसर लागत उच्च क्यों होती है?
9. भारत में धारणीय विकास की प्राप्ति के लिए उपयुक्त उपायों की रूपरेखा प्रस्तुत करें।
10. भारत में प्राकृतिक संसाधनों की प्रचुरता है-इस कथन के समर्थन में तर्क दें।
11. क्या पर्यावरण संकट एक नवीन परिघटना है? यदि हाँ, तो क्यों?
12. इनके दो उदाहरण दें-
    (क) पर्यावरणीय संसाधनों का अति प्रयोग
    (ख) पर्यावरणीय संसाधनों का दुरुपयोग
13. पर्यावरण की चार प्रमुख क्रियाओं का वर्णन कीजिए। महत्त्वपूर्ण मुद्दों की व्याख्या कीजिए। पर्यावरणीय हानि की भरपाई की अवसर लागतें भी होती हैं? व्याख्या कीजिए।

14. पर्यावरणीय संसाधनों की पूर्ति-मांग के उत्क्रमण की व्याख्या कीजिए।
15. वर्तमान पर्यावरण संकट का वर्णन करें।
16. भारत में विकास के दो गंभीर नकारात्मक पर्यावरण प्रभावों को उजागर करें। भारत की पर्यावरण समस्याओं में एक विरोधाभास है – एक तो यह निर्धनताजनित है और दूसरे जीवन-स्तर में संपन्नता का कारण भी है। क्या यह सत्य है?
17. धारणीय विकास क्या है?
18. अपने आस-पास के क्षेत्र को ध्यान में रखते हुए धारणीय विकास की चार रणनीतियाँ सुझाइए।
19. धारणीय विकास की परिभाषा में वर्तमान और भावी पीढ़ियों के बीच समता के विचार की व्याख्या करें।

अतिरिक्त गतिविधियाँ

1. मान लीजिए कि महानगरों की सड़कों पर 70 लाख कारें और आ रही हैं। आपके विचार में किस प्रकार के संसाधन घटते जा रहे होंगे। व्याख्या करें।
2. उन मदों की सूची बनाइए, जिन्हें पुनः प्रयोग के योग्य बनाया जा सकता है।
3. भारत में मृदा अपरदन के कारणों और उसके बचाव की युक्तियों पर एक चार्ट बनाइए।
4. जनसंख्या विस्फोट पर्यावरणीय संकट में किस प्रकार योगदान देता है। कक्षा में परिचर्चा का आयोजन करें।
5. 'पर्यावरणीय हानि की भरपाई करने के लिए राष्ट्र को बड़ी भारी कीमत चुकानी पड़ेगी।' चर्चा करें।
6. आपके गाँव में एक कागज का कारखाना लगाया जाता है। सामाजिक कार्यकर्ता, उद्योगपति और ग्रामीणों के समूह के साथ इस विषय में एक लघु नाटिका का आयोजन करें।



संदर्भ

पुस्तकें

अग्रवाल अनिल एंड सुनीता नारायन 1996. *ग्लोबल वार्मिंग इन एन अनइक्वल वर्ल्ड*, सेंटर फॉर साइंस एंड इनवायरमेंट, रिप्रिंट एडिशन, नई दिल्ली।

भरूचा इरेच 2005. *टेक्स्ट बुक ऑफ इनवायरमेंटल स्टडीज फॉर अंडरग्रेजुएट कोर्स*, यूनिवर्सिटी प्रेस (इंडिया) प्राइवेट लिमिटेड।

सेंटर फॉर साइंस एंड इनवायरमेंट 1996. स्टेट ऑफ इंडियाज इनवायरमेंट 1: द *फर्स्ट सिटीजन्स रिपोर्ट, 1982.* रिप्रिंट एडिशन, नई दिल्ली।

सेंटर फॉर साइंस एंड इनवायरमेंट 1996 स्टेट ऑफ इंडियाज इनवायरमेंट 2: द *सेकेंड सिटीजन्स रिपोर्ट 1985.* रिप्रिंट एडिशन, नई दिल्ली।

एम. करपगम 2001. इनवायरमेंटल इकोनॉमिक्स : ए *टेक्स्ट बुक स्टरलिंग पब्लिशर्स*, नई दिल्ली।

राजगोपालन आर. 2005. *इनवायरमेंटल स्टडीज: फ्रॉम क्राइसिस* टू *क्योर*, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली।

शुमेकर ई. एफ, स्मॉल एंड ब्यूटीफुल, एबसस पब्लिशर्स

पत्रिकाएँ

साइंटिफिक अमेरिकन इंडो–स्पेशल इश्यू सितंबर 2005. 'प्लानेट अर्थ ऑन ऐज',

डाउन टू अर्थ, सेंटर फॉर साइंस एंड इनवायरमेंट, नई दिल्ली

वेबसाइट

http://envfor.nic.in

http://cpcb.nic.in

http://www.cseindia.org

इकाई
चार

भारत और इसके पड़ोसी देशों के तुलनात्मक विकास अनुभव

आज वैश्वीकरण के इस युग में जहाँ भौगोलिक परिसीमाएँ धीरे-धीरे अर्थहीन होती जा रही हैं, विकासशील विश्व के देशों के लिए यह आवश्यक है कि वे अपने पड़ोसी देशों द्वारा अपनाई जा रही विकास की रणनीतियों को समझें। ऐसा इसलिए भी आवश्यक है कि वे विश्व बाज़ार में सीमित आर्थिक हिस्सेदारी करते हैं। इस इकाई में हम भारत के विकास अनुभवों की तुलना इसके दो महत्त्वपूर्ण और निर्णायक पड़ोसियों- पाकिस्तान और चीन से करेंगे।

10

भारत और इसके पड़ोसी देशों के तुलनात्मक विकास अनुभव

इस अध्याय का अध्ययन करने के बाद आप

- भारत और इसके पड़ोसी देशों, चीन और पाकिस्तान के आर्थिक एवं मानव विकास के सूचकों की तुलनात्मक प्रवृत्तियों को समझ सकेंगे;
- विकास की वर्तमान अवस्था तक पहुँचने हेतु इन देशों द्वारा अपनाई गई उन नीतियों का मूल्यांकन कर सकेंगे, जिन्हें इन देशों ने विकास की वर्तमान स्थिति तक पहुँचने के लिए अपनाया है।

भूगोल ने हमें पड़ोसी, इतिहास ने मित्र, अर्थशास्त्र ने भागीदार तथा आवश्यकता ने सहयोगी बना दिया है। जिन्हें भगवान ने ही इस प्रकार जोड़ा है, उन्हें इन्सान कैसे अलग कर पाए!

-जॉन एफ. कैनेडी

10.1 परिचय

पिछली इकाइयों में हमने भारत के अनेक विकास अनुभवों का विस्तार से अध्ययन किया है। हमने यह भी अध्ययन किया था कि भारत ने किस प्रकार की नीतियाँ अपनाई और उनके विभिन्न क्षेत्रकों पर किस प्रकार के प्रभाव पड़े। पिछले लगभग दो दशकों से वैश्वीकरण ने विश्व के प्रायः सभी देशों में नवीन आर्थिक परिवर्तन हुए हैं। इन परिवर्तनों के कुछ अल्पकालिक, तो कुछ दीर्घकालिक प्रभाव भी हैं। भारत भी इनसे अछूता नहीं रहा है। शीतयुद्ध के बाद से विश्व के सभी राष्ट्र अपनी घरेलू अर्थव्यवस्थाओं को सुदृढ़ करने के लिए अनेक उपाय अपनाते रहे हैं। इसी उद्देश्य से वे अनेक प्रकार के क्षेत्रीय और वैश्विक समूहों का निर्माण करते रहे हैं जैसे कि **सार्क, यूरोपियन संघ, आसियान, जी-8, जी-20** आदि। इसके अतिरिक्त, विभिन्न राष्ट्र इस बात के लिए उत्सुक रहे हैं कि वे अपने पड़ोसी राष्ट्रों द्वारा अपनाई गई विकासात्मक प्रक्रियाओं को समझने की कोशिश करें। इससे उन्हें अपने पड़ोसी देशों की शक्तियों एवं कमजोरियों को बेहतर ढंग से समझने में मदद मिलेगी। वैश्वीकरण की प्रक्रिया के दौरान इसे विशेष रूप से विकासशील देशों के लिए आवश्यक समझा गया, क्योंकि वे अपेक्षाकृत सीमित स्थान में न केवल विकसित देशों द्वारा प्रतिस्पर्धा का सामना कर रहे थे, बल्कि आपसी प्रतिस्पर्धा का भी।

इसके अतिरिक्त, अपने पड़ोसी देशों की अन्य आर्थिक व्यवस्थाओं की जानकारी भी आवश्यक थी, क्योंकि क्षेत्र की सभी मुख्य सामान्य आर्थिक गतिविधियाँ एक सहभागी वातावरण में मानव विकास से संबंधित थीं।

इस अध्याय में हम भारत और उसके दो बड़े पड़ोसी राष्ट्रों- पाकिस्तान और चीन द्वारा अपनाई गई विकासात्मक नीतियों की तुलना करेंगे। परंतु यह याद रखना होगा कि भौतिक साधन संपन्नता संबंधी समानताओं के बावजूद विश्व के सबसे बड़े लोकतंत्र और 50 से भी अधिक वर्षों से धर्मनिरपेक्षता और अति उदार संविधान के प्रति प्रतिबद्ध रहे भारत की राजनीतिक शक्ति व्यवस्था और पाकिस्तान की सत्तावादी एवं सैन्यवादी राजनीकि शक्ति संरचना या चीन की निर्देशित अर्थव्यवस्था के बीच कोई समानता नहीं है। चीन ने तो हाल ही में उदारवादी व्यवस्था की दिशा में अग्रसर होना प्रारंभ किया है।

10.2 विकास पथ: एक चित्रांकन

क्या आप यह जानते हैं कि भारत, पाकिस्तान और चीन की विकासात्मक नीतियों में अनेक समानताएँ हैं। तीनों राष्ट्रों ने विकास पथ पर एक ही समय चलना प्रारंभ किया है।

भारत और पाकिस्तान 1947 में स्वतंत्र हुए जबकि चीन गणराज्य की स्थापना 1949 में हुई। उस समय पंडित जवाहरलाल नेहरू ने अपने

भाषण में कहा था "यद्यपि भारत और चीन के बीच विचारधारा में बहुत भेद है, लेकिन नए और क्रांतिकारी परिवर्तन एशिया की नवीन भावना और नई शक्ति के प्रतीक हैं जो एशिया के देशों में साकार रूप ग्रहण कर रहे हैं।"

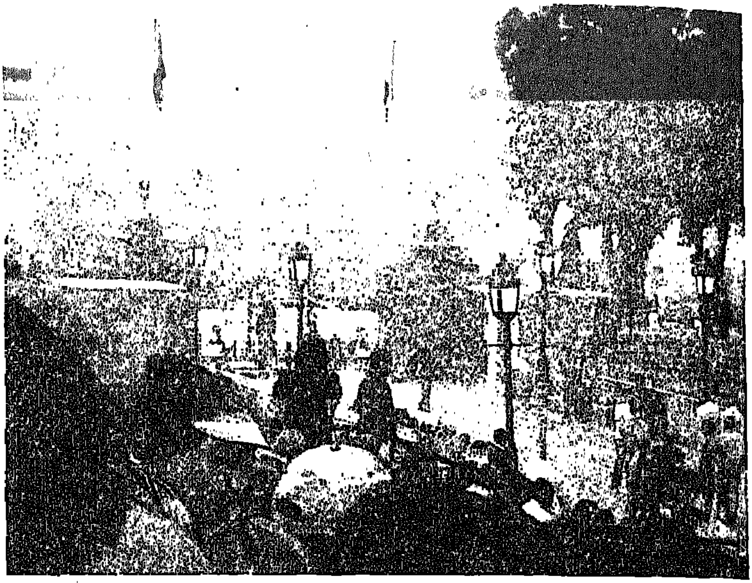
तीनों देशों ने एक ही प्रकार से अपनी विकास नीतियाँ तैयार करना शुरू किया था। भारत ने 1951-56 में प्रथम पंचवर्षीय योजना की घोषणा की और पाकिस्तान ने 1956 में अपनी प्रथम पंचवर्षीय योजना की घोषणा की थी, जिसे मध्यकालिक योजना भी कहा जाता था। चीन ने 1953 में अपनी प्रथम पंचवर्षीय योजना की घोषणा की। 1998 तक पाकिस्तान की आठ पंचवर्षीय योजनाओं ने काम किया जबकि चीन की दसवीं पंचवर्षीय योजना की अवधि 2001-06 है। भारत की वर्तमान योजना दसवीं पंचवर्षीय योजना (2002-07) पर आधारित है। भारत और पाकिस्तान ने समान नीतियाँ अपनाईं जैसे, वृहत् सार्वजनिक क्षेत्रक का सृजन और सामाजिक विकास पर सार्वजनिक व्यय। 1980 के दशक तक तीनों देशों की संवृद्धि दर और प्रतिव्यक्ति आय समान थी। एक दूसरे की तुलना में आज उनकी स्थिति क्या है? इस प्रश्न का उत्तर देने से पहले आइए, हम चीन और पाकिस्तान की विकास नीतियों के ऐतिहासिक पथ की जानकारी लें। पिछली तीन इकाइयों का अध्ययन करने के बाद हम अब यह जानते हैं कि भारत स्वतंत्रता प्राप्ति के समय से कौन-सी नीतियाँ अपनाता रहा है।

चीन: एक दलीय शासन के अंतर्गत चीन गणराज्य की स्थापना के बाद अर्थव्यवस्था सभी महत्वपूर्ण क्षेत्रकों, उद्यमों तथा भूमि, जिनका स्वामित्व और संचालन व्यक्तियों द्वारा किया जाता था, को सरकारी नियत्रंण में लाया गया। 1998 में **'ग्रेट लीप फॉरवर्ड'** अभियान शुरू किया गया था जिसका उद्देश्य बड़े पैमाने पर देश का औद्योगीकरण करना था। लोगों को अपने घर के पिछवाड़े में उद्योग लगाने के लिए प्रोत्साहित किया गया। ग्रामीण क्षेत्रों में कम्यून प्रारंभ किये गये। कम्यून पद्धति के अंतर्गत लोग सामूहिक रूप से खेती करते थे। 1958 मे 26,000 **'कम्यून'** थे जिनमें प्राय: समस्त कृषक शामिल थे।

जी.एल.एफ. अभियान में अनेक समस्याएँ आयी। भयंकर सूखे ने चीन में तबाही मचा दी जिसमें लगभग 30 मिलियन लोग मारे गये। जब रूस और चीन के बीच संघर्ष हुआ, तब रूस ने अपने विशेषज्ञों को वापस बुला लिया, जिन्हें औद्योगीकीकरण प्रकिया के दौरान सहायता करने के लिए चीन भेजा गया था। 1965 में माओ ने **महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रांति** का आरंभ किया (1966-76)। छात्रों और विशेषज्ञों को ग्रामीण क्षेत्रों में काम करने और अध्ययन करने के लिए भेजा गया।

संप्रति चीन में जो तेज औद्योगिक संवृद्धि हो रही है, उसकी जड़ें 1978 में लागू किये गये सुधारों में खोजा जा सकता है। चीन में सुधार चरणों में शुरू किया गया। प्रारंभिक चरण में कृषि, विदेशी व्यापार तथा निवेश क्षेत्रकों में सुधार किये गये। उदाहरण के लिए, कृषि, क्षेत्रक में कम्यून भूमि को छोटे-छोटे भूखंडों में बाँट दिया गया जिन्हें अलग-अलग परिवारों को आवंटित किया गया (प्रयोग के लिये न कि स्वामित्व के लिए)। वे प्रकल्पित कर देने के बाद भूमि से होने वाली समस्त आय को

अपने पास रख सकते थे। बाद के चरण में औद्योगिक क्षेत्र में सुधार आरंभ किये गये। सामान्य, नगरीय तथा ग्रामीण उद्यमों की निजी क्षेत्रक की उन फर्मों को वस्तुएँ उत्पादित करने की अनुमति थी, जो स्थानीय लोगों के स्वामित्व और संचालन के अधीन थे। इस अवस्था में उद्यमों को जिन पर सरकार का स्वामित्व था, (जिन्हें राज्य के उद्यम एस.ओ.ई. के नाम से जाना जाता है) और जिन्हें हम भारत में सार्वजनिक क्षेत्रक के उद्यम कहते हैं, उनको प्रतिस्पर्धा का सामना करना पड़ा। सुधार प्रक्रिया में दोहरी कीमत निर्धारण पद्धति लागू थी। इसका अर्थ यह है कि कीमत का निर्धारण दो प्रकार से किया जाता था। किसानों और औद्योगिक इकाइयों से यह अपेक्षा की जाती थी कि वे सरकार द्वारा निर्धारित की गई कीमतों के आधार पर आगतों एवं निर्गतों की निर्धारित मात्राएँ खरीदेंगे और बेचेंगे और शेष वस्तुएँ बाजार कीमतों पर खरीदी और बेची जाती थीं। गत वर्षों के दौरान उत्पादन में वृद्धि के साथ-साथ बाजार में बेची और खरीदी गई वस्तुओं या आगतों के अनुपात में भी वृद्धि हुई। विदेशी निवेशकों को आकर्षित करने के लिए **विशेष आर्थिक क्षेत्र** स्थापित किये गये।



चित्र 10.2 *बाघा बॉर्डर केवल पर्यटन स्थल ही नहीं बल्कि भारत तथा पाकिस्तान के बीच व्यापार के लिए भी इसका प्रयोग हो रहा है*

पाकिस्तानः द्वारा अपनायी गई विभिन्न आर्थिक नीतियों पर विचार करते हुए आप यह देखेंगे कि भारत और पाकिस्तान के बीच अनेक समानताएँ हैं। पाकिस्तान में सार्वजनिक तथा निजी क्षेत्रकों के सह-अस्तित्व वाली मिश्रित अर्थव्यवस्था मॉडल का अनुसरण किया जाता है। 1950 और 1960 के दशकों के अंत में पाकिस्तान के अनेक प्रकार की नियंत्रित नीतियों का प्रारूप लागू किया गया (आयात प्रतिस्थापन औद्योगीकरण के लिए)। उक्त नीति में उपभोक्ता वस्तुओं के विनिर्माण के लिए प्रशुल्क संरक्षण करना तथा प्रतिस्पर्धी आयातों पर प्रत्यक्ष आयात नियंत्रण करना शामिल था। हरित क्रांति के आने से यंत्रीकरण का युग शुरू हुआ और चुनिंदा क्षेत्रों की आधारिक संरचना में सरकारी निवेश में वृद्धि हुई, जिसके फलस्वरूप खाद्यान्नों के उत्पादन में भी अंततोगत्वा वृद्धि हुई। इसके कारण कृषि भूमि संबंधी संरचना में भी नाटकीय ढंग से परिवर्तन हुआ। 1970 के दशक में पूँजीगत

वस्तुओं के उद्योगों का राष्ट्रीयकरण हुआ। उसके बाद, पाकिस्तान ने 1970 और 1980 के दशकों के अंत में अपनी नीति उस समय बदल दी, जब अ-राष्ट्रीयकरण पर जोर दिया जा रहा था और निजी क्षेत्रक को प्रोत्साहित किया जा रहा था। इस अवधि के दौरान पाकिस्तान को पश्चिमी राष्ट्रों से भी वित्तीय सहायता प्राप्त हुई और मध्य-पूर्व देशों को जाने वाले प्रवासियों से निरंतर पैसा मिला। इससे देश की आर्थिक संवृद्धि को प्रोत्साहन मिला। तत्कालीन सरकार ने निजी क्षेत्रक को और भी प्रोत्साहन प्रदान किये। इन सब के कारण नये निवेशों के लिए अनुकूल वातावरण बना। 1988 में देश में सुधार शुरू किए गए।

चीन और पाकिस्तान की विकास नीतियों की संक्षिप्त रूपरेखा का अध्ययन करने के बाद, आइए अब हम भारत, चीन और पाकिस्तान के कुछ विकास संकेतकों की तुलना करें।

10.3 जनांकिकीय संकेतक

यदि हम विश्व की जनसंख्या पर विचार करें तो पायेंगे कि इस विश्व में रहने वाले प्रत्येक छः व्यक्तियों में से एक व्यक्ति भारतीय है और दूसरा चीनी। हम भारत में कुछ जनांकिकीय संकेतकों की तुलना करेंगे। पाकिस्तान की जनसंख्या बहुत कम है और वह चीन या भारत की जनसंख्या का लगभग दसवाँ भाग है।

यद्यपि इन तीनों में चीन सबसे बड़ा राष्ट्र है तथापि इसका जनसंख्या का घनत्व सबसे कम है और भौगोलिक रूप से इसका क्षेत्र सबसे बड़ा है। सारणी 10.1 में यह भी दिखाया गया है कि पाकिस्तान में जनसंख्या की वृद्धि सबसे अधिक है, उसके बाद भारत और चीन का स्थान है। विद्वानों का मत है कि चीन में जनसंख्या की कम वृद्धि का मुख्य कारण यह था कि 1970 के दशक के अंत में चीन में केवल एक संतान नीति लागू की गई थी। उनका यह भी कहना है कि इसके कारण लिंगानुपात (प्रत्येक एक हजार पुरुषों में महिलाओं का अनुपात) में गिरावट आई। परंतु सारणी से आपको पता चलेगा कि तीनों देशों में लिंगानुपात महिलाओं के पक्ष में कम था और पूर्वाग्रह से युक्त था। आजकल तीनों देश स्थिति को सुधारने के लिए विभिन्न उपाय कर रहे हैं। एक-संतान नीति और उसे लागू किये जाने के परिणामस्वरूप

सारणी 10.1

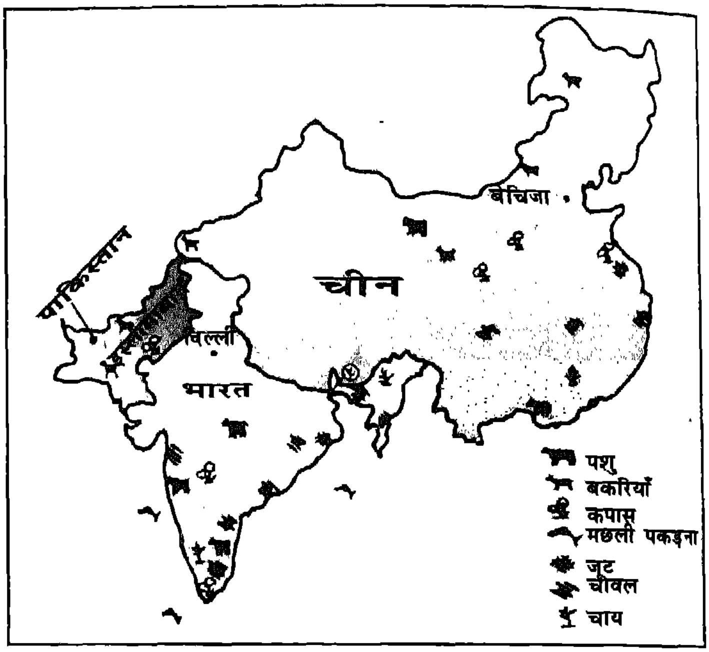
कुछ चुने हुए जनांकिकीय संकेतक 2000-01

देश	*अनुमानित जनसंख्या (मिलियन में)*	*जनसंख्या की वार्षिक संवृद्धि 1990-03*	*जनसंख्या का घनत्व (प्रति स्क्वेयर कि. व.*	*लिंग अनुपात*	*प्रजनन दर*	*नगरीकरण*
भारत	1103.6	1.7	358	933	3.0	27.8
चीन	1303.7	1.0	138	937(')	1.8	36.1
पाकिस्तान	162.4	2.5	193	922	5.1	33.4

टिप्पणी: *इन आँकड़ों में हाँगकाँग, मकाओ और ताइवान प्रांतों के आँकड़े शामिल नहीं हैं।*

जनसंख्या वृद्धि थमने के अन्य प्रभाव भी थे। उदाहरण के लिए, कुछ दशकों के बाद चीन में वयोवृद्ध लोगों की जनसंख्या का अनुपात युवा लोगों की अपेक्षा अधिक होगा। इसके कारण, कुछ कामगारों को सामाजिक सुरक्षा उपाय उपलब्ध कराने के हेतु कदम उठाने के लिए चीन को बाध्य होना पड़ेगा।

चीन में प्रजनन दर भी बहुत कम है और पाकिस्तान में बहुत अधिक। पाकिस्तान और चीन दोनों में नगरीकरण अधिक है। भारत में नगरीय क्षेत्रों में 28 प्रतिशत लोग रहते हैं।



चित्र 10.1 *भारत, चीन तथा पाकिस्तान में भूमि-प्रयोग* तथा कृषि *(स्केल के अनुसार नहीं)*

10.4 सकल घरेलू उत्पाद एवं क्षेत्रक

चीन के बारे में विश्व में बहुचर्चित एक मुद्दा उसके सकल घरेलू उत्पाद में वृद्धि है। चीन का सकल घरेलू उत्पाद 7.2 ट्रीलियन विश्व में दूसरे स्थान पर है। भारत का स.घ. उत्पाद 3.3

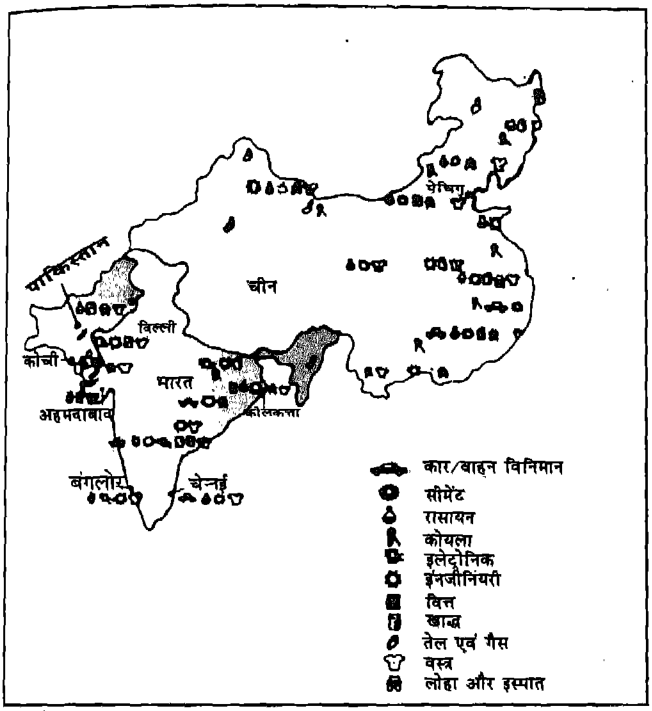
सारणी 10.2

सकल घरेलू उत्पाद में संवृद्धि (%)

देश	*1980-90*	*1990-2002/3*
भारत	5.7	5.8
चीन	10.3	9.7
पाकिस्तान	6.3	3.6

इन्हें कीजिए

- क्या भारत जनसंख्या स्थिरीकरण संबंधी उपाय कर रहा है? यदि हाँ, तो ब्यौरा एकत्र कीजिए और कक्षा में चर्चा कीजिए । आप नीवनतम आर्थिक सर्वेक्षण स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय की वार्षिक रिपोर्टों या वेबसाइटों (http://mohfw.nic.in) का संदर्भ दे सकते हैं।
- विद्वानों का मानना है कि भारत, चीन एवं पाकिस्तान सहित अनेक विकाशसील देशों में पुत्र को वरीयता देना एक सामान्य बात है। क्या आप इस बात को अपने परिवार या पड़ोस में देखते हैं? लोग लड़के और लड़कियों में भेदभाव क्यों करते हैं? आप इस बारे में क्या सोचते हैं? कक्षा में चर्चा कीजिए।



चित्र 10.2 *भारत, चीन एवं पाकिस्तान में उद्योग। (स्केल के अनुसार नहीं)*

ट्रीलियन तथा पाकिस्तान का जी.डी.पी. भारत के जी.डी.पी. के लगभग 10 प्रतिशत है।

जब अनेक विकसित देश 5 प्रतिशत तक की संवृद्धि दर बनाये रखने में कठिनाई महसूस कर रहे थे तब चीन एक ऐसा देश था जो दो दशकों से भी अधिक लगभग इसकी दोगुनी संवृद्धि बनाये रखने में समर्थ था। जैसा कि सारणी 10.2 में देखा जा सकता है।

यह भी देखिए कि 1980 के दशक में पाकिस्तान भारत से आगे था। चीन की संवृद्धि दोहरे अंकों में थी और भारत सबसे नीचे था। 1990 के दशक में भारत और चीन की संवृद्धि दरों में मामूली गिरावट आई, जबकि पाकिस्तान में 3.6 प्रतिशत की अत्यधिक गिरावट आई। कुछ विद्वानों का मत है कि पाकिस्तान में 1988 में प्रारंभ की गई सुधार प्रक्रिया तथा राजनीतिक अस्थिरता इस प्रवृत्ति का मुख्य कारण था। हम अगले अनुच्छेद में इसके बारे में और अधिक अध्ययन करेंगे, कि किस क्षेत्रक ने इन प्रवृत्तियों में योगदान दिया है।

सबसे पहले यह देखें कि विभिन्न क्षेत्रकों में नियुक्त लोग सकल घरेलू उत्पाद में योगदान कैसे करते हैं। पिछले खंड में बताया गया था कि चीन और पाकिस्तान में भारत की अपेक्षा नगर में रहने वाले लोगों का अनुपात अधिक है। चीन में स्थलाकृति तथा जलवायु दशाओं के कारण कृषि के लिए उपयुक्त क्षेत्र अपेक्षाकृत कम अर्थात् कुल भूमि क्षेत्र का लगभग दस प्रतिशत है। चीन में कुल कृषि योग्य भूमि भारत में कृषि क्षेत्र की 40 प्रतिशत है। 1980 के दशक तक चीन मे 80 प्रतिशत से भी अधिक लोग जीविका के एकमात्र साधन के रूप में कृषि पर निर्भर थे। उस समय से सरकार ने लोगों को कृषि कार्य त्यागने और हस्तशिल्प, वाणिज्य तथा परिवहन जैसी गतिविधियाँ अपनाने के लिए प्रेरित किया। 2000 में 54 प्रतिशत श्रमिकों के साथ कृषि ने चीन में सकल उत्पाद में 15 प्रतिशत में योगदान दिया (देखिए सारणी 10.3)।

भारत और पाकिस्तान दोनों में जी.डी.पी के लिए कृषि का योगदान बराबर अर्थात् 23 प्रतिशत था। परंतु इस क्षेत्रक में श्रमिकों का अनुपात

सारणी 10.3

रोजगार एवं जी.डी.पी. की क्षेत्रक हिस्सेदारी (:)

क्षेत्रक	क्षेत्रकों में योगदान (2003)			श्रमबल का वितरण		
	भारत	चीन	पाकिस्तान	भारत (2000)	चीन (1997)	पाकिस्तान (2000)
कृषि	23	15	23	60	54	49
उद्योग	26	53	23	16	27	18
सेवा	51	32	54	24	19	37
योग	100	100	100	100	100	100

भारत में अधिक है। पाकिस्तान में लगभग 49 प्रतिशत लोग कृषि कार्य करते है; जबकि भारत में 60 प्रतिशत उत्पादन तथा रोजगार में क्षेत्रकवार हिस्सेदारी भी यह दर्शाती है कि तीनों अर्थव्यवस्थाओं में उद्योग तथा सेवा क्षेत्रकों में श्रमिकों का अनुपात कम है। परंतु उत्पादन की दृष्टि से उनका योगदान अधिक है। चीन में विनिर्माण से जी.डी.पी. में सबसे अधिक अर्थात 53 प्रतिशत योगदान होता है जबकि भारत और पाकिस्तान में केवल सेवा क्षेत्रक द्वारा ही सबसे अधिक योगदान अर्थात 50 प्रतिशत से अधिक होता है।

विकास की सामान्य प्रकिया के दौरान इन देशों ने सबसे पहले रोजगार और कृषि उत्पादन से संबंधित अपनी नीतियों को बदलकर उन्हें विनिर्माण और उसके बाद सेवाओं की ओर परिवर्तित कर दिया। ऐसा ही चीन में हो रहा है जैसा की सारणी 10.4 में देखा जा सकता है। भारत और पाकिस्तान में विनिर्माण में लगे श्रमबल का अनुपात बहुत कम अर्थात क्रमश: 16 प्रतिशत और 18 प्रतिशत था। जी.डी.पी. में उद्योगों का योगदान कृषि के उत्पादन के बराबर या थोड़ा अधिक था। भारत और पाकिस्तान में सीधे सेवा क्षेत्रक पर जोर दिया जा रहा है। इस प्रकार भारत और पाकिस्तान दोनों में सेवा क्षेत्रक विकास के लिए एक महत्वपूर्ण घटक के रूप में उभर कर आ रहा है। यह जी.डी.पी. में अधिक योगदान कर रहा है और साथ ही यह संभावित नियोक्ता बन रहा है। 1980 के दशक में श्रमिकों के अनुपात पर विचार करते हैं तो यह पाते हैं कि पाकिस्तान, भारत और चीन के अपेक्षा सेवा क्षेत्रक में अपने श्रमिकों को तेजी से भेज रहा है। 1980 के दशक में भारत, चीन तथा पाकिस्तान में सेवा क्षेत्रक में

इन्हें कीजिए

- क्या समझते हैं कि चीन की भाँति भारत और पाकिस्तान को भी विनिर्माण क्षेत्रक पर ध्यान केंद्रित करना चाहिए। क्यों?
- अनेक विद्वानों का तर्क है कि सेवा क्षेत्रक को संवृद्धि का इंजन नहीं माना जाना चाहिए, जबकि भारत और पाकिस्तान में उत्पादन में वृद्धि मुख्यत: इसी क्षेत्रक में हुई है। आपका क्या विचार है?

सारणी 10.4

विभिन्न क्षेत्रकों में उत्पादन संवृद्धि की प्रवृत्तियाँ (1980-2003)

देश	1980-90			1990-2002/03		
	कृषि	उद्योग	सेवा	कृषि	उद्योग	सेवा
भारत	3.1	7.4	6.9	2.7	6.6	7.9
चीन	5.9	10.8	13.5	3.9	11.8	8.8
पाकिस्तान	4	7.7	6.8	3.7	3.9	4.3

क्रमश: 17, 12, और 27 प्रतिशत श्रमबल कार्यरत था। वर्ष 2000 में यह बढ़कर 24, 19, और 37 प्रतिशत हो गया है।

पिछले दो दशकों में तीनों ही देशों में कृषि क्षेत्रक, जिसमें उक्त तीनों देशों के श्रमबल का सबसे बड़ा अनुपात कार्यरत था, की संवृद्धि में कमी आई है। चीन में तो द्विअंकीय संवृद्धि दर बनी रही, किंतु भारत और पाकिस्तान में इसमें गिरावट आई है। भारत में 1990 के दशक के दौरान सेवा क्षेत्रक में संवृद्धि दर बढ़ी है, जबकि चीन और पाकिस्तान की इस क्षेत्रक में संवृद्धि कम हो गई है। इस प्रकार, चीन की आर्थिक संवृद्धि का मुख्य आधार विनिर्माण क्षेत्रक है और भारत की संवृद्धि सेवा क्षेत्रक से हुई है। पाकिस्तान में इस अवधि में तीनों ही क्षेत्रकों में गिरावट आई है।

सारणी 10.5

चुनिंदा मानव विकास संकेतांक, 2003

मद	भारत	चीन	पाकिस्तान
मानव विकास सूचक (मान)	0.602	0.755	0.527
पद	127	85	135
जन्म के समय जीवन प्रत्याशा (वर्षों में)	63.3	71.6	63.0
प्रौढ़ सारक्षरता दरें (15 वर्ष और अधिक आयु)	61.0	90.9	48.7
प्रतिव्यक्ति जी.डी.पी. (पी.पी.पी. अमेरिकी डॉलर)	2,892	5,003	2,097
निर्धनता रेखा से नीचे लोग	34.7	16.6	13.4
शिशु मृत्यु दर	63	30	81
मातृत्व मृत्युदर	540	56	500
उत्तम स्वच्छता तक धारणीय पहुँच वाली जनसंख्या(%)	30	44	54
उत्तम जल स्रोत्रों तक धारणीय पहुँच वाली जनसंख्या (%)	86	77	90
अल्प-पोषित जनसंख्या (कुल का %)	21	11	20

स्रोत: *मानव विकास रिपोर्ट, 2005*

10.5 मानव विकास के संकेतक

आपने निचली कक्षाओं में मानव विकास के संकेतकों के महत्व और अनेक विकसित और विकासशील देशों की स्थिति के विषय में पढ़ा होगा। आइए, हम देखें कि भारत, चीन और पाकिस्तान ने मानव विकास के चुनिंदा संकेतकों में कैसा निष्पादन हुआ है (सारणी 10.5 देखें)।

यदि सारणी 10.5 में दिये गये सूचकों की तुलना करें तो हमें पता चलेगा कि चीन भारत तथा पाकिस्तान से आगे है। यह बात अनेक संकेतकों के विषय में सही है जैसे, आय संकेतक अर्थात प्रतिव्यक्ति जी.डी.पी अथवा निर्धनता रेखा से नीचे की जनसंख्या का अनुपात अथवा स्वास्थ्य संकेतकों जैसे कि मृत्यु दर, स्वच्छता, साक्षरता तक पहुँच, जीवन प्रत्याशा अथवा कुपोषण। पाकिस्तान निर्धनता रेखा के नीचे के लोगों का अनुपात कम करने में भारत से आगे है। शिक्षा, स्वच्छता और जल तक पहुँच के मामलों में इसका निष्पादन भारत से बेहतर है। किंतु ये दोनों देश महिलाओं को मातृ मृत्यु से बचा पाने में असफल रहे हैं। चीन में प्रति एक लाख जन्म पर केवल 50 महिलाओं की मृत्यु होती है, जबकि भारत और पाकिस्तान में यह संख्या 500 से ऊपर है। आश्चर्य की बात यह है कि भारत और पाकिस्तान उत्तम जल स्रोत उपलब्ध कराने में चीन से आगे हैं। आप यह भी देखेंगे कि एक डॉलर प्रतिदिन की अंतर्राष्ट्रीय निर्धनता दर के नीचे के लोगों का अनुपात पाकिस्तान और चीन दोनों में समान है जबकि भारत में यह अनुपात इनसे दुगुना है। स्वयं ज्ञात कीजिये कि यह अंतर क्यों है?

परंतु, ऐसे प्रश्नों पर विचार करने अथवा निर्णय लेते समय हमें मानवीय विकास संकेतकों के विवेकपूर्ण प्रयोग से संबंधित एक समस्या पर ध्यान देना होगा। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि ये सभी संकेतक अत्यंत महत्वपूर्ण हैं, परंतु पर्याप्त नहीं हैं।

इनके साथ ही स्वतंत्रता संकेतकों की भी आवश्यकता है। 'सामाजिक व राजनीतिक निर्णय-प्रक्रिया में लोकतांत्रिक भागीदारी' की सीमा के संकेतक को इसके माप के रूप में जोड़ दिया गया है, परंतु इसे किसी अतिरिक्त मानवीय विकास सूचक की रचना में महत्व नहीं दिया गया है। ऐसे कुछ स्पष्ट स्वतंत्रता संकेतक इनमें अभी तक नहीं जोड़े गये हैं जैसे, नागरिक अधिकारों की संवैधानिक संरक्षण की सीमा, न्यायपालिका की स्वतत्रता के लिए संवैधानिक संरक्षण की सीमा या न्यायपालिका की स्वतंत्रता को सरंक्षण देने की संवैधानिक सीमा तथा विधि-सम्मत शासन अभी तक लागू नहीं किया गया है। इन्हें और कुछ उपायों को सूची में शामिल किये बिना तथा इन्हें महत्व दिये बिना, मानव विकास सूचक का निर्माण अधूरा रहेगा तथा इसकी उपादेयता भी सीमित होगी।

10.6 विकास नीतियाँ: एक मूल्यांकन

सामान्यतया यह देखा जाता है कि किसी देश की विकास नीतियों को अपने देश के विकास के लिए मार्गदर्शन एवं सीख के रूप में ग्रहण किया जाता है। विश्व के विभिन्न भागों में सुधार कार्यक्रमों के लागू होने के पश्चात, ऐसा विशेष रूप से देखा जा सकता है। अपने पड़ोसी

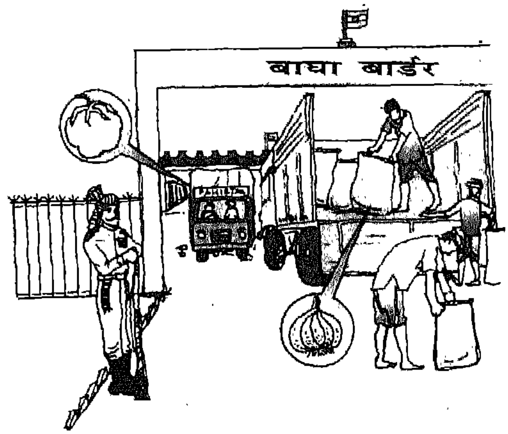
देशों की आर्थिक सफलताओं से कुछ सीख ग्रहण करने के लिए यह आवश्यक है कि हम उनकी सफलताओं तथा विफलताओं के मूल कारणों को समझें। यह भी आवश्यक है कि हम उनकी रणनीतियों के विभिन्न चरणों के बीच अंतर और विभेद करें। विभिन्न देश अपनी विकास प्रक्रिया अलग-अलग तरीकों से पूरा करते हैं। आइए, सुधार कार्यक्रमों के आरंभ को हम संदर्भ बिंदु के रूप में लें। हम जानते हैं कि सुधार कार्यक्रम का आरंभ चीन में 1978 में, पाकिस्तान में 1988 में और भारत में 1991 में हुआ। आइए, सुधार पूर्व और सुधार पश्चात् अवधि में उनकी उपलब्धियों और विफलताओं का संक्षिप्त मूल्यांकन करें।

चीन ने संरचनात्मक सुधारों को 1978 में क्यों प्रारंभ किया? चीन को इन्हें प्रारंभ करने के लिए विश्व बैंक और अतंर्राष्ट्रीय मुद्राकोष की कोई बाध्यता नहीं थी जैसी कि भारत और पाकिस्तान को थी। चीन के तत्कालीन नये नेता माओवादी शासन के दौरान चीन की धीमी आर्थिक संवृद्धि और देश में आधुनिकीकरण के अभाव को लेकर संतुष्ट नहीं थे। उन्होंने महसूस किया कि विकेंद्रीकरण, आत्मनिर्भरता, विदेश प्रौद्योगिकी और उत्पादों तथा पूंजी के बहिष्कार पर आधारित आर्थिक विकास माओवादी दृष्टिकोण से विफल रहा है। व्यापक भूमि सुधारों, सामुदायिकीकरण और ग्रेट लीप फॉरवर्ड तथा अन्य पहलों के बाद भी 1978 में प्रतिव्यक्ति अन्न उत्पादन उतना ही था, जितना 1950 के दशक के मध्य में था। यह भी देखा गया कि शिक्षा और स्वास्थ्य के क्षेत्रों में आधारिक संरचना की स्थापना किये जाने के फलस्वरूप भूमि सुधारों, दीर्घकालिक विकेंद्रीकृत योजनाओं और लघु उद्योगों से सुधारोत्तर अवधि में सामाजिक और आय संकेतकों में निश्चित रूप से सुधार हुआ था। सुधारों के प्रारंभ होने से पूर्व ग्रामीण क्षेत्रों में बुनियादी स्वास्थ्य सुविधाओं का बड़े व्यापक स्तर पर प्रसार हो चुका था। कम्यून व्यवस्था के कारण खाद्यान्नों का अधिक समतापूर्ण वितरण था। विशेषज्ञ यह भी कहते हैं कि प्रत्येक सुधार के पहले छोटे स्तर पर लागू किया गया और बाद में उसे व्यापक पैमाने पर लागू किया गया। विकेंद्रीकृत शासन के प्रयोग के आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक लागतों की सफलता या विफलता का आकलन किया जा सका। उदाहरण के लिए, जब छोटे-छोटे भूखंड कृषि के लिए व्यक्तियों को दिए गए तो बहुत बड़ी संख्या में लोग समृद्ध बन गये। इसके फलस्वरूप, ग्रामीण उद्योगों के अपूर्व विकास की स्थिति बनी और आगे और सुधारों के लिये मजबूत आधार बनाया गया। विद्वान ऐसे अनेक उदाहरण देते हैं कि चीन में सुधारों के कारण किस प्रकार तीव्र संवृद्धि हुई।

विद्वान तर्क देते हैं कि सुधार प्रक्रिया से पाकिस्तान में तो सभी आर्थिक संकेतकों में गिरावट आयी है। हमने पिछले खंड में देखा है कि वहाँ 1980 को दशक की तुलना में जी.डी.पी. और क्षेत्रक घटकों की संवृद्धि दर 1990 के दशक में कम हो गई है। यद्यपि पाकिस्तान के अंतर्राष्ट्रीय गरीबी रेखा से संबंधित आँकड़े बहुत सकारात्मक रहे हैं, परंतु पाकिस्तान के सरकारी आँकड़ों का प्रयोग करने वाले यह संकेत देते हैं कि वहाँ निर्धनता बढ़ रही है। 1960 के दशक में निर्धनों का अनुपात 40

प्रतिशत था, जो 1980 के दशक में गिर कर 25 प्रतिशत हो गया और 1990 के दशक में पुन: बढ़ने लगा। विद्वानों ने पाकिस्तान की अर्थव्यवस्था में संवृद्धि दर की कमी और निर्धनता के पुन: आविर्भाव के ये कारण बताये:-(क) कृषि संवृद्धि और खाद्य पूर्ति, तकनीकी परिवर्तन संस्थागत प्रक्रिया पर आधारित न होकर अच्छी फसल पर आधारित था। जब फसल अच्छी होती थी तो अर्थव्यवस्था भी ठीक रहती थी और फसल अच्छी नहीं होती थी तो आर्थिक संकेतक नकारात्मक प्रवृतियाँ दर्शाते थे। (ख) आपको ध्यान होगा कि भारत को अपने भुगतान संतुलन संकट को ठीक करने के लिये अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष और विश्व बैंक से उधार लेना पड़ा था। विदेशी मुद्रा प्रत्येक देश के लिए एक अनिवार्य घटक है और यह जानना आवश्यक है कि इसे कैसे अर्जित किया जाता है। यदि कोई देश अपने विनिर्मित उत्पादों के धारणीय निर्यात

इन्हें कीजिए



➢ कुछ समय से यह देखा जा रहा है कि भारत में सस्ते चीनी सामान का अचानक अंबार लग गया है, जिसके विनिर्माण क्षेत्रक पर कई प्रभाव हैं हम स्वयं भी अपने पड़ोसी राष्ट्रों से व्यापार नहीं करते हैं। निम्न सारणी को देखें। इसमें भारत से पाकिस्तान और चीन को किये गये निर्यातों और आयातों को दिखाया गया है। अपने परिणामों का निर्वचन कीजिए और कक्षा में उस पर चर्चा कीजिए। समाचार पत्रों, वेबसाइटों तथा समाचार सुनकर, अपने पड़ोसी राष्ट्रों के साथ व्यापार में शामिल वस्तुओं और सेवाओं का विवरण एकत्र कीजिए। भारत के अतंराष्ट्रीय व्यापार से संबंधित जानकारी प्राप्त करने के लिए आप इस वेबसाइट पर लॉग कर सकते हैं: http://dgft.delhi.nic.in.

देश	*निर्यात*			*आयात*		
	2003-2004	*2004-2005*	*संवृद्धि दर (%)*	*2003-2004*	*2004-2005*	*संवृद्धि दर (%)*
पाकिस्तान	1320	2270	72	265	430	60
चीन	13600	20600	52	18600	30300	60

द्वारा विदेशी मुद्रा कमाने में समर्थ है, तो उसे कोई चिंता करने की जरूरत नहीं है। पाकिस्तान में अधिकांश विदेशी मुद्रा मध्यपूर्व में काम करने वाले पाकिस्तानी श्रमिकों की आय प्रेषण तथा अति अस्थिर कृषि उत्पादों के निर्यातों से प्राप्त होती है। एक ओर विदेशी ऋणों पर निर्भर रहने की प्रवृति बढ़ रही थी, तो दूसरी ओर पुराने ऋणों को चुकाने में कठिनाई बढ़ती जा रही थी।

किंतु जैसा कि 'पाकिस्तान सरकार का एक निष्पादन वर्ष, 2004-05' में कहा गया है कि पाकिस्तान की अर्थव्यवस्था में लगातार तीन वर्षों (2002-05) के दौरान जी.डी.पी. लगभग 8 प्रतिशत की वार्षिक दर से बढ़ी है। कृषि, विनिर्माण तथा सेवा इन तीनों क्षेत्रकों का इस संवृद्धि में योगदान है। इसके साथ-साथ ऊँची मुद्रास्फीति दरें और तीव्र निजीकरण के कारण, सरकार उन विभिन्न क्षेत्रों में अधिक खर्च कर रही है जो निर्धनता को कम कर सकते हैं।

10.7 निष्कर्ष

अपने पड़ोसी देशों के विकास अनुभवों से हमें क्या सीख मिलती है? भारत, पाकिस्तान और चीन की पाँच दशकों से भी अधिक लंबी विकास यात्रा रही है और उनको अलग-अलग परिणाम प्राप्त हुए हैं। 1970 के दशक के उत्तरार्द्ध में तीनों का ही विकास स्तर निम्न था। पिछले तीन दशकों में इन तीनों देशों का विकास स्तर अलग-अलग रहा है। लोकतांत्रिक संस्थाओं सहित भारत का निष्पादन साधारण रहा है। अधिकतर लोग आज भी कृषि पर निर्भर हैं। भारत के अनेक भागों में आधारिक संरचना का अभाव है। भारत में निर्धनता रेखा से नीचे रहने वाले एक चौथाई से भी अधिक जनसंख्या का रहन-सहन के स्तर को ऊपर उठाने की आवश्यकता है। विद्वानों का मत है कि राजनैतिक अस्थिरता, प्रेषणों और विदेशी सहायता पर अत्यधिक निर्भरता और कृषि क्षेत्रक का अस्थिर निष्पादन पाकिस्तान की अर्थव्यवस्था की गिरावट के कारण हैं। कुछ समय से पाकिस्तान जी.डी.पी. संवृद्धि की उच्चदर कायम रखते हुए, स्थिति में सुधार करने की आशा कर रहा है। वर्ष 2005 के विनाशकारी भूकंप, जिसमें 75,000 लोगों की जानें गईं और संपत्ति का भारी नुकसान हुआ, के झटके से उबरना भी आज पाकिस्तान के सामने एक बड़ी चुनौती है। चीन में राजनीतिक स्वतंत्रता का अभाव तथा मानव अधिकारों पर उसके निहतार्थ चिंता के मूल विषय हैं। फिर भी, अंतिम तीन दशकों में से इसने अपनी राजनीतिक प्रतिबद्धता को खोये बिना, बाजार व्यवस्था का प्रयोग किया तथा निर्धनता निवारण के साथ-साथ संवृद्धि के स्तर को बढ़ाने में सफल रहा है। आप यह भी देखेंगे कि भारत और पाकिस्तान में जहाँ सार्वजनिक क्षेत्रक के उपक्रमों के निजीकरण का प्रयास हो रहा है, वहाँ चीन ने बाजार व्यवस्था का उपयोग अतिरिक्त सामाजिक-आर्थिक सुअवसरों के सर्जन के लिए किया है। सामुदायिक भू-स्वामित्व को कायम रखते हुए और लोगों को भूमि पर कृषि की अनुमति देकर चीन ने ग्रामीण क्षेत्रों में सामाजिक सुरक्षा सुनिश्चित कर दी है। चीन में सुधारों से पूर्व ही सामाजिक आधारिक संरचना उपलब्ध कराने में सरकारी हस्तक्षेप द्वारा मानव विकास संकेतकों में सकारात्मक परिणाम हुए हैं।

पुनरावर्तन

1 वैश्वीकरण की प्रक्रिया आरंभ होने के बाद से विकासशील देश अपने आस-पास के देशों की विकास प्रक्रियाओं और नीतियों को समझने के लिए उत्सुक हैं। इसका कारण यही है कि उन्हें अब केवल विकसित देशों से ही नहीं, वरन् अपने जैसे अनेक विकासशील देशों से भी, प्रतिस्पर्धा का सामना करना पड़ रहा है।

2 भारत, पाकिस्तान और चीन की भौतिक खाद्यान्न संपन्नताओं में तो काफी समानता है परंतु उनकी राजनीतिक व्यवस्थाएँ बिल्कुल भिन्न हैं।

3 तीनों ही देशों ने पंचवर्षीय योजनाओं को विकास के स्वरूप का आधार बनाया है किंतु उन योजनाओं के क्रियान्वयन के लिए इन्होंने जो संरचनाएँ बनाई हैं, वे भिन्न-भिन्न हैं।

4 1980 के दशक के प्रारंभिक वर्षों तक तीनों देशों के सभी विकास संकेतक (अर्थात् संवृद्धि दर, राष्ट्रीय आय में उद्योगवार योगदान आदि) समान थे।

5 चीन ने आर्थिक सुधार 1978 में प्रारंभ किये, पाकिस्तान ने 1988 में और भारत ने 1991 में।

6 चीन ने संरचनात्मक सुधारों का निर्णय स्वयं लिया था जबकि भारत और पाकिस्तान को अंतराष्ट्रीय संस्थाओं ने ऐसे सुधार करने के लिए बाध्य किया था।

7 इन तीन देशों में अपनाए गए नीति उपायों के परिणाम भी भिन्न-भिन्न रहे हैं। उदाहरणार्थ, चीन में केवल एक संतान नीति के द्वारा जनसंख्या की वृद्धि रुक गई। किंतु, भारत और पाकिस्तान में इस दिशा में अभी ऐसा परिवर्तन होना बाकी है।

8 पचास वर्षों के योजनाबद्ध विकास के बाद भी इन देशों की जनसंख्या का एक बहुत बड़ा भाग अभी तक कृषि पर निर्भर है। भारत में कृषि निर्भरता सबसे अधिक है।

9 चीन ने परंपरागत विकास नीति को अपनाया जिसमें क्रमश: कृषि से विनिर्माण तथा उसके बाद सेवा की ओर अग्रसर होने की प्रवृति थी। भारत तथा पाकिस्तान सीधे कृषि से सेवा क्षेत्रक की ओर चले गए।

10 चीन में औद्योगिक क्षेत्रक में उच्च्व संवृद्धि दर कायम रही है, जबकि भारत और पाकिस्तान में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है।

11 चीन अनेक मानव विकास संकेतको में भारत और पाकिस्तान से आगे है, इसके बावजूद इस प्रगति में सुधार प्रक्रिया का कोई योगदान नहीं था बल्कि उस रणनीति का था, जिसे चीन ने सुधार के पूर्व अवधि में अपनाया था।

12 विकास संकेतकों के मूल्यांकन के लिए स्वतंत्रता-संबंधी सूचकों को भी ध्यान में रखना होगा।



अभ्यास

1. कुछ क्षेत्रीय और आर्थिक समूहों के उदाहरण दीजिए।
2. वे विभिन्न साधन कौन से हैं जिनकी सहायता से देश अपनी घरेलू व्यवस्थाओं को मजबूत बनाने का प्रयत्न कर रहे हैं?
3. वे समान विकासात्मक नीतियाँ कौन-सी हैं जिनका कि भारत और पाकिस्तान ने अपने-अपने विकासात्मक पथ के लिए पालन किया है?
4. 1958 में प्रारंभ की गई चीन के ग्रेट लीप फॉरवर्ड अभियान की व्याख्या कीजिए।
5. चीन की तीव्र औद्योगिक संवृद्धि 1978 में उसके सुधारों के आधार पर हुई थी। क्या आप इस कथन से सहमत हैं? स्पष्ट कीजिए।
6. पाकिस्तान द्वारा अपने आर्थिक विकास के लिए किए गए विकासात्मक पहलों का उल्लेख कीजिए।
7. चीन में 'एक संतान' नीति का महत्वपूर्ण निहितार्थ क्या है?
8. चीन, पाकिस्तान और भारत के मुख्य जनांकिकीय संकेतकों का उल्लेख कीजिए।
9. मानव विकास के विभिन्न संकेतकों का उल्लेख कीजिए।
10. स्वतंत्रता संकेतक की परिभाषा दीजिए। स्वतंत्रता संकेतकों के कुछ उदाहरण दीजिए।
11. उन विभिन्न कारकों का मूल्यांकन कीजिए जिनके आधार पर चीन में आर्थिक विकास में तीव्र वृद्धि (तीव्र आर्थिक विकास हुआ) हुई।
12. भारत, चीन और पाकिस्तान की अर्थव्यवस्थाओं से संबंधित विशेषताओं को तीन शीर्षकों के अंतर्गत समूहित कीजिए।
    एक संतान का नियम
    निम्न प्रजनन दर
    नगरीकरण का उच्च स्तर
    मिश्रित अर्थव्यवस्था
    अति उच्च प्रजनन दर
    भारी जनसंख्या
    जनसंख्या का अत्यधिक घनत्व
    विनिर्माण क्षेत्रक के कारण संवृद्धि
    सेवा क्षेत्रक के कारण संवृद्धि
13. पाकिस्तान में धीमी संवृद्धि तथा पुनः निर्धनता के कारण बताइए।

14. कुछ विशेष मानव विकास संकेतकों के संदर्भ में भारत, चीन और पाकिस्तान के विकास की तुलना कीजिए और उसका वैषम्य बताइए।
15. पिछले दो दशकों में चीन और भारत में देखी गई संवृद्धि दर की प्रवृत्तियों पर टिप्पणी दीजिए।
16. निम्नलिखित रिक्त स्थानों को भरिए:
    - (क) 1956 में ______________ की प्रथम पंचवर्षीय योजना शुरू हुई थी। (पाकिस्तान/चीन)
    - (ख) मातृमृत्यु दर ______________ में अधिक है। (चीन/पाकिस्तान)
    - (ग) निर्धरता रेखा से नीचे रहने वाले लोगों का अनुपात ______________ में अधिक है। (भारत/पाकिस्तान)
    - (घ) ______________ में आर्थिक सुधार 1978 में शुरू किए गए थे (चीन/पाकिस्तान)

अतिरिक्त गतिविधियाँ

1. भारत और चीन तथा भारत और पाकिस्तान के बीच स्वतंत्र व्यापार के मुद्दे पर कक्षा में एक वाद-विवाद आयोजित कीजिए।
2. आपको पता है कि बाजार में चीन में बनी सस्ती वस्तुएँ उपलब्ध हैं। उदाहरण के लिए, खिलौने, बिजली का सामान, कपड़े, बैटरी आदि। क्या आपके विचार में गुणवत्ता और कीमत की दृष्टि से इन उत्पादों की तुलना भारत में निर्मित वस्तुओं से की जा सकती है? क्या इन वस्तुओं से हमारे घरेलू उत्पादकों को खतरा पैदा हो सकता है? चर्चा कीजिए।
3. क्या आपके विचार से जनसंख्या संवृद्धि को कम करने के लिए चीन की तरह भारत भी एक संतान की नीति को लागू कर सकता है? उन नीतियों पर एक वाद-विवाद आयोजित कीजिए, जिन्हें जनसंख्या वृद्धि के कम करने के लिए भारत अपना सकता है।
4. चीन की संवृद्धि का कारण मुख्यत: विनिर्माण क्षेत्रक है और भारत की संवृद्धि का कारण सेवा क्षेत्रक है। एक चार्ट तैयार कीजिए। उसमें संबंधित देशों में पिछले दशक में हुए संरचनात्मक परिवर्तनों के संदर्भ में इस कथन की संगतता दिखाएँ।
5. सभी मानव विकास संकेतकों में चीन कैसे आगे है? कक्षा में चर्चा कीजिए। नवीनतम वर्ष की मानव विकास रिपोर्ट का अवलोकन करें।

संदर्भ

पुस्तकें

जीन ड्रेज एंड अमर्त्य सेन (1996), *इंडिया इकोनॉमिक डेवेलपमेंट सोशल अपोरचुनिटी,* ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, दिल्ली।

लेख

आलोक राय, द चाइनीज इकॉनॉमिक मिरेकिल: लेसन्स टू बी लर्न्ट, इकॉनॉमिक एंड पालिटिकल वीकली, सितम्बर 14, 2002।

एस. अकबर जायदी(1999), ''इज पावर्टी नाउ ए परमानेंट फिनोमेनन इन पाकिस्तान?'' इकनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली, अक्टूबर 9, पी.पी. 2943-2951।

सरकारी रिपोर्ट

ह्यूमन डिवेलपमेंट रिपोर्ट 2005, यूनाइटेड नेशंस डिवेलपमेंट प्रोग्राम, ऑक्सफर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, ऑक्सफोर्ड।

पाकिस्तान: नेशनल ह्यूमन डेवेलपमेंट रिपोर्ट, 2003, यूनाइटिड नेशंस डिवेलपमेंट प्रोग्राम, सेकिंड इंप्रेशन 2004।

वर्ल्ड डेवलपमेंट रिपोर्ट, 2005, द वर्ल्ड बैंक, पब्लिश्ड बाय ऑक्सफार्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यूयॉर्क।

लेबर मार्केट इंडीकेटर्स, थर्ड ऐडिशन, इंटरनेशनल लेबर आर्गेनाइजेशन, जिनेवा।

पारिभाषिक शब्दावली

अनौपचारिक/असंगठित क्षेत्र के उद्यम **(Informal Sector Enterprises):** निजी क्षेत्र के वैसे उद्यम जिनमें मजदूरी पाने वाले श्रमिकों की संख्या सामान्यत: दस से अधिक नहीं होती।

अदृश्य मदें (Invisibles): भुगतान संतुलन के चालू खाते की मदें, जिनमें दिखाई देने वाली दृश्य वस्तुएँ नहीं होती। अदृश्य मदें मुख्यतः वे सेवाएँ होती हैं, जैसे पर्यटन, जहाजरानी और वायु परिवहन, बीमा और बैंकिग आदि वित्तीय सेवाएं। इन्हीं में हम विदेशों से उपहारों के आदान-प्रदान, धन का निजी खाते पर अंतरण, सरकारी अनुदान और ब्याज, लाभ तथा लाभांश आदि को भी सम्मिलित करते हैं।

अनारक्षण (Dereservation): किसी व्यक्ति या उद्योग ही समूह को उन वस्तुओं के उत्पादन करने की छूट देना, जिन्हें पहले कोई विशेष व्यक्ति या उद्यमी बना सकते थे। भारत में यह मुख्यत: बड़े उद्योगों द्वारा उन वस्तुओं के उत्पादन की अनुमति से जुड़ा है, जिनका उत्पादन पहले केवल लघु उद्योग ही कर सकते थे।

अवमूल्यन (Devaluation): विनिमय दर में गिरावट जिसके कारण विदेशी मुद्राओं की इकाइयों के रूप में आंतरिक मुद्रा की कीमत कम हो जाती हैं।

अवसर लागत (Opportunity Cost): यह किसी कार्य या मूल्यमान के संदर्भ में परिभाषित की जाती है और अस्वीकार किए गए विकल्प के मूल्य के समान होती है।

आकस्मिक दिहाड़ी मजदूर (Casual Wage Labourer): अन्य लोगों के खेतों या उपक्रमों में दैनिक दिहाड़ी के लिए काम करने वाला व्यक्ति।

आंतरिक अर्थव्यवस्था का एकीकरण (Integration of Domestic Economy): सरकारी नीतियों द्वारा अन्य देशों के साथ स्वतंत्र व्यापार और निवेश में वृद्धि, जिससे कि आंतरिक अर्थव्यस्था अन्य अर्थव्यवस्थाओं के साथ कुशलता एवं पारस्परिक निर्भरता सहित जुड़ सके।

आयात प्रतिस्थापान (Import Substitution): सरकार की आर्थिक विकास की ऐसी नीति जिसमें आयात की जा रही वस्तुओं का स्थान देश की स्वनिर्मित वस्तुएं ले लेती हैं। इस नीति में आयात नियंत्रण, आयात शुल्क तथा अन्य नियंत्रणों को अपनाया जाता है। इस नीति के ध्येय की प्राप्ति के लिए आंतरिक उद्योगों को आत्मनिर्भरता की प्राप्ति तथा रोजगार संवर्धन के लिए प्रोत्सहित किया जाता है।

आयात शुल्क (Tariff): आयात पर वह कर जो प्रति इकाई या मूल्यानुसार निर्धारित हो

आयात शुल्क बाधाएँ (Tariff Barriers): सरकार द्वारा आयात पर लगाए गए कर।

आयात लाइसेंस (Import Licensing): किसी देश में वस्तु के आयात की सरकार से मिलने वाली अनुमति।

आसियान (Association of South East Asian Nations): दक्षिण पूर्व एशियाई राष्ट्रों का राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक संगठन। इसके सदस्य हैं थाईलैंड, इंडोनेशिया, मलेशिया, सिंगापुर, फिलिपीन्स, ब्रूनी, दारूस्सलाम, कंबोडिया, लाओस, म्यांमार, वियतनाम।

उत्पादकता (Productivity): श्रम या पूँजी की दक्षता में वृद्धि से उनकी उत्पादकता में भी वृद्धि होती हैं। यह शब्द प्रायः श्रम के आगत की उत्पादकता के संदर्भ में प्रयोग किया जाता है।

उपनिवेशवाद (Colonialism): युद्ध में विषय या अन्य विधियों का प्रयोग कर किसी दूसरे देश को अपने अधीन बनाना। इस प्रकार, अपने देश की सीमा से बाहर भी अन्य राष्ट्रों के राजनीतिक आर्थिक जीवन पर नियंत्रण कर लिया जाता था। उपनिवेशवाद की सबसे बड़ी विशेषता अधीनस्थ देशों का शोषण रही है।

उपभोग समुच्चय (Consumption Basket): किसी परिवार द्वारा उपयुक्त वस्तुओं-सेवाओं का समूह जिसका प्रयोग जनता के उपभोग के स्वरूप का अनुमान लगाने के लिए किया जाता है। सांख्यिकीय संस्थान इसका निर्धारण करते हैं। भारत में राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण संगठन उपभोग समुच्चय में 19 वस्तुओं को सम्मिलित करते हैं। वे हैं: (अ) अनाज (ब) दालें और दूध से बनी चीजें (स) खाद्य तेल (द) सब्जियाँ (ध) वस्त्र आदि।

उद्यम (Enterprise): किसी व्यक्ति या समूह के स्वामित्व वाला उपक्रम, जो मुख्यतः बिक्री के ध्येय से वस्तुओं और सेवाओं का उत्पादन और वितरण आदि करता है।

ऊर्जा दक्षता ब्यूरो (Bureau of Energy Efficiency): यह एक सरकारी संस्था है जिसका उद्देश्य ऐसी नीतियों और रण नीतियों का विकास करना है, जिनमें स्व-नियमन तथा बाजार-सिद्धांतों पर बल होता है। यह अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रकों में ऊर्जा संरक्षण को बढ़ावा देता है और विद्युत के अपव्यय को रोकने के उपाय करता है।

एकाधिकारी तथा प्रतिबंधकारी व्यापार अधिनियम (Monopolies and Restrictive Trade Practices Act): इस अधिनियम को व्यापारियों की एकाधिकारी तथा अन्य जनहित बाधक व्यावहारिक प्रविष्टियों का नियमन करने के लिए लागू किया गया था।

औपचारिक/संगठित क्षेत्र के प्रतिष्ठान (Formal Sector Establishments): सभी सार्वजनिक तथा निजी प्रतिष्ठान जिनमें दस या अधिक व्यक्ति मजदूरी पर काम कर रहे हों।

अंश/हिस्से/इक्विटी (Equities): किसी कंपनी की चुकता पूँजी के समान मूल्यधारी अंश।

इनके धारक ही कंपनी के वास्तविक स्वामी माने जाते हैं। इन्हें कंपनी में मताधिकार प्राप्त होता है और ये लाभांश पाने के अधिकारी होते हैं।

कर प्रति कर (Cascading Effect): करों के कारण वस्तु की कीमतों में अनुपात से अधिक वृद्धि। ये प्राय अनेक चरणों में लगने वाले करों का परिणाम होता है। उदाहरणार्थ: उत्पादन शुल्क की राशि को वस्तु की उत्पादन लागत में जोड़ कर उस पर विक्रय कर लगाना। इस प्रकार उत्पादन शुल्क पर भी विक्रय कर लग जाता है।

कृषि का व्यावसायीकरण (Commercialisation of Agriculture) : स्व-उपभोग या पारिवारिक उपभोग नहीं, बल्कि मुख्यत: बाज़ार में बिक्री के व्यावसायीकरण ने कुछ अलग ही रूप धारण कर लिया था। अंग्रेजों ने खाद्य फसलों के स्थान पर नकदी फसलों की खेती को बढ़ावा देने के लिए उनको उँचे कीमतें देनी प्रारंभ कर दी। उन्हें नकदी फसलें अपने देश के उद्योगों के लिए कच्चे माल के रूप में चाहिए थीं।

गैर-नवीकरणीय संसाधन (Non Renewable Resources): वे प्राकृतिक संसाधन जिनका नवीकरण संभव नहीं। उनका स्टॉक वृहद होता हुआ भी सीमित है। उदाहरण, जीवाश्म उर्जा संसाधन (तेल, कोयला) और लोहा, सीसा, एल्युमीनियम, यूरेनियम आदि खनिज।

गैर शुल्क बाधाएँ (Non-Tariff Barriers): सरकार द्वारा आयात शुल्क से अलग लगाए गए आयात प्रतिबंध। इनमें आयात के परिमाण और गुणवत्ता के प्रतिबंध भी सम्मिलित होते हैं।

घाटे की वित्त व्यवस्था (Deficit Financing): सरकार के व्यय का राजस्व से अधिक होना।

जनांकिकीय संक्रमण (Demographic Transition): जनांकिकीविद् फैंक्र नोटेस्टीन द्वारा 1945 में विकसित अवधारणा। यह आर्थिक विकास से जुड़ी बेहतर जीवन दशाओं के परिणामस्वरूप जन्म और मृत्युदरों में गिरावट की विशेष प्रवृत्तियों की व्याख्या करने वाली अवधारणा है। नोटेस्टीन ने जनांकिकीय संक्रमण की तीन अवस्थाओं का प्रतिपादन किया था: पूर्व औद्योगिक, विकासशील तथा आधुनिक समाज। बाद में औद्योगीकरण के उपरांत की अवस्था भी इसमें सम्मिलित कर ली गई।

जन्म के समय जीवन-प्रत्याशा (Life expectancy at birth): जन्म के समय विद्यमान आयु-विशेष मृत्यु दर के पैटर्न के जीवन भर स्थिर रहने पर, उस नवजात शिशु के जीवित रहने की प्रत्याशा (वर्षों में)।

जी-8 (G-8): आठ देशों का गुट: इसमें कनाडा, फ्रांस, जर्मनी, इटली, जापान ब्रिटेन, उत्तरी आयरलेंड, सं.रा.अमेरिका, और रूसी महासंघ सम्मिलित हैं। यहाँ राज्याध्यक्षों और अंतर्राष्ट्रीय अधिकारियों का वार्षिक आर्थिक-राजनीतिक शिखर सम्मेलन होता है। यहाँ अनेक बैठकें तथा नीतिगत अनुसंधान होते रहते हैं। गुट की अध्यक्षता की अवधि एक वर्ष है जो बारी-बारी से सदस्यों

को प्रदान की जाती हैं। वर्ष 2006 का अध्यक्ष रूस है। इस वर्ष का शिखर सम्मेलन रूस के सेंट पीट्र्सबर्ग में होगा।

जी-20 (G-20): विश्व व्यापार संगठन में व्यापार और कृषि से जुड़े प्रश्नों पर ध्यान देने के लिए विकासशील देशों का समूह। इसमें ये देश सम्मिलित हैं: अर्जेंटीना, बोलिविया, ब्राजील, चिली, विचाईल, चीन, क्यूबा, मिश्र, ग्वेटेमाला, भारत, इंडोनेशिया, मैक्सिकों, नाईजीरिया, पाकिस्तान, पराग्वे, फिलीपीन्स, दक्षिण अफ्रीका, थाइलैंड, तंजानिया, वेनेजुएला और जिम्बाब्वे।

नई आर्थिक नीति (New Economic Policy): भारत में वर्ष 1991 से अपनाई जा रही नीतियों के नाम।

निर्यात-आयात नीति/व्यापार नीति (Export-Import Policy): सरकार की वे आर्थिक नीतियाँ जो आयात और निर्यात व्यापार को प्रभावित करती हैं।

निजी क्षेत्र के प्रतिष्ठान (Private Sector Establishment): निजी व्यक्तियों /समूहों के स्वामित्व और नियंत्रण वाले प्रतिष्ठान।

नवीकरणीय संसाधन (Renewable Resources): वे संसाधन जो विवेकपूर्वक प्रयुक्त होने पर प्राकृतिक प्रक्रियाओं के माध्यम से नवीनीकृत होते रहते हैं। जल, वन, पशुधन, मत्स्य आदि ऐसे संसाधन हैं कि यदि इनका अत्यधिक विदोहन नहीं हो, तो ये निरंतर बने रह सकते हैं।

निर्यात शुल्क (Export Duties): किसी देश से वस्तुओं के निर्यात पर लगाया गया कर।

निर्यात संवर्धन (Export Promotion): राजकीय और व्यापारिक समर्थन सहित वे सभी नीतियाँ जिन्हें सरकार उच्च आर्थिक संवृद्धि प्राप्त करने और अधिक विदेशी मुद्रा कमाने के ध्येय से अपनाती है। इन नीतियों से निर्यात बाधाओं को दूर किया जाता है।

नियोजक रोजगारदाता (Employers): वे स्वनियोजक जो अपना काम स्वयं या कुछ भागीदारों की सहायता से चलाते हैं और प्राय: श्रमिकों को उस उद्यम के संचालन के लिए काम पर रखते हैं।

नियमित वेतन/ मजदूरी पानेवाले श्रमिक (Regular Salaried/Wage Employees): अन्य लोगों के खेतों / फर्मों में काम करने वाले व श्रमिक कर्मचारी जिन्हें नियमित रूप से वेतन या मजदूरी (दिहाड़ी या समय-समय पर नवीनीकृत अनुबंधानुसार नियत भुगतान के रूप में) मिलती है। इनमें सभी पूर्ण और अंशकालिक तथा प्रशिक्षणार्थी कर्मचारी भी सम्मिलित होते हैं।

परिमाणात्मक प्रतिबंध (Quantitative Restrictions): आंतरिक उद्योगों के संरक्षण और भुगतान शेष के घाटे को कम करने के लिए देश में आयात होने वाली वस्तुओं की मात्रा नियत करना।

परिवार (Household): सामान्यत: एक साथ रहने और एक रसोई में भोजन करने वाले व्यक्तियों का समूह। सामान्यत: का अर्थ है कि इनके मेहमान परिवार का अंग नहीं होंगे। इसी प्रकार इनमें से यदि कोई अस्थायी रूप से बाहर गया हो तो उस की परिवार की सदस्यता समाप्त नहीं होगी।

पारिवारिक श्रम/श्रमिक परिवार के खेत (Family Labour/Worker): उद्योग या उद्यम आदि में नकद या वस्तु स्वरूप मजदूरी पाने की इच्छा के बिना काम करने वाला व्यक्ति।

पेंशन (Pension): सेवा निवृत्त श्रमिक को मिलने वाली मासिक निर्वाह राशि।

प्रतिष्ठान (Establishment): ऐसे उद्यम जिनमें वर्ष की अधिकांश अवधि में परिश्रमिक पाने वाला श्रमिक अवश्य कार्य करता है।

प्रत्यक्ष विदेशी निवेश (Foreign Direct Investment): किसी देश की आंतरिक संरचनाओं, संयत्रों और संस्थाओं में विदेशी परिसंपत्तियों का निवेश। इसमें शेयर बाज़ार में लगी विदेशी पूँजी शामिल नहीं की जाती। प्रत्यक्ष विदेशी निवेश को शेयर बाजार के माध्यम से स्वदेशी कंपनियों में निवेश से बेहतर माना जाता है। प्राय: यह धारणा रहती है कि शेयर बाज़ार में लगा धन तो अस्थिर है - जो अल्पकालिक स्ट्टे बाजी के लिए आया है –और कभी भी समाप्त हो सकता है। इसके विपरीत प्रत्यक्ष निवेश चाहे अच्छा हो या बुरा, दोनों ही परिस्थितियों में देश में काम आता ही रहेगा।

प्रतिव्यक्ति आय (Per Capita Income): किसी अवधि विशेष में राष्ट्रीय आय और राष्ट्रीय जनसंख्या का अनुपात।

प्रवेश अवरोध (Barriers to Entry): वे कारक जो किसी उद्योग में प्रवेश को इच्छुक फर्मों का आगमन कठिन बना देते हैं। ये अवरोध उस उद्योग में लगी पुरानी फर्मों को प्रभावित नहीं करते, केवल नई फर्मों पर ही लागू होते हैं।

प्रसव/ मातृत्व मृत्यु दर (Maternal Mortality Rate): यह प्रसव काल में माताओं की मृत्यु और सजीव जन्मों का अनुपात है। कई बार सजीव जन्मों के साथ गर्भपात का भी योग बन जाता है। अनुपात की गणना एक वर्ष की अवधि के लिए की जाती है।

बजट घाटा (Budgetary Deficit): सरकार की आय और कर राजस्व द्वारा उसके व्यय का पूरा न हो पाना।

बहुपक्षीय व्यापार संधियाँ (Multilateral Trade Agreements): किसी देश द्वारा दो या अधिक देशों के बीच वस्तुओं और सेवाओं के आदान-प्रदान संबंधी व्यापार समझौते।

बेहतर अनुपालन (Better Compliance): सामान्य रूप से कर भुगतान आदि के संदर्भ में प्रयुक्त सरकारी अनुदेशों का पालन।

ब्रूंटलेंड कमीशन (Brundtland Commission): संयुक्त राष्ट्र द्वारा 1983 में विश्व की पर्यावरण समस्याओं के अध्ययन के लिए नियुक्त आयोग। इसने एक रिपोर्ट तैयार की थी, जिसमें 'धारणीय विकास' की परिभाषा के बड़े व्यापक रूप से उद्धरण दिए गए।

बेरोजगारी (Unemployment): वे सभी व्यक्ति जो काम के अभाव के कारण बेकार बैठे हैं, पर रोजगार कार्यालयों, मध्यस्थों, मित्रों, संबंधियों के माध्यम से अथवा संभावित रोजगार दाताओं को आवेदन दे कर रोजगार के लिए अपनी उपलब्धता सूचित कर रहे हों। इन्हें कार्य की वर्तमान दशाओं और प्रचलित पारिश्रमिक दरों पर काम करने के लिए तत्पर होना चाहिए।

भुगतान संतुलन (Balance of Payments): किसी देश के वर्ष भर की अवधि में शेष विश्व से चालू और पूँजीगत खातों पर हुए समस्त लेन-देन का सांख्यिकीय सार। इस खाते में अवधि भर के सभी दायित्वों और परिसंपत्तियों का ब्यौरा होता है। इसलिए यह सदैव संतुलन में रहता है।

भूमि/राजस्व बंदोबस्त (Land/Revenue settlement): देश के विभिन्न भागों में अग्रेजी शासन की स्थापना के बाद उनके प्रशासन का गठन करने के लिए एक सर्वेक्षण किया गया। सरकार के हित की दृष्टि से प्रत्येक भूखंड मे उगाए जाने वाले राजस्व का निर्धारण करने का निर्णय लिया गया। यह भूखंड चाहे किसी किसान के अधिकार में या महल अथवा 'राजस्व ग्राम' या फिर किसी जमींदार के अधिकार में रहा हो। यह अधिकार चाहे स्वामित्वाधिकार रहा हो या फिर कर्षण अधिकार ही हो। इसी अधिकार के आधार पर राजस्वनिर्धारण को भू राजस्व व्यवस्था का बंदोबस्त कहा गया है। भारत में तीन प्रकार की राजस्व व्यवस्थाएँ लागू की गई थीं (क) स्थायी बंदोबस्त या जमींदारी व्यवस्था (ख) किसानों के साथ व्यक्तिगत आधार पर राजस्व निर्धारण रैयतवाड़ी व्यवस्था और (ग) पूरे राजस्व ग्राम से राजस्व व्यवस्था (महलवाड़ी व्यवस्था)।

भविष्य निधि (Provident Fund): कर्मचारियों के हितार्थ संचालित कोष- इसमें कर्मचारी और रोजगारदाता दोनों ही अंशदान जमा करते हैं। इसका संचालन सरकार करती है तथा इसकी संचित राशि सेवानिवृत्ति के समय कर्मचारी को दे दी जाती है।

मृत्यु दर (Mortality Rate): यह शब्द 'मृत्यु' पर ही आधारित है। इसे वर्ष भर में प्रति हजार जनसंख्या में हुई मृत्यु की संख्याओं द्वारा अभिव्यक्त किया जाता है। यह मृत्यु सामान्य हो या रोग आदि के कारण, दोनों ही प्रकारों को गणना में सम्मिलित किया जाता है। यह रुग्णता दर से भिन्न है। रुग्णता दर तो बीमारी के कारण काम न कर पाना दर्शाती है।

मुद्रास्फीति (Inflation): सामान्य कीमत स्तर में निरंतर वृद्धि।

योजना आयोग (Planning Commission): भारत सरकार द्वारा गठित एक संगठन। यह देश के सभी संसाधनों के अधिकतम संतुलित और युक्तियुक्त प्रयोग की योजनाएँ बनाने का कार्य करता है। इसे देश के विकास पथ की वरीयताएँ भी निर्धारित करनी होती है।

यूरोपीय संघ (European Union): यूरोप महाद्वीप में राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक सहयोग बढ़ाने के ध्येय से वहाँ के 25 स्वतंत्र देशों द्वारा गठित 'महासंघ'। इसके सदस्य देश हैं- आस्ट्रिया, बेल्जियम, साइप्रस, चैक-गणराज्य, हंगरी, आयरलैंड, इटली, लातीविया, लिथुआनिया, लक्सेमवर्ग, नीदरलैंड, पुर्तगाल, स्पेन, स्वीडन, युनाइटेड-किंगडम, माल्टा, पोलेंड, स्लोवाकिया और स्लोवेनिया।

राज्य विद्युत बोर्ड (State Electricity Boards): ये राज्य प्रशासन के ऐसे अंग हैं जो विद्युत उत्पादन, संवहन और वितरण के कार्य करते हैं।

राष्ट्रीय उत्पाद/ आय (National Product/Income): किसी देश में उत्पादित वस्तुओं और सेवाओं के मूल्यों और विदेशों से प्राप्त आय का योगफल।

रुग्णता (Morbidity): बीमार पड़ने की प्रवृत्ति। यह अस्थायी अपंगता द्वारा काम को दुष्प्रभावित करती है। निरंतर रुग्णता अंततः मृत्यु का रूप भी धारण कर सकती हैं। हमारे देश में रूग्णता के दो प्रमुख कारण हैं, भीषण श्वास संक्रमण और डायरिया।

वहन क्षमता/धारण क्षमता (Carrying Capacity): एक घनत्व विशेष पर जनसंख्या को धारण करने की किसी परिवेश की क्षमता। इसकी अधिक तकनीकी परिभाषा इस प्रकार है: घनत्व आधारित जनसंख्या का वह अधिकतम आकार, जहाँ पहुँचकर इसकी वृद्धि रुक जाती है। अतः उस अधिक सीमा तक जनसंख्यां में वृद्धि होती रहती है। यदि जनसंख्या धारण क्षमता से अधिक हो जाए तो अपर्याप्त स्थान, खाद्य आदि के कारण निर्वाह से जुड़ी कठिनाईयों के कारण प्रजनन प्रक्रिया बाधित होने लगती है। विभिन्न प्रजातियों की धारण क्षमताएं परिवेशानुसार भिन्न हो सकती हैं। अनेक कारणों से समय के साथ इसमें परिवर्तन भी संभव है। ये कारण हैं, खाद्य सुलभता, पर्यावरण स्थान आदि।

व्यापारी बैंक (Merchant Bankers): कंपनियों को सलाह देने, उनके अंश और ये ऋण निर्गमन का प्रबंध करने वाले बैंक, वित्तीय संस्थान या निवेश बैंक।

व्यतिक्रम/चूक (Default): नियत तिथि पर ऋण और ब्याज का भुगतान नहीं कर पाना। ऋण ये किसी अतंर्राष्ट्रीय वित्तीय संस्थान से सरकार द्वारा लिए गए ऋण भी हो सकते हैं। इस प्रकार ऋणी की विश्वसनीयता या 'साख' पर आँच आती है।

वित्तीय संस्थान (Financial Institution): बचतों के संग्रह और प्रयोजन या आबंटन से जुड़े संस्थान। इनमें व्यावसायिक, सहकारी और विकास बैंक तथा निवेश संस्थान सम्मिलित हैं।

वित्तीय नीति (Fiscal Policy): आर्थिक गतिविधियों के नियमन के लिए करों तथा सरकारी व्यय का प्रयोग।

विदेशी विनिमय /विदेशी मुद्रा (Foreign Exchange): अन्य देशों की मुद्रा या बाँड या अन्य वित्तीय परिसंपत्तियों के माध्यम से आया विदेशी निवेश। इस प्रकार के निवेश के साथ किसी फर्म के प्रबंध और नियंत्रण में निवेशक फर्मों/व्यक्तियों का कोई हस्तक्षेप नहीं हो पाता।

विदेशी विनिमय मुद्रा बाज़ार (Foreign Exchange Market): ऐसा बाज़ार जहाँ आज की नियत दरों पर मुद्राओं की खरीद बिक्री होती है - पर उस खरीदी-बेची गई मात्रा का वास्तविक हस्तांतरण भविष्य की किसी नियत तिथि को ही किया जाता है।

विशेष आर्थिक क्षेत्र (Special Economic Zones): ऐसे भौगोलिक क्षेत्र जिनमें विदेशी निवेश को बढ़ावा देने के ध्येय से देश के सामान्य आर्थिक कानूनों को पूर्णतः लागू नहीं किया जाता। विशेष रूप से बनाए गए आर्थिक क्षेत्रों में स्थापित हो चुके हैं। ये देश हैं- जनवादी चीन, भारत, जार्डन, पोलैंड, कजाकिस्तान, फिलीपीन्स रूस आदि।

विनिवेश (Disinvestment): किसी कंपनी की पूँजी के एक अंश को जान-बूझ कर बेचना। इस प्रकार धन जुटाने के साथ-साथ उस कंपनी की हिस्सेदारी, रचना या प्रबंधन या दोनों, में बदलाव भी किये जा सकते हैं।

वैधानिक तरलता अनुपात (Statutory Liquidity Ratio): रिजर्व बैंक के आदेशानुसार बैंकों द्वारा कुल जमाओं और सुरक्षित निधियों का तरल रूप में रखा जाने वाला अंश। नकद जमा अनुपात के साथ-साथ इस वैधानिक तरलता अनुपात का अनुपालन करना बैकों के लिए अनिवार्य होता है।

सहभागिता (Communes): जन सहभागिता या चीनी भाषा में रोन्मिन गोंगशे। यह चीन में 1958 से 1985 की अवधि में ग्रामीण प्रशासन के तीन स्तरों में से सबसे उच्चतम स्तर था। इस अवधि (1982-85) में इसका स्थान नगर प्रशासन ने ले लिया। विशालतम सामुदायिक इकाइयों (कम्यूनों) का विभाजन कर उन्हें उत्पादन वाहिनियों तथा उत्पाद दलों में पुनर्गठित कर दिया गया। उन जन सहभागिताओं के प्रशासकीय, राजनीतिक और आर्थिक कार्य होते थे।

संस्थागत विदेशी निवेशक (Foreign Institutional Investors): अन्य देशों में आधार वाले बैंक और गैर-बैंक संस्थान। इनमें विदेशी व्यावसायिक बैंक, निवेश बैंक, म्युचुयल फंड, पेंशन कोष जैसी निवेशक संस्थाएँ सम्मिलित होती हैं। (स्पष्टतः ये संस्थाएँ देश की अपनी इस प्रकार की संस्थाओं से अलग होती हैं)। शेयर, बांड आदि में स्टॉक एक्सचेंज के माध्यम से इनके निवेश का देश की आर्थिक व्यापारिक परिस्थितियों पर गहन प्रभाव पड़ता है।

सार्क (South Asian Association for Regional Cooperation - SAARC): दक्षिण एशियाई क्षेत्रीय सहयोग संघ इस क्षेत्र के आठ देशों का संघ है। ये देश हैं: भारत, भूटान बांग्लादेश, मालदीव, नेपाल, पाकिस्तान, श्रीलंका और अफगानिस्तान। सार्क दक्षिण

एशि ... मिलजुल कर कार्य करने का एक म ... इसका ध्येय सदस्य देशों में आर्थिक सामाजिक विकास का संवर्धन है।

सामाजिक सुरक्षा (Social Security): वृद्ध, अपंगों, असहायों, विधवाओं और बच्चों के हितार्थ स्थापित/संचालित निजी और सार्वजनिक पेंशन संस्थाएँ। इनमें पेंशन, सेवानुदान, भविष्य निधि, मातृत्व लाभ, स्वास्थ्य सेवा आदि सम्मिलित होते हैं।

स्वनियोजित (Self-Employed): अपने खेत/ व्यवसाय आदि का स्वतंत्र रूप से संचालन करने वाले व्यक्ति। इनके कुछ सहायक हो सकते हैं। कब, कहाँ उत्पादन या विक्रय करें अथवा कैसे कार्य का संपादन करें, इन बातों के विषय में निर्णय की इन्हें स्वतंत्रता रहती है। इनकी आय मुख्यतः अपने उत्पादन के विक्रय या लाभ पर निर्भर रहती है।

स्थिरीकरण उपाय (Stabilisation Measures): भुगतान शेष के उतार-चढ़ाव और उच्च स्फीति दर के नियमन के लिए अपनाए गए वित्तीय, राजकोषीय तथा मौद्रिक नीतिगत उपाय।

सेवानुदान (Gratuity): कर्मचारी के सेवामुक्त होने पर उसे उसकी सेवाओं के लिए नियोक्ता से मिलने वाली एकमुश्त मानार्थ राशि।

स्टॉक एक्सचेंज (Stock Exchange): ऐसा शेयर बाज़ार जहाँ सरकारों और सार्वजनिक कंपनियों की प्रतिभूतियों का क्रय-विक्रय होता है। यहाँ दलालों को कंपनियों के अंशपत्रों तथा अन्य प्रतिभूतियों के व्यापार की सुविधाएँ उपलब्ध रहती है।

शहरीकरण (Urbanisation): किसी महानगरीय क्षेत्र का प्रसार, शहरी क्षेत्रों की जनसंख्या या उनके क्षेत्रफल का विस्तार या उनके अनुपात में समयानुसार वृद्धि। इसके प्रतिनिधि-स्वरूप शहरों में बसी जनसंख्या का अनुपात या इस अनुपात की वृद्धि दर का प्रयोग हो सकता है। इन दोनों को ही जनगणना प्रतिशत में व्यक्त किया जा सकता है। परिवर्तन अवधि वार्षिक, दशकीय या फिर कोई अंतवर्ती अवधि हो सकती है।

शेयर बाज़ार (Stock Market): शेयर आदि के व्यापार के लिए संस्थान।

शिशु मृत्यु दर (Infant Mortality Rate): एक वर्ष की आयु से पूर्व ही मृत शिशुओं की संख्या तथा उस वर्ष में जन्में शिशुओं की संख्या का अनुपात गुणा 1000।

श्रमिक संघ (Trade Union): मजदूरी की दरों, लाभों और कार्य करने की दशाओं को लेकर अपने सदस्यों के हितों के रक्षार्थ मजदूरों द्वारा बनाई गई संस्था।

श्रमिक जनसंख्या अनुपात (Worker Population Ratio): श्रमिकों की कुल संख्या का देश की जनसंख्या में अनुपात। इसे प्रतिशत में अभिव्यक्त किया जाता है।

श्रम कानून (Labour Laws): सरकार द्वारा श्रमिकों के हितों की रक्षा के लिए बनाए गए नियम।